विराट पुरुष

अर्थशास्त्री नानाजी

3 विराट पुरुष अर्थशास्त्री नानाजी

विराट् पुरुष

अर्थशास्त्री

नानाजी

विराट् पुरुष

अर्थशास्त्री

नानाजी

दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2017
मूल्य • तीन सौ रुपए
मुद्रक • ग्राफिक वर्ल्ड, नई दिल्ली

VIRAT PURUSH ARTHSHASTRI NANAJI ₹ 300.00
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road,
New Delhi-110002 • e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with Deendayal Research Institute,
7-E, Swami Ramtirth Nagar, Rani Jhansi Road, New Delhi-55
e-mail: dridelhi1@gmail.com
Vol. 3 ISBN 978-93-5186-078-5
Set of 6 Vols. ISBN 978-93-5186-082-2 • Price: ₹ 2000.00

आमुख

अर्थशास्त्र नानाजी के समग्र चिंतन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा था। गोंडा, बीड़ और फिर चित्रकूट, इन सभी प्रकल्पों में नानाजी ने समाज की उद्यमशीलता पर पर्याप्त जोर दिया। उनके आर्थिक चिंतन का केंद्र-बिंदु था स्वावलंबन। उनका मानना था कि स्वावलंबन के बिना स्वाभिमान हासिल नहीं किया जा सकता, और स्वावलंबन का पाठ तो हमारी देशज ज्ञान-परंपरा में बहुत विस्तार से पढ़ाया गया है। वास्तव में तो यह किसी पाठ्यक्रम का नहीं, व्यावहारिक ज्ञान का हिस्सा था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी हासिल और विकसित ज्ञान, जो कला से प्रारंभ होकर विज्ञान बन गया।

नानाजी का मत था कि ग्राम विकास का मूलमंत्र है स्वावलंबन। उसके बिना विकास एकतरफा व उथला है। वह प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करता है। समाज में विषमता पैदा करता है। मनुष्य को लालची बनाता है। समाज में अनावश्यक होड़ पैदा करता है। कृषि पर उनका विशेष बल था, लेकिन वे मानते थे कि कृषि-आधारित उद्योगों के विकास के बिना कृषिभूमि पर इतना बोझ बढ़ जाएगा कि वह अलाभकारी हो जाएगी। हम उनकी आशंकाओं को सही साबित होते देख रहे हैं।

लेकिन ऐसा करते वक्त वे दकियानूसी विचारों का प्रतिपादन कतई नहीं करते थे। वे नए वैज्ञानिक आविष्कारों व खोजों के अनुप्रयोग का बेहद आग्रह रखते थे। उनके बारे में जानने की उनके मन में हमेशा जिज्ञासा बनी रहती थी। कृषि विज्ञान केंद्र, आधुनिक प्रयोगशालाएं, जमीनी प्रयोगशालाएं, अनुसंधान केंद्र नानाजी की योजनाओं के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे। जब वे पशुपालन के महत्त्व को रेखांकित करते थे तो गाय के धार्मिक पक्ष की नहीं बल्कि उसके आर्थिक व वैज्ञानिक पक्ष की वकालत करते हुए मिलेंगे आगे के पन्नों में।

नानाजी का मत था कि आर्थिक चिंतन बाल्यकाल से ही परंपराओं के द्वारा विकसित होता है। ऐसी परिस्थिति में वह देशानुकूल होता है। आधुनिक शिक्षा उस चिंतन को युगानुकूल बनाती है। लेकिन आजादी के पश्चात् हमारी शिक्षा व्यवस्था व शासन प्रणाली ने परंपराओं को तिलांजलि देने पर मजबूर कर दिया और हम पर पाश्चात्य व्यवस्थाएं थोप दीं। इससे हमारा आर्थिक चिंतन संभवतः समयानुकूल तो हो गया, लेकिन देशानुकूल नहीं रहा। इसी कारण हम इतनी विसंगतियों व विषमताओं से जूझ रहे हैं।

विराट् पुरुष

दीनदयाल शोध संस्थान के विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से नानाजी ने यह साबित कर दिखाया कि वैकल्पिक अर्थव्यवस्था (जो वास्तव में तो हमारा मूल आर्थिक चिंतन था) सिर्फ भाषणों तक ही सीमित नहीं है, इस युग में भी वह ग्राम विकास का मूल आधार हो सकती है। इस खंड में इन विषयों पर नानाजी की परिकल्पना, उनके भाषण एवं पत्र उनके व्याप को दरशाते हैं।

विराट् पुरुष
नानाजी देशमुख

जिन दिनों प्रस्तुत वाङ्मय का संकलन व संपादन चल रहा था, उन्हीं दिनों अंग्रेजी की एक उपन्यास शृंखला चर्चा में आई–शिवा ट्रायोलॉजी। एक युवा भारतीय लेखक अमीश ने उसमें भगवान् शिव की एक मनुष्य-रूप में कल्पना कर उनकी स्तुति की है। बहुत खूबसूरत वर्णन है। देवों के देव महादेव का उन्होंने दुष्टता का नाश करनेवाले, प्रचंड प्रेमी, महान् योद्धा, नृत्यकला में निपुण, एक करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, परम शक्तिशाली लेकिन फिर भी सब प्रकार के दोषों से मुक्त, अद्भुत वाक्पटु, पूरे ब्रह्मांड को कंपा देनेवाला गुस्सा, लेकिन विशाल, दया व करुणा से भरपूर हृदय, ऐसे व्यक्तित्व के रूप में चित्रण किया है।

लेखक का संभवतः नानाजी से परिचय नहीं रहा होगा। वरना वे नानाजी को सामने रखकर भी एक जीवंत उपन्यास की रचना कर सकते थे–देवताओं के सभी गुणों से परिपूर्ण, राजनीति में दुष्ट लोगों को साफ-साफ खरी-खोटी सुनानेवाले और उन्हें राजनैतिक तौर पर ही नष्ट करनेवाले, स्वयं ब्रह्मचारी लेकिन गृहस्थ जीवन के कट्टर समर्थक व गृहस्थों को प्रेम का पाठ पढ़ानेवाले, महान् रणनीतिकार, ललित कलाओं के प्रेमी, करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली राजनेताओं में से एक, लेकिन महत्त्वाकांक्षाओं व अहंकार से पूर्णतया मुक्त, वाक्पटुता अद्वितीय, आवश्यकता पड़ने पर गजब का गुस्सा, यानी वही सब गुण, जिनको आधार बनाकर वह उपन्यास लिखा गया।

नानाजी के निधन के पश्चात् हम सबने उनका राष्ट्रऋषि के रूप में स्मरण किया। अपने जीवनकाल में मानव कल्याण के लिए उन्होंने जो साधना की, जो तपस्या की, उसे देखते हुए तो उनके जीवित रहते हुए ही उन्हें इस रूप में संबोधित किया जा सकता था। लेकिन नानाजी को यह स्वीकार्य नहीं होता। चित्रकूट में नानाजी से मिलने व उनके काम को देखने के बाद तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम उन्हें एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति के रूप में ही संबोधित करते थे।

अपने शास्त्रों में विराट् पुरुष की जो व्याख्या की गई है, नानाजी उसके मूर्त रूप थे। आमजन के लिए तो विराट् पुरुष वह है जो चतुष्पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–सभी में संतुलन बैठा सकता हो।

विराट् पुरुष

नानाजी का समस्त जीवन, विचार व कर्तृत्व उन्हें विराट् पुरुष के फ्रेम में ही रखते हैं। जिन लोगों के बीच वे काम करते थे, जो वंचित थे, उनके लिए तो नानाजी विराट् पुरुष ही थे। नानाजी के सहयोगी रहे लोग या जिन्होंने नानाजी के साथ कुछ भी समय काम किया, वे भी उनके इस वर्णन से सहमत होंगे।

देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान करने से लेकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक प्रचारक के रूप में नानाजी ने पहले राष्ट्रीय राजनीति में और बाद में सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में अपनी जो छाप छोड़ी, वह अद्वितीय है।

राजनीति में उनके विरोधी भी उनका लोहा मानते हैं। नानाजी ने देश में राजनीति की विभिन्न धाराओं को राष्ट्रहित के लिए एकजुट करने का जो अनोखा काम किया, उनके अलावा कोई अन्य राजनीतिज्ञ वैसा फिर नहीं कर पाया। यहां तक कि जिस कांग्रेस को हराने के लिए वे जीवन भर प्रयासरत् रहे, समय आने पर उन्होंने उसे भी राष्ट्रहित में साथ आने का निमंत्रण देने में संकोच नहीं किया। संघ जीवनपर्यंत उनकी जीवनरेखा रहा। संघ पर जब भी कोई अनर्गल आक्षेप लगा तो नानाजी उसके सामने एक ढाल की तरह खड़े रहे, एक योद्धा के रूप में।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनके सखा व प्रेरणास्रोत थे। लेकिन जब उन्हें लगा कि बदले परिवेश में अन्य विचारों को साथ लेना भी जरूरी हो गया है तो उन्होंने डॉ. राममनोहर लोहिया और आचार्य कृपलानी जैसे लोगों को भी अपने साथ आत्मसात् करने में कोई परहेज नहीं किया। 70-80 के दशकों में ऐसा समय आया जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण अपने राजनैतिक कार्यों के लिए पूरी तरह नानाजी पर निर्भर हो गए।

60 बरस की उम्र होने पर सक्रिय राजनीति छोड़कर सामाजिक पुनर्रचना के काम में उन्होंने स्वयं को समर्पित कर देश के राजनीतिज्ञों के लिए एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उनके इस कदम का बाद में किसी ने अनुकरण नहीं किया और अधिकांश राजनेता दलगत व स्वार्थपरक राजनीति में उलझे रहे। हां, उनके कुछ साथी राजनेताओं ने नानाजी के काम को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान अवश्य दिया।

सामाजिक कार्यों में उन्होंने समाज की पहल और उसकी भागीदारी के आधार पर जो मॉडल देश के सामने प्रस्तुत किया, उसकी सराहना देश भर में होती रही है। आज विदेशों से भी कई शोधार्थी और विद्यार्थी उस मॉडल को समझने व उसे अपने यहां दोहराने की दृष्टि से चित्रकूट आते रहते हैं। देश के तत्कालीन राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री स्वयं इस मॉडल को देखकर आने के बाद इसकी प्रशंसा ही नहीं करते रहे बल्कि इसके अनुसरण की अनुशंसा करने में भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। गोंडा तो प्रारंभ से ही उनकी कर्मभूमि रहा और बाद में बीड़ व नागपुर भी।

नानाजी के बहुआयामी व्यक्तित्व को टुकड़ों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। मानव जीवन में जिस समग्रता के वे आग्रही थे, उन्हें भी उसी समग्रता से देखने की आवश्यकता है। उनके जीवन के हर आयाम, हर पहलू को आनेवाली पीढ़ी के समक्ष रखने का प्रकल्प है यह नानाजी वाङ्मय। नानाजी ने अपने सार्वजनिक जीवन के सात से अधिक दशकों में बहुत कुछ बोला और लिखा। राष्ट्रहित में शायद उससे भी ज्यादा उन्होंने अपने सीने में छुपाकर रखा।

नानाजी द्वारा स्थापित दीनदयाल शोध संस्थान ने उनके निधन के पश्चात् जब 'नानाजी समग्र' प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो उसकी संपादकीय टीम के सामने एक प्रश्न खड़ा हुआ कि नानाजी के विचारों का संकलन कैसे किया जाए? नानाजी के बहुत से सहयोगी उनसे पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। उनके साथ काम कर चुके या उनसे संपर्क में रहे बहुत से सहयोगियों की स्मृति काफी क्षीण हो चली थी। फिर भी लगभग दो वर्ष तक अलग-अलग स्रोतों से सामग्री जुटाने का प्रयास हुआ। संस्थान के दिल्ली व चित्रकूट कार्यालयों में काफी सामग्री मिली भी; लेकिन इमरजेंसी से पूर्व की सामग्री नहीं मिल पाई।

इस तैयारी के प्रारंभिक दिनों में कल्पना यह थी कि नानाजी ने अपने जीवनकाल में जो भी लिखा व बोला, उसे एकत्र कर कालखंड या विषयवार रूप में प्रकाशित किया जाए, ताकि आनेवाली पीढ़ियां जान सकें कि इस युग में भी एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति ने जन्म लिया था। जिसने अपना संपूर्ण जीवन दीन-दुखियों की सेवा, मानव जीवन को सार्थक बनाने, भारतीय मूल्यों के संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने, व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को एकात्म करने, देश की राजनीति को नई दिशा देने, विकास का देशानुकूल, परंतु साथ ही युगानुकूल प्रतिमान खड़ा करने में समर्पित कर दिया।

लगभग पांच हजार पन्नों की सामग्री को संकलित कर उन्हें नए सिरे से कंप्यूटरीकृत किया गया। इस बीच इस बात पर मंथन चलता रहा है कि समग्र को किस रूप में पेश किया जाए—कालखंडानुसार, विषयानुसार अथवा विधानुसार, यानी पत्रों, भाषणों, बौद्धिकों आदि को अलग छापा जाए। यों तो समग्र को कालखंडानुसार प्रकाशित करना सर्वाधिक श्रेयस्कर होता, लेकिन नानाजी के जीवनकाल के एक बहुत बड़े हिस्से का रिकॉर्ड तो बिलकुल ही उपलब्ध नहीं है। यह कालखंड यानी इमरजेंसी (1975) से पहले का काल।

ऐसा नहीं कि नानाजी व उनके सहयोगियों ने इससे पहले के नानाजी के भाषणों, पत्रों आदि का संग्रह नहीं कर रखा था। स्वयं नानाजी इस बारे में बताते रहे कि इमरजेंसी से पहले का उनका बहुत ही समृद्ध अभिलेखागार कहीं सुरक्षित जगह पर छिपाकर रखा गया था। क्योंकि उन परिस्थितियों में वह राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील था। जिन मित्रों के पास नानाजी की बहुत सी सामग्री थी, उनसे बीच-बीच में नानाजी की अनबन की बात समग्र में कहीं न कहीं पढ़ने को मिलेगी। लेकिन यह अनबन उनके अभिलेखागार के न मिल पाने का कारण नहीं रही होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। बहरहाल, इस महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन कालखंड की सामग्री तथा अन्य कुछ सामग्री अंत तक उपलब्ध नहीं हो पाई। दैवयोग से अगर कभी मिली, तो संस्थान उसे प्रकाशित करने में अपना सौभाग्य समझेगा।

बीते तीन बरसों में सभी संभावित और उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री एकत्र हो पाई, उसके आधार पर नानाजी समग्र को विषयवार प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। लेकिन नानाजी के कुछ वरिष्ठ सहयोगियों का मानना है कि इसे समग्र नहीं कहा जाए। क्योंकि नानाजी के जीवनकाल का एक बहुत बड़े भाग का लेखा-जोखा, जो उन्होंने स्वयं संजोकर रखा था, उपलब्ध नहीं है और उसके बिना उन्हें समग्रता से नहीं देखा जा सकता। वास्तव में, यह बहुत तकनीकी विषय है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर भी नानाजी का व्यक्तित्व समग्रता से देखा जा सकता है। बहुत से साक्षात्कारों व उनके द्वारा बाद में लिखे गए पत्रों आदि में नानाजी ने कई बार अपने उस कालखंड का विस्तार से उल्लेख किया है।

इसलिए उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही यह नानाजी वाङ्मय तैयार करने का निर्णय लिया गया।

विराट् पुरुष

नानाजी ने जिन विषयों पर विशेष जोर दिया, उन्हें प्रमुख रूप से निम्न विषयों में विभाजित किया गया। ये हैं–

1. सामाजिक पुनर्रचना
2. स्वावलंबन
3. शिक्षा
4. लोकनीति व राजनीति
5. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इनमें से प्रथम तीन विषय गोंडा, बीड़ और चित्रकूट प्रकल्पों से संबंधित हैं। इनमें प्रकल्पों की विस्तृत जानकारी (जो नानाजी के स्वयं के शब्दों में ही है), उनके लेख, भाषण, बौद्धिक व पत्रों का संग्रह है। सक्रिय राजनीति से दूर हो जाने के बाद भी नानाजी राजनैतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी लिया करते थे, लेकिन दखल नहीं दिया करते थे। वस्तुतः वह राजनीति से अधिक लोकनीति थी। यह एक ऐसा विषय रहा, जिस पर अन्य लोगों की नजर नानाजी के वक्तव्यों व विचारों पर रही। इसलिए कहीं-न-कहीं राजनीति पर उनके विचार संगृहीत होते ही रहे। संघ के मामले में तो वे जीवनपर्यंत स्वयं को स्वयंसेवक ही मानते रहे, और उनका कर्तृत्व भी उसी अनुरूप रहा। संघ के स्वयंसेवकों व अन्य पाठकों के लिए यह विषय भी बहुत रोचक रहेगा।

लेकिन यह समग्र तैयार करने की अंतिम अवस्था में संपादकों को एक नई समस्या से जूझना पड़ा। पुनरावृत्ति टालने के लिए जब Process of Elimination अपनाया गया, तब महसूस हुआ कि किन्हीं खंडों में सामग्री बहुत ही कम हो गई है और किसी में अधिक। इसलिए विभिन्न खंडों में विषयों का जिस प्रकार समावेश प्रस्तावित था, उसे बदलना आवश्यक हो गया।

वैसे भी इस वाङ्मय को अब समग्र न कहकर 'विराट् पुरुष नानाजी के जीवन के विभिन्न आयामों के प्रतिबिंब' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। विराट् पुरुष के चारों पुरुषार्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–की प्रतिमूर्ति थे नानाजी। उनके विचारों व कर्तृत्व को इन चारों विषयों में अलग-अलग तो विभाजित नहीं किया जा सकता, न ही यह संभव है, न ही वांछित। इसलिए प्रकाशन व पठनीयता की दृष्टि से इन्हें निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है–

1. साक्षात् नानाजी
2. समाजशास्त्री नानाजी
3. अर्थशास्त्री नानाजी
4. शिक्षाविद नानाजी
5. राष्ट्रऋषि नानाजी
6. राजनीतिज्ञ नानाजी

उपलब्ध सामग्री के आधार पर उपर्युक्त छह खंड आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं। संपादकीय टीम इनकी

विश्वसनीयता की पूरी जिम्मेदारी लेती है। यों तो प्रकाशन में किसी प्रकार की गलतियां न रह जाएं, इसका भरपूर प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी कोई गलती रह गई है तो उसके लिए संपादकीय टीम क्षमाप्रार्थी है।

इसके साथ ही सुधी पाठकों से निवेदन है कि अगर उन्हें नानाजी से संबंधित सामग्री कहीं भी उपलब्ध होने का भान होता है तो कृपया संस्थान के पते या दूरभाष पर संपादक को सूचित करने का कष्ट करें।

इस वाङ्मय के प्रकाशन में अनेकों लोगों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग रहा है। संस्थान के संरक्षक व पालक माननीय मदनदासजी इसमें निरंतर रुचि लेते रहे, इसकी प्रगति की जानकारी लेते रहे, मार्गदर्शन व सुझाव देते रहे। प्रधान सचिव डॉ. भरत पाठक ने चित्रकूट में जो सामग्री थी, उसे संपादकीय टीम को उपलब्ध कराने में स्वतःस्फूर्त भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व में चित्रकूट की टीम ने बिना किसी हस्तक्षेप के बहुत ही सटीक और व्यावहारिक सुझाव दिए। नानाजी के साथ भरतजी का लंबा अनुभव संपादकीय टीम के लिए बहुत काम आया। नानाजी के प्रति असीम भक्ति-भाव में डूबे संगठन सचिव श्री अभय महाजन को तो इसके प्रकाशन की चिंता निरंतर सताए रहती थी। उसके लिए उन्होंने कभी भी किसी भी प्रकार के संसाधनों की समस्या खड़ी नहीं होने दी। कुछ ऐसी समस्याओं के समाधान में भी उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही, जिनका उल्लेख किया जाना वांछनीय नहीं है।

नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. देवेंद्र स्वरूपजी और श्री यादवराव देशमुख से भी प्रारंभिक काल में विस्तार से चर्चा हुई। संस्थान के सचिव तथा दीर्घकाल तक नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. महेश चंद्र शर्मा पिछले तीन वर्षों में लगातार इसकी तैयारियों में रुचि लेते रहे। वाङ्मय का प्रथम प्रारूप उन्हीं के मार्गनिर्देशन में और सहमति से तैयार हुआ तथा उसका वर्तमान स्वरूप भी। हर कदम पर उन्होंने वाङ्मय के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया।

श्रीमती सुमेधा मिश्रा ने इसके प्रकाशन में सूत्रधार की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बहुत विशाल भंडार था उनके सामने। उसमें से छंटाई करना, पुनरावृत्ति को टालना, संपादन करना, संदर्भ ढूंढ़ना, सामग्री को सिलसिलेवार संजोना, सचमुच भारी-भरकम काम था। इसके लिए लगन, निष्ठा, मेहनत व तन्मयता के साथ-साथ धैर्य की भी आवश्यकता थी। इन सभी गुणों का सुमेधाजी ने खूब परिचय दिया।

संस्थान के हर काम में सहयोगी रहने वाले पत्रकार राकेश शुक्ल ने संपादन में भी एक गुणी सहयोगी की भूमिका निभाई। समय-समय पर अन्य पत्रकार मित्रों ने भी पन्नों को पलटा और अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

संस्थान के दिल्ली कार्यालय में उपमहाप्रबंधक और वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री अमिताभ वशिष्ठ ने वाङ्मय के प्रकाशन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं जुटाकर काम को आसान किया। नानाजी के साथ बरसों तक कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करनेवाले संस्थान के महाप्रबंधक मेजर टी.आर. वर्मा इस महायज्ञ के लिए सदैव उपस्थित रहे।

बहुआयामी नानाजी के अनन्य सहायक रहे हेमंत पांडे संस्थान के हर काम में बहुपयोगी रहते हैं। नानाजी के साथ उनका लंबा अनुभव बहुत काम आया। इस वाङ्मय के प्रकाशन में भी उनकी उपयोगिता

हर कदम पर महसूस हुई और काम आई। ऐसे ही अंशुमान सिंह भी ऑलराउंडर हैं। हर किसी तरह के काम में मुसकराते हुए प्रस्तुत रहे। मुकेश का संस्थान या नानाजी से पहले का कोई परिचय नहीं रहा। लेकिन उन्होंने बहुत जल्दी ही पूरे काम को अच्छे से आत्मसात् कर लिया। श्री गब्बर सिंह रावत ने संस्थान के अभिलेखागार से पुरानी पुस्तकें व अन्य संदर्भ ढूंढ़ने में बहुत मदद की।

सुश्री दीपा सूद लगभग एक दशक से संस्थान के प्रकाशनों हेतु ग्राफिक व लेआउट डिजाइनिंग में जुड़ी हुई हैं। मामूली से संकेतों से ही नानाजी की पसंद, नापसंद को समझ जाती हैं और उसी के अनुरूप आउटपुट देती हैं।

प्रभात प्रकाशन किसी भी राष्ट्रवादी प्रकाशन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। नानाजी के लिए तो प्रभात कुमारजी ने स्वयं को समर्पित कर ही रखा है। उन्होंने इस वाङ्मय के प्रकाशन की जिम्मेदारी स्वेच्छा से ली। उनका हार्दिक साधुवाद।

इस महत्त्वपूर्ण प्रकाशन में सहयोग देने वाले जिन सहयोगियों के नाम यहां उल्लेख होने से रह गए हैं, उनसे करबद्ध क्षमाप्रार्थना।

युगाब्द 5116, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी
11 अक्तूबर, 2014, नई दिल्ली

अतुल जैन
संपादक

(प्रस्तुत वाङ्मय में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त नानाजी ने अपने जीवनकाल में एक पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' शीर्षक से 1979 में लिखी थी, जिसे दीनदयाल शोध संस्थान ने प्रकाशित किया था। उस समय देश भयंकर राजनैतिक झंझावात से गुजर रहा था। संघ के बहाने कुछ राजनैतिक तत्त्वों ने देश को फिर से अस्थिरता के दौर में ढकेल दिया था। इस पुस्तक में राजनैतिक दुर्भावना के शिकार संघ का विचारोत्तेजक अध्ययन अद्वितीय है। अगस्त 2011 में प्रभात प्रकाशन ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।)

विषय-सूची

	आमुख	**v**
	विराट् पुरुषः नानाजी देशमुख	**vii**
1.	ग्रामोदय : स्वावलंबन का अधिष्ठान	1
2.	प्रकृति का सम्मान : ग्राम विकास का मूलमंत्र	4
3.	परंपराओं का त्याग विनाशकारी साबित होगा	7
4.	सर्वांगीण ग्राम विकास देशानुकूल और युगानुकूल हो	10
5.	उद्यमशीलता : सबकी जिम्मेदारी	18
6.	जनशक्ति : पुनर्रचना की वाहक	23
7.	लाभकारी कृषि : ग्राम अर्थव्यवस्था की रीढ़	27
8.	वैकल्पिक औद्योगीकरण : बेरोजगारी और विषमता का हल	30
9.	भविष्य का भारत : पाश्चात्य पथ अनुकूल नहीं	36
10.	ग्रामोदय कोष : आत्मनिर्भरता का सोपान	42
11.	स्वावलंबन : स्वराज्य का अधिष्ठान	46
12.	ग्राम शिल्प : ग्राम्य जीवन का पोषण-मंत्र	49
13.	विकेंद्रीकरण देश की आत्मा में बसता है	53
14.	खाद्यान्न आत्मनिर्भरता : कृषि से भारत का भाग्योदय	56
15.	गोपालन : स्वावलंबन की धुरी	71
16.	उद्यमिता विद्यापीठ : स्वरोजगार की नूतन प्रयोगशाला	80
17.	लोकशक्ति जागरण : ग्राम विकास का उपक्रम	84
18.	स्वतःस्फूर्त युवाशक्ति : सर्वांगीण विकास का संकल्प	88
19.	चित्रकूट प्रकल्प : चतुष्पुरुषार्थ का प्रकटीकरण	92
20.	आजीवन आरोग्य : समाज-धर्म है कौटुंबिक स्वास्थ्य	114
21.	पत्र	125

ग्रामोदय
स्वावलंबन का अधिष्ठान

ग्राम-पुनर्रचना का विषय कोई नया नहीं है। स्वाधीनता संघर्ष के दिनों में भी अनेक मनीषियों की दृष्टि ग्रामों की दुर्दशा पर गई थी। दादाभाई नौरोजी और रमेशचंद्र दत्त आदि ने ब्रिटिश शासकों द्वारा भारतीय ग्रामों के शोषण के बारे में काफी खोजपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की थी। भारतीय राजनीति में गांधीजी के प्रवेश के पूर्व बंगभंग व स्वदेशी आंदोलनों के दिनों में ग्रामों में जाकर बसने व काम करने का विचार अनेक युवाओं के मन में उठा था।

दक्षिण अफ्रीका में रहते हुए ही 1909 में गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' नामक छोटी सी पुस्तिका में पाश्चात्य औद्योगिक व शहरी सभ्यता के दोषों और दुष्परिणामों पर दृष्टि केंद्रित की थी। उन्होंने ग्राम्य जीवन को ही मानव सुख और शांति का एकमात्र मार्ग बताया था। 1915 में भारत आगमन के पश्चात् उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन का नेतृत्व करते हुए भी ग्राम पुनर्रचना के कार्य को वरीयता प्रदान की। प्रत्येक कांग्रेसी कार्यकर्ता के लिए रचनात्मक कार्य में सम्मिलित होना अनिवार्य बनाया और ग्राम पुनर्रचना ही रचनात्मक कार्यक्रम की धुरी बनाई।

एक समग्र दृष्टि को लेकर गांधीजी ने भारत की आर्थिक, शैक्षणिक, सामाजिक व राजनीतिक पुनर्रचना का केंद्र-बिंदु ग्राम्य जीवन को बनाया। गांधीजी से प्रेरणा लेकर जे.सी. कुमारप्पा, भरतन कुमारप्पा आदि विद्वानों ने ग्राम-पुनर्रचना के महत्त्व का प्रतिपादन करने के लिए विपुल साहित्य का सृजन किया, जिसमें 'ग्रामवाद' को पाश्चात्य औद्योगिकवाद व समाजवाद आदि विचारधाराओं के विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया। वस्तुतः गांधीजी को ही 'गांव की ओर वापस लौट चलो' आंदोलन का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

आदर्श गांवों की कल्पना

गांधीजी ने आदर्श गांव का एक कल्पना-चित्र प्रस्तुत किया। उनकी एक ही आकांक्षा रही कि इस कल्पना चित्र को साकार रूप देनेवाले आदर्श गांव का कम-से-कम एक नमूना तो खड़ा करके दिखाया जाए। अपनी कल्पना को साकार करने हेतु उन्होंने अपने आश्रम के लिए वर्धा जिले में एक छोटे से गांव को चुना। अपने जीवन काल में ग्रामोद्योग परिषद् जैसी अनेक संस्थाओं

मंथनः ग्राम पुनर्रचना विशेषांक, 1980

को खड़ा किया। गांधीजी के जीवन से अनुप्राणित होकर अनेक तेजस्वी कार्यकर्ताओं ने ग्राम-पुनर्रचना को ही अपना जीवन-व्रत बना लिया। ग्राम पुनर्रचना की दिशा में गांधीजी की प्रेरणा से प्रारंभ हुए इस प्रयास को अब साठ से अधिक वर्ष पूरे हो रहे हैं।

आगे चलकर लोकनायक जयप्रकाश भी प्रत्यक्ष राजनीति से संन्यास लेकर ग्राम पुनर्रचना के कार्य में जुट गए। बिहार के मुशहरी प्रखंड को उन्होंने अपनी प्रयोगशाला के रूप में चुना। समग्र आंदोलन द्वारा भी उन्होंने ग्रामों के सर्वांगीण विकास की समस्या पर युवा-पीढ़ी की दृष्टि को केंद्रित करने का प्रयास किया। गांधीजी के नाम से जुड़ी हुई अनेक संस्थाएं आज भी ग्राम पुनर्रचना के क्षेत्र में सक्रिय हैं। किंतु इन प्रयासों के फलस्वरूप गांधीजी की कल्पना के आदर्श ग्राम का एक भी नमूना क्या कहीं खड़ा हो पाया? यदि नहीं, तो क्यों नहीं हुआ? क्या गांधीजी के चिंतन में ही कहीं कोई कमी रह गई थी? क्या आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता का उनका मूल्यांकन गलत था? क्या यह सभ्यता ही मनुष्य की प्रगति की सही व स्वाभाविक दिशा है? उससे विपरीत दिशा में चलने का प्रयत्न अव्यावहारिक है, व्यर्थ है।

पश्चिमी सभ्यता के दोष

किंतु जब हम पश्चिम के अति विकसित देशों में विद्यमान सभ्यता के संकट व उसके बारे में चल रही वर्तमान बहस पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें यह मानने के लिए विवश होना पड़ता है कि गांधीजी ने इस शताब्दी के आरंभ में ही इस सभ्यता के जिन दोषों व दुष्परिणामों की ओर संकेत किया था, वही आज पश्चिम के श्रेष्ठ विचारकों व समाजशास्त्रियों के लिए चिंता व चर्चा का मुख्य विषय बन गए हैं। शहरीकरण, ऊर्जा संकट, प्रदूषण, प्राकृतिक साधनों का द्रुतगति से क्षय, मशीनीकरण, उपभोग के नित नए व असीमित साधनों के बाहुल्य के बावजूद जीवन में रिक्तता, एवं सुख और शांति का अभाव, यही सब विषय हैं जो आज पश्चिम के मन-मस्तिष्क पर छाए हुए हैं। इसी चिंता में से शुमाखर, ई.जे. मिशान और गैलब्रेथ जैसे विचारक पैदा हो रहे हैं। अनेक वैज्ञानिक व बुद्धिजीवी शहरी सभ्यता से भागकर प्रकृति से जुड़ी हुई एक सरल-सहज जीवन रचना की खोज में लग गए हैं। इस बहस और इन प्रयासों को देखकर, यह विश्वास पैदा होता है कि गांधीजी का चिंतन और प्रयोग सही दिशा में थे। वे सचमुच अपने समय से बहुत आगे देख रहे थे।

किंतु प्रश्न तो यह है कि भारत आदर्श गांव का कोई नमूना अब तक खड़ा क्यों नहीं कर पाया? इस समय भी देश में सरकारी व अर्ध-सरकारी प्रेरणा से सहस्रों संस्थाएं ग्राम पुनर्रचना के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। अरबों-करोड़ों रुपयों की देशी-विदेशी धनराशि ग्राम पुनर्रचना के नाम पर खर्च होती है। भारतीय ग्रामों की समस्याओं व उनके हल के बारे में सहस्रों पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं, किंतु इस सबका परिणाम क्या है? इन प्रयासों की उपलब्धि क्या है? इनके अनुभव क्या हैं?

इन अनेक प्रयासों में दीनदयाल शोध संस्थान भी कुछ समय से सम्मिलित हो गया है। प्रखर

देशभक्त और मौलिक विचारक दीनदयालजी की पावन स्मृति में स्थापित इस संस्थान की समस्त गतिविधियों का एक ही लक्ष्य रहा है कि उदात्त किंतु अमूर्त भारतीय जीवन-मूल्यों को व्यक्तिगत और सामूहिक आचरण में साकार रूप देनेवाली सर्वांगीण जीवन रचना की बौद्धिक एवं व्यावहारिक धरातल पर खोज की जाए। हमारा यह विश्वास बना है कि केवल बौद्धिक चर्चा ही स्वयं में पर्याप्त नहीं है, उसे प्रत्यक्ष आचरण व प्रयोगों का आधार प्राप्त होना आवश्यक है।

□

प्रकृति का सम्मान
ग्राम विकास का मूलमंत्र

मानव ने अनुभव किया था कि उसका निरंतर घूमते रहना एवं एकाकी जीवन जीना बहुत कष्टकर एवं असुरक्षित है। स्थायी एवं सामुदायिक जीवन बिताना सब दृष्टियों से सुखद एवं सुरक्षित है। अतः मानव ने सुख-सुविधाओं की दृष्टि से अनुकूल स्थान का चयन किया। उसे आबाद किया। इसी आबादी को ग्राम नाम से संबोधित किया जाने लगा। इस प्रकार ग्राम अस्तित्व में आए। ग्राम-विकास का अर्थ है ग्राम के परिसर एवं उस परिसर में रहनेवाले सभी निवासियों का सर्वांगीण विकास करना।

मानव विकासशील प्राणी है। प्रकृति के रहस्यों का अधिकाधिक आकलन करना तथा जीवनोपयोगी साधनों का विकास एवं आविष्कार करना उसका स्वभाव है। तदनुकूल सामाजिक जीवन की पुनर्रचना की प्रक्रिया भी चलती रहना अनिवार्य है। यह ही उन्नतिशील एवं गतिशील समाज की परिचायक है। अतः ग्राम-विकास कार्य युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का कार्य है। इस कार्य को संपन्न करने के लिए हमें सामाजिक जीवन के मूल तत्त्वों को जानना एवं समझना जरूरी है।

समाज में परस्पर-पूरकता

सामाजिक जीवन चार अंगों में विभाजित है—व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, व्यावसायिक जीवन तथा सामाजिक जीवन। सामाजिक जीवन के इन चार अंगों में अर्थात् व्यक्ति, परिवार, व्यवसाय एवं समाज में परस्पर-पूरकता ही स्वस्थ, सुखी, प्रगतिशील एवं उन्नत समाज की आधारशिला है। व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। वह परिवार में जन्म पाता है। उसी में पलता, बढ़ता तथा बड़ा होकर संपूर्ण जीवन बिताता है। किंतु परिवार भी अकेला नहीं रह सकता। कम से कम पांच-पच्चीस परिवार मिलकर एक आबादी का रूप खड़ा करते हैं। इसी से स्पष्ट होता है कि मानव समाज का अभिन्न अंग है। वह समाज से अलिप्त रहकर अपना जीवन नहीं चला सकता। समाज के सभी घटकों का जीवन एक-दूसरे पर निर्भर रहता

ग्राम विकास नानाजी के हृदय-पटल पर अंकित था और ग्रामवासी उनके हृदय के सबसे निकट थे। भारतीय संदर्भ में ग्राम विकास को ही वे देश के सर्वांगीण विकास की कुंजी मानते थे।
मंथन, मार्च 1990

है। सभी के परस्पर सहयोग से ही सबकी आर्थिक एवं आत्मिक आवश्यकताएं पूर्ण होती हैं। उसी से मानव हृदय की विशालता विकसित होती है और मानव मानवीयता से विभूषित होता है।

इन मूलभूत बातों को ध्यान में रखकर ही पुरातन काल में ग्राम का हर निवासी अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुसार ग्राम-समाज की किसी-न-किसी आवश्यकता को पूर्ण करने वाला व्यवसाय अपनाता था। व्यवसाय के मूल में समाज सेवा की उदात्त भावना काम करती थी। परिणामस्वरूप व्यवसायों में सहज रूप से प्रामाणिकता अनुभव करने को मिलती थी। परस्पर विश्वास बना रहता था। परस्पर-पूरकता नित्य प्रति का जीवन थी। संवेदनशीलता के आधार पर खड़ा यह परस्पर-पूरकता का जीवन समाज में किसी भी प्रकार की विषमता पनपने नहीं देता था। समाज स्वस्थ, सुखी एवं उन्नतशील बना रहता था।

प्रकृति प्रदत्त संवेदनशीलता

अपने पुरातन मनीषियों ने मानव मन का गहन अध्ययन एवं विश्लेषण किया था। मानव में भी अन्य शरीरधारी प्राणियों के समान वासना प्रेरित भोगाभिलाषा विद्यमान है, किंतु मानव अन्य प्राणियों के समान केवल वासना तृप्ति तक ही सीमित नहीं रहता। उसमें प्रकृति प्रदत्त संवेदनशीलता की विशेषता है। इस विशेषता के कारण वह दूसरों के सुख-दु:ख की अनुभूति कर सकता है। दूसरों को दु:ख-मुक्त करने में एवं सुख पहुंचाने में उसे मानसिक संतोष मिलता है। इस संतोष प्राप्ति के लिए वह अपनी वासनाओं पर संयम का अंकुश लगाने की क्षमता रखता है। अपने पारिवारिक जीवन में उसे इसका अभ्यास होता है। इस प्रकार वह दूसरों के लिए पूरक बनता है। मानव के इसी गुण को मानवीयता या इनसानियत कहते हैं। इसी विशेषता के कारण मानव मानवमात्र के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इस संवेदनशीलता को विकसित करने अर्थात् व्यापक बनाने के लिए अनुकूल वातावरण बनाए रखा गया तो हर व्यक्ति अपनी संपूर्ण आबादी के लिए पूरक बनकर अपना तथा सभी निवासियों का जीवन सुखानंद से परिपूर्ण करने में संलग्न रहता है।

मानव का स्वभाव एवं उसकी प्रवृत्ति जन्म काल से उपलब्ध वातावरण के अनुसार बनती है। इसी वातावरण को अपनी सनातन परंपरा में सुसंस्कारों के नाम से संबोधित किया है। मानव को केवल भोग-प्रवण बनाने वाले संस्कारों को कुसंस्कार कहा गया है। अपने शास्त्रों ने मानव के गर्भ में प्रवेश पाने के काल से ही सुसंस्कारों की विधि को विशेष महत्त्व प्रदान किया है। इसी कारण हिंदू विवाह को एक पावन संस्कार माना गया है। अपने जीवन-दर्शन के अनुसार विवाह दो आत्माओं के मंगल मिलन की विधि है। विवाह गृहस्थाश्रम का शुभारंभ है। वह समाज के स्थायित्व के दायित्व को निभाने के मानवीय कार्यों का पुनीत संकल्प है। गृहस्थाश्रम को कुटुंब या परिवार कहा जाता है। परिवार मानवीय सुसंस्कारों की सहज, स्वाभाविक एवं प्राथमिक इकाई है। इसी कारण परिवार को सामाजिक जीवन की आधारभूत

इकाई माना गया है। इसी इकाई में गर्भावस्था के काल से ही मानवीयता के सुसंस्कार संभव होते हैं।

परिवार की पुनर्प्रतिष्ठा

काल के प्रवाह में पारिवारिक जीवन की यह मौलिक दृष्टि लुप्त हुई है। फलस्वरूप, व्यक्ति अपने परिवार तक तथा परिवार अपनी संतान तक सीमित हो गया है। परिवार एवं समाज में परस्पर पूरकता के संबंध समाप्त हो गए हैं। इसके दुष्परिणामों का ही फल है वर्तमानकालीन सामाजिक दुर्दशा। इन अनिवार्य सुसंस्कारों के लिए परिवार के अतिरिक्त वैकल्पिक व्यवस्था असंभव है। अतः सर्वांगीण ग्राम-विकास की सफलता के लिए परिवार को सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने के काम को सर्वाधिक महत्ता देनी होगी।

सामाजिक जीवन की सुख-सुविधाओं के लिए तथा मानव मन की विशालता अर्जित करने के लिए प्रकृति प्रतिष्ठा की महत्ता सर्वोपरि है। इस धर्म को भारतीय मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व अनुभव किया था। अध्यात्म प्रधान सुसंस्कारों की परंपरा के कारण मानव मन में कृतज्ञता की भावना विकसित हुई थी। धरती माता, गंगा माता, गो माता आदि परंपरागत धारणाएं उसी का सुफल हैं। यह हिंदू संस्कृति की मानव मात्र के लिए विशेष देन है। इसी विशेषता के कारण अपने हजारों साल पुरातन समाज को न कभी प्रदूषण की विभीषिका का संकट झेलना पड़ा था, न प्राकृतिक संपदा की कमी अनुभव हुई थी। प्रकृति को मातृशक्ति के रूप में स्वीकार करने के कारण उसका दोहन करते समय अंतःकरण में समाई हुई कृतज्ञता की भावना प्रकृति की समृद्धि को कायम रखने की प्रेरणा देती रही।

गत तीन शतकों से पश्चिमी देशों में विज्ञान एवं तकनीकी की आश्चर्यजनक प्रगति हो रही है। किंतु मानवीय जीवन-दृष्टि के अभाव में तथा भोगवादी आकांक्षाओं के कारण ईश्वर प्रदत्त प्राकृतिक संपदा का बेहिसाब दोहन किया जा रहा है। परिणामतः प्रदूषण की विभीषिका एवं प्राकृतिक स्रोतों का अत्यधिक ह्रास मानव मात्र के अस्तित्व के लिए संकट बन गया है। विशेष चिंता का विषय है कि उपर्युक्त वस्तुस्थिति के बावजूद इस विनाशकारी सभ्यता का आकर्षण एवं प्रसार निरंतर बढ़ रहा है। इसका विकल्प प्रस्तुत कर मानवीय जीवन दृष्टि को प्रभावी बनाने का दायित्व केवल भारत ही निभा सकता है। इसके लिए आवश्यक तत्त्व प्रणाली अपनी ही परंपरा में विद्यमान है। इस परंपरागत दायित्व को निभाने के लिए हमें प्रारंभ में ग्रामोदय अभियान की प्रक्रिया को ही माध्यम बनाना होगा।

☐

परंपराओं का त्याग विनाशकारी साबित होगा

भारत हमारी केवल मातृभूमि ही नहीं, कर्मभूमि भी है। आजीवन कार्यरत रहना शरीर धर्म है। हम मानव हैं। अतः हमारा कर्म पशु समान उदर-भरण तक ही सीमित न हो, वह अपनी मातृभूमि को अर्थात् संपूर्ण समाज को समृद्ध एवं उन्नत बनानेवाला हो। अपनी सांस्कृतिक परंपरा का यही संकेत है। अतः प्रत्येक का कर्म अपने लिए या अपने परिवार के लिए सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराने तक ही न रहे। वह अपनी संपूर्ण आबादी की समृद्धि का कारण बने।

हम लोग अर्थात् अपना समाज अनंतकाल से एवं अखंड रूप से इसी मातृभूमि की गोद में पलता आ रहा है। अपनी संतान इसी भूमि में पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदा-सर्वदा सुख-सुविधापूर्ण तथा उन्नत जीवन बिता सके, इसका ध्यान रखते हुए हमारी कर्म-साधना गतिमान होनी चाहिए। अतः हमें नई पीढ़ी में नौकरियों के माध्यम से उदर-भरण करने के स्थान पर स्वरोजगार द्वारा पारिवारिक एवं सामाजिक समृद्धि की वृद्धि में योगदान देने की प्रेरणा जगानी होगी। इस पृष्ठभूमि में हमें कृषि विकास की विधि अपनानी होगी। पश्चिमी देशों के वैज्ञानिक भी, जो ग्राम-विकास में लगे हुए हैं, इस बात के महत्त्व को मानने लगे हैं।

आधुनिकता के आवरण में यंत्र आधारित खेती का प्रसार बढ़ा है। किंतु उसके भी दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होने लगे हैं। ट्रैक्टर आदि के लिए डीजल का उपयोग करना पड़ता है। डीजल नवीनीकरण योग्य तत्त्व नहीं है। अर्थात् यह नान-रिन्यूएबल एनर्जी है। भूमि में उसका भंडार सीमित है। उसका उपयोग संयम से करना अनिवार्य है। अन्यथा कुछ ही काल में वह समाप्त होगा और आनेवाली पीढ़ियां उससे वंचित होंगी। बैलों का उपयोग सब दृष्टियों से लाभकारी है। बैलों का खाद्य वह है, जो मानव के लिए अखाद्य है। उनका मूत्र तथा गोबर खेती के लिए उत्तम खाद है। मृत बैल का चमड़ा, हड्डी, सींग आदि भी मानवीय आवश्यकताएं पूर्ण करते हैं।

भारत का हल भी आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से श्रेष्ठतम माना जा रहा है। जमीन की अधिक गहराई तक पोली करने के बावजूद वह सतह से नौ इंच से कम गहरी जमीन ऊपर नीचे करता है। फलस्वरूप नौ इंच से नीचे की जमीन के अंदर समाए हुए उपजाऊ तत्त्व कायम रहते हैं। वह

मंथन, मई 1990

ही जमीन की स्थायी उपजाऊ शक्ति होती है। ट्रैक्टर में यह विशेषता नहीं है। ग्राम-विकास कार्य में हमें इस पहलू को विशेष महत्त्व देना चाहिए।

पशुपालन को लोकप्रिय बनाना होगा

आधुनिक औद्योगीकरण के कारण पश्चिमी देशों में शहरीकरण लगभग पूर्ण हुआ है। शहरी आबादी के लिए पर्याप्त दूध एवं गो-मांस उपलब्ध कराना पश्चिमी देशों की प्राथमिकता है। शहरों के लिए ही डेयरी डेवलपमेंट उनके लिए अनिवार्य है। यंत्रीकरण होने के पूर्व उन देशों में घोड़ों से खेती हुआ करती थी। गाय दूध तथा मांस के ही काम आती थी। भारत की स्थिति और परंपरा सर्वथा भिन्न है। औद्योगीकरण के बावजूद अपने देश की तीन-चौथाई आबादी गांवों में है। उनमें से अधिकांश लोगों का व्यवसाय खेती है। हमारी खेती अनंतकाल से बैलों द्वारा होती आई है। अपने यहां खेतों के आकार छोटे-छोटे हैं। अस्सी प्रतिशत किसानों के पास पांच एकड़ से भी कम कृषि भूमि है। उसे ट्रैक्टर से जोता नहीं जा सकता। अतः बैलों का उपयोग अनिवार्य है। दूध एवं बैल हमारे गांव-गांव की नितांत आवश्यकता है। अपने जीवन के इस पहलू की उपेक्षा करना ग्राम-विकास के प्रतिकूल है।

विदेशी सांड़ों के वीर्य से संकरित गायें ग्रामीण अंचल के लिए उपयुक्त नहीं हैं। उनके रख-रखाव के लिए हमारी जलवायु उपयुक्त नहीं है। उनसे अपने यहां की गरमी सहन नहीं होती। संकरित गायों से अधिकतम दूध पाने के लिए गरमी में उनके लिए बिजली के पंखे और कूलर आवश्यक होते हैं, जबकि अपने देश में खेती की सिंचाई के लिए भी बिजली उपलब्ध नहीं होती। इन गायों के स्वास्थ्य की देखभाल भी नियमित रूप से होना जरूरी है। इनमें रोगग्रस्त होने की संभावना अधिक है। ऐसी गायें पालना गांव-गांव के किसानों के लिए संभव नहीं होता। ये केवल शहरी संस्कृति के लिए ही उपयोगी हैं।

इन संकरित गायों के बैल भी हमारी खेती व यातायात के लिए उपयुक्त नहीं हैं। अपने देश में साल में कम-से-कम आठ महीने गरमी का मौसम रहता है। उन्हीं दिनों खेती से अधिक काम रहता है। संकरित गायों के बैल धूप में काम नहीं कर पाते। जिनके पास संकरित गायें हैं, उन्हें भी खेती एवं यातायात के लिए देशी गायों के बैलों का ही उपयोग करना पड़ता है।

अपने देश में गीर, कांकरेज, थारपारकर, लाल सिंधी, साहीवाल, राठी, हरियाणवी आदि नस्लों की गायों का ठीक से पालन किया जाए तो वे संकरित गायों की बराबरी से दूध देती हैं। उनके लिए डॉक्टरों पर नियमित व्यय करना नहीं पड़ता। न उन्हें पंखों और कूलरों की जरूरत पड़ती है। इतना ही नहीं, वे अपने कृषि के लिए सुयोग्य बैल प्रदान करती हैं। आज भी अपने देश में खेती के अतिरिक्त पचास प्रतिशत से अधिक यातायात बैल-गाड़ियों पर ही निर्भर है। देशी गायें ही हमारे आर्थिक जीवन का आधार हैं और वह बनाए रखना ही सब दृष्टियों से श्रेयष्कर है।

आवश्यकता है कि हम अपने ग्राम-विकास के कार्यक्रम में पशु नस्ल सुधार का कार्यक्रम सम्मिलित करें। प्रति ग्राम गीर, साहीवाल, हरियाणवी आदि नस्लों का एकाध सांड़ रखें। उसका ठीक से पालन-पोषण करें। इससे गांव भर की गायों का नस्ल सुधार होगा। गायों की तीसरी पीढ़ी की गायों से प्रतिदिन सहज में ही सात-आठ लीटर दूध मिलना प्रारंभ होगा। खेती एवं

यातायात के लिए उत्तम बैल उपलब्ध होंगे। भेड़, बकरियां तथा अन्य पशुपालन भी ग्राम-विकास की दृष्टि से बहुत लाभकारी होता है।

कुटीर उद्योगों की उपेक्षा

अंग्रेजों ने अपनी हुकूमत के काल में जान-बूझकर हमारे परंपरागत कुटीर एवं ग्रामोद्योगों को खत्म किया था। आजादी पाने के बाद भी इन उद्योगों की उपेक्षा हो रही है, परिणामस्वरूप शहरों की ओर ग्रामीणों की दौड़ बड़ी तेजी से बढ़ रही है। गांव उजड़ रहे हैं। और शहरों में गंदी बस्तियां बढ़ती जा रही हैं। अपने यहां कृषि योग्य भूमि सीमित है। वह बढ़ती हुई आबादी का बोझ संभाल नहीं सकती। बड़े-बड़े उद्योग भी ग्रामीण बन्धु-बहनों को काम नहीं दे पाते। स्किल्ड लेबर के बहाने अन्यत्र से लोगों को लगाकर बसाया जाता है। आटोमेशन प्रगति का परिचायक बन गया है। इसका अर्थ है—उत्पादन में कम-से-कम लोगों का उपयोग करना। यह दिशा देश में विषमता, अपराध वृद्धि एवं अराजकता का कारण बन रही है।

अत: हमें आधुनिक तकनीकी दिशा बदलने की दृष्टि से ग्रामीण स्तर पर प्रयोग करने होंगे। विज्ञान प्रकृति के रहस्यों की खोज करता है। उससे मानवीय उपयोग के नए-नए माध्यम उपलब्ध होते हैं। कहीं भी उपलब्ध हुई वैज्ञानिक खोज संसार भर में उपयोगी सिद्ध होगी। किंतु यह बात तकनीकी के लिए लागू नहीं हो सकती। तकनीकी का विकास स्थानीय स्तर पर ही करना लाभकारी होता है। कारण हर क्षेत्र में प्रकृति प्रदत्त साधन स्रोत भिन्न-भिन्न हैं। अत: जहां जो प्राकृतिक संपदा जिस किसी रूप और मात्रा में उपलब्ध होगी, उसी आधार पर वहां की तकनीकी का विकास करना होगा। इसी से स्थानीय प्रतिभा विकसित होगी। सभी क्षेत्रों का आर्थिक विकास संभव होकर देश में आर्थिक संतुलन बढ़ेगा।

ग्राम विकास की दिशा में कुटीर एवं ग्रामोद्योग का विचार करते समय हमें उपर्युक्त तत्त्वों को आधार बनाना होगा। हमें सर्वप्रथम इस बात का अध्ययन करना पड़ेगा कि अपने ग्राम के चारों ओर फैले परिसर में खेती से, जंगल से, पेड़-पौधों से या खनिज-द्रव्यों में से क्या-क्या उपलब्ध है? वह कितनी मात्रा में है? उपलब्ध कच्चे माल को मानव के उपयोग के लिए उपयुक्त तैयार माल में रूपांतरित करने के लिए कौन सी तकनीकी प्रक्रिया अपनानी होगी। उस तकनीकी का संभवत: परंपरागत रूप किसी-न-किसी मात्रा में वहां उपलब्ध होगा। आधुनिक विज्ञान का उपयोग कर पुरातन तकनीकी विधि को उन्नत बनाने पर आवश्यक ध्यान देना होगा। इसी से स्थानीय स्तर पर नई पीढ़ी के लिए काम उपलब्ध होगा। प्राकृतिक संपदा ग्रामीण अंचल में ही उपलब्ध होती है, शहरी क्षेत्र में नहीं। अत: उपलब्ध प्राकृतिक संपदा को तैयार माल के रूप में परिवर्तित करने का कार्य ग्रामीण स्तर पर ही किया जाना चाहिए। इसी से ग्रामीण अंचल में पर्याप्त मात्रा में रोजगार उपलब्ध होगा। शहरों की ओर प्रचलित दौड़ रुकेगी। शहरों में बना माल गांवों की ओर आने के स्थान पर ग्रामों में बना माल शहरों में जाने लगेगा। ग्रामों की आय बढ़ेगी। ग्रामीण अंचल समृद्धि की दिशा में गतिमान होगा। शहरों की गंदी-बस्तियों में नारकीय जीवन बिताना छोड़कर अपने ग्रामों को लौटने की चाह बढ़ेगी। □

सर्वांगीण ग्राम विकास
देशानुकूल और युगानुकूल हो

हमारा स्वतंत्रता संग्राम केवल राजनीतिक ही नहीं था। उसका लक्ष्य विदेशी हाथों से सत्ता छीनकर देशी हाथों में सौंपने तक सीमित नहीं था। वह था दो सभ्यताओं में संघर्ष। सच्चे अर्थों में वह सांस्कृतिक युद्ध था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की स्थापना के साथ ही पश्चिम में उपजी नवोदित औद्योगिक सभ्यता का भारत में प्रवेश प्रारंभ हुआ। उन्नीसवीं सदी की भारतीय मनीषा ने उसे अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए चुनौती माना था। स्वातंत्र्य संग्राम के दार्शनिकों व अग्रणियों ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि भारत इस औद्योगिक सभ्यता की बाढ़ में प्रवाह-पतित के समान कदापि नहीं बहेगा। अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त जीवन दर्शन, वैज्ञानिक समाज रचना तथा अखंड अनुभव परंपरा के प्रकाश में अपनी मौलिक प्रतिभा से स्थायी मानवीय मूल्यों पर आधारित, आधुनिक आविष्कारों से लाभ उठाते हुए युगानुकूल सामाजिक व आर्थिक रचना खड़ी करेगा, जो शेष विश्व के लिए भी अनुकरणीय बन सके।

स्वतंत्र भारत का लक्ष्य

विवेकानंद, अरविंद, तिलक एवं गांधी आदि मनीषियों ने बार-बार दोहराया था कि नियति द्वारा निर्धारित अपने इस जीवन लक्ष्य की पूर्ति हेतु ही भारत स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा है, अत: भारत की स्वतंत्रता केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए आवश्यक है। स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए भी भारतीय नेतृत्व भावी समाज रचना के नियामक सिद्धांतों व आदर्शों की खोज में लगा रहा। इस दिशा के बिंदु थे—

- अत्यंत गरीबी की दशा में जी रहे कोटि-कोटि देशवासियों को जीवन की न्यूनतम आवश्यकताएं उपलब्ध कराते हुए उन्हें उच्चतर जीवन की ओर बढ़ने की प्रेरणा तथा आवश्यक सुविधाएं प्रदान करना।
- शताब्दियों से चली आ रही सामाजिक व आर्थिक विषमता की खाई को पाटना।

मंथन, फरवरी 1992
मूल रूप से 1988 में लिखा गया लेख।

- आधुनिक विज्ञान व तकनीकी द्वारा उपलब्ध भौतिक सुख के नवीनतम उपकरणों का उचित उपयोग करते हुए 'सादा जीवन उच्च विचार' के सनातन आदर्श को पुनर्जीवित कर व्यक्तिगत व पारिवारिक जीवन-स्तर का मापदंड निर्धारित करना।
- व्यक्ति, परिवार एवं समाज के भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास में सामंजस्य एवं समन्वय कायम करना।
- मजहब, भाषा, क्षेत्रीयता तथा जातिवाद के कारण उत्पन्न संकीर्णता तथा भेदों को राष्ट्र के प्रति भक्तिभावना की गंगा में प्रवाहित कर एकात्म व शक्तिशाली राष्ट्र-जीवन खड़ा करना।
- एक ऐसी संवैधानिक रचना खड़ी करना, जो राष्ट्रीय एकता को पुष्ट करने के साथ-साथ प्रत्येक भारतीय को राष्ट्र-जीवन के संचालन की प्रक्रिया में सहभागी होने का सुअवसर प्रदान कर सके।
- सामाजिक व आर्थिक पुनर्रचना को साकार करने वाले स्वावलंबी, स्वाभिमानी नागरिकों का विकास करनेवाली शिक्षा प्रणाली का आविष्कार करना।

दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही देश के नेतृत्व ने उपर्युक्त लक्ष्यों को भुला दिया। फलस्वरूप चार दशक से अधिक समय बीत जाने पर भी स्वाधीन भारत स्वतंत्र नहीं बन पाया। इस काल में हमने अपनी वैशिष्ट्यपूर्ण जीवन-पद्धति का न युगानुकूल विकास किया, न अपने स्थायी जीवन-मूल्यों को कायम करनेवाली उपयुक्त तकनीकी की ही खोज की। स्वाधीन बना भारत आर्थिक दृष्टि से कमजोर था, किंतु जनधन में वह समृद्धिशाली था। अत: हमारे लिए अनिवार्य था कि हम अपने सर्वांगीण विकास का जनधन पर आधारित अभिनव मार्ग खोज निकालते। गांधीजी ने अपने गहन चिंतन एवं दूरदृष्टि से बहुत पहले ही इस दिशा को स्पष्ट कर दिया था।

हम लक्ष्य से भटक गए

स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने इस वस्तुस्थिति की उपेक्षा की। पश्चिम की जगमगाती सभ्यता के प्रभाव में आकर उन्होंने अपनी स्वतंत्रता संग्राम की उदात्त प्रेरणाओं के प्रतिकूल मार्ग अपनाया। पश्चिम में विकसित विषमतामूलक पूंजी-प्रधान औद्योगिक सांचे में भारत को ढालने की राह पर चलना पसंद किया। देश में पूंजी प्रधान तकनीकी को खड़ा करने के लिए अपने पास आवश्यक पूंजी का अभाव था। उसके लिए विदेशों से अपनी क्षमता से अधिक ऋण लेने के अतिरिक्त अन्य विकल्प नहीं था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उभरी महाशक्तियां इसी ताक में थीं। नव स्वतंत्र भारत को अपने आर्थिक एवं तकनीकी प्रभाव में रखना उसकी स्वार्थसिद्धि के लिए आवश्यक था। अत: उन देशों ने अपनी उदारता का नाटक रचते हुए हमारे नेतृत्व को प्रभावित किया। भारी-भरकम कर्ज से भारत लदता गया। उनकी तकनीकी पर निर्भरता बढ़ती गई। उन देशों के लिए भारत जैसा विशाल बाजार अपने आप उपलब्ध हुआ। विकसित देशों में नित्य नूतन तकनीकी आविष्कारों के कारण उनके व्यर्थ होते गए कारखानों के लिए भारत ग्राहक बना। इस प्रकार हमने इन

विकसित देशों को शोषण करने का अवसर स्वयं देकर स्वाधीन व स्वावलंबी बनने का अपना मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

यह आत्मघात की राह

इस आत्मघाती नीति के दुष्परिणाम अब सामने आ रहे हैं। असाध्य मुद्रास्फीति जन जीवन के लिए भीषण संकट बनी। रुपए की कीमत निरंतर घटने लगी। सतत बढ़ रही महंगाई इसी का परिणाम है। प्राकृतिक संतुलन अधिकाधिक बिगड़ता जा रहा है। खनिज तथा वन संपदा का बेहिसाब दोहन अपने भविष्य के लिए घातक बन रहा है। उत्तर भारत की नरम भूमि में अत्यधिक नहरों का जाल जहां पानी की सतह बढ़ाकर हजारों एकड़ कृषि भूमि को क्षारयुक्त बनाकर बेकार कर रहा है, वहां नदियों की गहराई घटाकर भयानक बाढ़ों का कारण बन रहा है। नया वृक्षारोपण किए गए पर्वतों पर के जंगलों की कटाई आग में घी का काम कर रही है। परिणाम स्वरूप बाढ़ों का प्रकोप बढ़ गया है। प्रति वर्ष लाखों एकड़ की फसल, असंख्य पशुधन एवं गांव के गांव तबाह हो रहे हैं।

बिना सोचे-समझे लगाए जा रहे विशालकाय कारखाने अपनी निकासी से नदियों के जल को विषाक्त बना रहे हैं। इन कारखानों को लगाने में करोड़ों रुपयों की विदेशी मुद्रा खर्च की जाती है। बदले में ये कारखाने रासायनिक प्रदूषण गंगा जैसी पावन नदी में बहाकर उसके जल को भी जहरीला बना रहे हैं। और अब गंगा के जल को शुद्ध करने में करोड़ों रुपए मजबूरन खर्च करने पड़ रहे हैं। यह है आधुनिकीकरण के लालच में तथाकथित प्रगति का आत्मघाती नमूना।

मानव मशीन बन गया

इस नूतन औद्योगिक सभ्यता में मशीन की महत्ता मानव से अधिक हो गई है। मानव की संवेदनशीलता घटने का यही कारण है। इसी कारण मानव केवल भौतिक सुख का ही अभिलाषी बनता जा रहा है। उसकी मानवीयता की मूलभूत भावना लुप्त हो रही है। वह धन देवता का अंध भक्त बन रहा है। ऐसी स्थिति में स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक प्राथमिक जीवन मूल्य 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के लिए स्थान कहां रहता है? फलस्वरूप मानव असभ्य बन रहा है। जीवन से नैतिकता, सदाचार एवं परोपकार जैसे गुण विलुप्त हो रहे हैं और समाज में व्यक्तिवाद पनप रहा है। राष्ट्र जीवन की अस्मिता व राष्ट्राभिमान की वृत्ति विलुप्त हो रही है। स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद इकतालीस साल का बहुमूल्य काल बीतने पर भी देश अपनी भाषा तक अपना नहीं पाया। गुलामी के काल की अंग्रेजी भाषा हमारे जीवन पर आधिकारिक शिकंजा जमाती जा रही है। खान-पान, रहन-सहन, बोल-चाल आदि में भी अंग्रेजियत की गुलामी में हम गौरव अनुभव कर रहे हैं। अपनी कहलाने वाली हर बात से नफरत करना आधुनिकता व प्रगति का मापदंड बन गया है। यह है स्वतंत्र भारत का स्वयं स्वीकृत स्वाभिमानशून्य परावलंबी जीवन, जो स्वतंत्रता प्राप्ति की महत्त्वाकांक्षाओं के पूर्णतः प्रतिकूल है।

राजनीति नहीं, लोकशक्ति खड़ी करें

वर्तमान राजनीति के माध्यम से इस विकृत दिशा के स्थान पर उपयुक्त दिशा पाने की अपेक्षा करना मृगमरीचिका के पीछे दौड़ना मात्र होगा। लोकतंत्र की दलीय पद्धति ने हमारे सांस्कृतिक मूल्यों पर ही कुठाराघात किया है। लोकशक्ति की महत्ता भुलाकर सत्ता को ही सर्वस्व बना दिया है। सत्ता के ही माध्यम से सबकुछ कर पाने की भावना को पनपाया है। सर्वथा उसी पर निर्भर रहने की वृत्ति बढ़ाई है। अतः सत्ता-प्राप्ति ही उच्चतम आकांक्षा बन गई है। सत्ता के लिए नैतिकता तक को ताक पर रखना जायज माना जा रहा है।

आत्मस्तुति व परनिंदा वर्तमान राजनीति का अभिन्न अंग बन गई हैं। दूसरों में गुण देखने की वृत्ति समाप्त हो गई है। भारतीय संस्कृति की उदात्त परंपरा के यह पूर्णतः प्रतिकूल एवं सुसंगठित सामाजिक जीवन के लिए विषवत् है। परिणामस्वरूप देश की नई पीढ़ी में रचनात्मक दृष्टिकोण विकसित होने के स्थान पर विध्वंसक एवं अनैतिक प्रवृत्ति बढ़ रही है। इस गलत व खतरनाक दिशा को बदलकर लोकशक्ति के आधार पर स्वावलंबी सामूहिक विकास का युगानुकूल नमूना प्रस्तुत करने की आवश्यकता है। ऐसा नमूना ग्रामीण अंचल में खड़ा करना उपयुक्त एवं तुलनात्मक दृष्टि से अधिक सुगम होगा। शहरीकरण की तेज आंधी के बावजूद देश की अस्सी प्रतिशत आबादी ग्रामों में रह रही है। ग्रमीणों में अभी भी अपने परंपरागत जीवन-मूल्यों की कदर है। पश्चिमी भोगवादी सभ्यता से वे कम प्रभावित हैं।

दीनदयालजी का अनुभव

भारत गांवों में बसता है। इसका अर्थ केवल इतना मात्र नहीं कि देश की 72 प्रतिशत आबादी देहातों में रहती है, अपितु यह है कि ग्रामों में भारतीय जीवन-मूल्य आज भी विद्यमान हैं। इस संदर्भ में एक उद्‌बोधक प्रसंग याद आता है। स्वर्गीय दीनदयालजी के साथ हम कुछ कार्यकर्ता ट्रेन से 'उस्का बाजार' (उत्तर प्रदेश, सिद्धार्थ-जिला) स्टेशन पर उतरे थे। हम सबको चौदह मील दूर एक कार्यक्रम के लिए बासी स्थान पर पैदल जाना था। 1954 का अप्रैल महीना था। पूर्णिमा का दिन था। रात के नौ बजे थे। चांद की शीतल रोशनी फैली हुई थी।

चलते-चलते रात के लगभग बारह बजे थे। हम लोग प्यास से व्याकुल हो रहे थे। रामप्रकाश पांडे हमारे अगुवा थे। पंडितजी ने पांडेजी से कहा, ''अरे रामप्रकाश! प्यास लगी है। कहीं पीने का पानी मिलेगा?'' संयोग से निकट में ही एक गांव दिखाई दिया। हम लोग गांव में पहुंचे। गांव के सब लोग सो रहे थे। एक कुआं नजर आया, किंतु कुएं से पानी निकालने का हमारे पास कोई साधन नहीं था। कुएं के निकट ही चारपाई पर एक आदमी सोया हुआ था। सीधे जमीन पर कुछ बिछाए बिना ही एक महिला भी सो रही थी। चारपाई पर सोए व्यक्ति को रामप्रकाश पांडे ने जगाया। उससे पानी निकालने के लिए गगरा और रस्सी मांगी। वह देहाती तत्परता से उठा। तुरंत रस्सी-गगरा लाया। स्वयं ही कुएं से पानी निकालने लगा। सोई महिला भी जाग गई थी। पानी निकालते हुए वह आदमी कहने लगा—'बाबू, हम कहार हैं। हमारे हाथ का पानी पंडित लोग

भी पीते हैं। आपको भी एतराज नहीं होगा।' हमें तो जातपाँत की चिंता थी ही नहीं। दीनदयालजी प्रथम पानी पिए, यह हमारा आग्रह था। वे आगे बढ़े। हाथ धोकर कुल्ला किया। ओक बढ़ाकर पानी पीने को ही थे कि वह महिला हाथ में दौरी (घास का कटोरा) लिए पहुंची। दौरी में गुड़ के छोटे-छोटे टुकड़े थे। उसने पंडितजी को पानी पीने से रोका और कहा, 'बाबू, खाली पेट पानी न पिओ। आप थके-मांदे हमारे द्वारे आए हो। तनिक गुड़ खाकर पानी पीना।'

मैली-कुचैली साड़ी में लिपटी महिला की वाणी सुनकर दीनदयालजी की आंखें डबडबा आईं। उन्होंने दौरी में से गुड़ का टुकड़ा मुंह में डाला और ओक से पानी पिया। पंडितजी ने जेब से पांच रुपये का नोट निकाला, भाई की भेंट के रूप में महिला को देने के लिए हाथ बढ़ाया। उस पर उस निरक्षर महिला ने कहा, 'बाबू, ऐसा न करो। आप मुसाफिर हैं। भाग्य से हमारे दरवाजे पर आए हो। ऐसों को पानी पिलाना हमारा धर्म है। इसका दाम लेकर भगवान् के दरबार में हम क्या जवाब देंगे?' आग्रह के बाद भी उसने रुपए नहीं लिये। उन दोनों को राम-राम किया और हम आगे बढ़े।

चलते-चलते दीनदयालजी हम लोगों से कहने लगे, 'देखो! देहाती अपढ़ और गरीब होते हुए भी कितने संवेदनशील, सभ्य और उदार हैं। भारत के वैशिष्ट्य एवं जीवन-मूल्यों को अपनी खस्ता हालत में भी बड़ी निष्ठा के साथ टिकाए हुए हैं। शहरों में तथाकथित शिक्षित लोगों के जीवन से ये जीवन-मूल्य मिट रहे हैं। सामाजिक जीवन की यह प्राणमय चेतना गायब हो रही है। ग्रामों में विद्यमान इस उदात्त आचरण का प्रवाह हमें अब शहरों की ओर बढ़ाना होगा, तभी भारत सभ्य भारत बन पाएगा।'

मेरे बचपन का गांव

इसी संदर्भ में अपने बचपन की एक और बात याद आ रही है। मेरा जन्म एक छोटे से ग्राम में हुआ था। खेती ही घर का व्यवसाय था। खेत जोतने का मौसम था। किसान अपने-अपने खेत हल-बैलों से जोत रहे थे, किंतु गांव में ऐसे भी छोटे किसान थे, जिनके पास अपने बैल नहीं थे। गांव के बड़े-बूढ़े किसानों ने मिलकर अपने हल-बैलों से उन छोटे किसानों के भी खेत जोत दिए। उसके बदले में उन्होंने कुछ नहीं लिया। हां, जोतनेवालों को दोपहर की दाल-रोटी खिलाने की व्यवस्था इन छोटे किसानों ने की थी। कितनी स्नेहपूर्ण परस्पर-पूरकता ग्रामीण-जीवन में रही है, मानो पूरा गांव एक विशाल परिवार ही हो।

पंचमुखी परमेश्वर की परंपरा हमारे गांवों की विशेषता थी। गांवों में ऐसे लोग विद्यमान रहते थे, जो निष्पक्ष होते थे। उन पर गांव के सभी लोगों का भरोसा होता था। स्वार्थवश वे कभी किसी को हानि नहीं पहुंचाते थे। बिना भेदभाव किये सबके सुख-दु:ख में सहभागी होते थे। उनका शब्द गांव के सभी छोटे-बड़ों के लिए मान्य होता था। आपसी अनबन या झगड़े को गांव में ही ऐसे पंच निपटा देते थे। इस प्रकार ग्रामीण जीवन सुखानंद से परिपूर्ण था। ग्रामविकास का कार्य करते समय हमें विशेष रूप से सोचना होगा कि उपर्युक्त त्रिकालजयी परंपराओं को नूतन संतान में किस प्रकार पुनर्प्रतिष्ठित किया जाए।

ग्राम-विकास के प्रयोग असफल क्यों

ग्राम विकास का काम नया नहीं है। आजादी पाने के पूर्व भी कई वर्षों से यह कार्य होता रहा है। अनेक निष्ठावान और विद्वान् तपस्वियों ने अपना पूरा जीवन इस कार्य में खपा दिया था। आजादी पाने के बाद भी सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर ग्राम-विकास के कार्य हो रहे हैं, किंतु अपवादस्वरूप श्री अण्णा हजारे के रालेगण सिद्धी के अतिरिक्त कहीं भी इस कार्य का अनुकरणीय नमूना आज तक खड़ा नहीं हो पाया है। अतः हमें इस दिशा में आगे बढ़ते समय इस क्षेत्र के आज तक के अनुभवों का अध्ययन करना होगा। उन अनुभवों का विश्लेषण कर हमें अपने कार्य की रूपरेखा निश्चित करनी होगी।

आजकल ग्राम-विकास पर बहुत बल दिया जा रहा है। यह अभिनंदनीय है। आए दिन सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर ग्राम-विकास को लेकर विचार गोष्ठियों का तांता लगा हुआ है। इस विषय पर बड़े पैमाने पर साहित्य भी प्रकाशित हो रहा है, किंतु आश्चर्य व दुःख की बात है कि इन विचार गोष्ठियों व प्रकाशनों का माध्यम है अंग्रेजी भाषा। इन गोष्ठियों में बढ़-चढ़कर भाग लेने वाले वे लोग हैं, जो बड़ी-बड़ी डिग्रियों से विभूषित हैं। उन्हें ग्राम-जीवन का प्रत्यक्ष ज्ञान एवं अनुभव कम है। वे स्वयं को सर्वज्ञ समझते हैं। वैचारिक स्तर पर ग्रामीण बंधु-बहनों के योगदान की वे आवश्यकता अनुभव नहीं करते, अतः इन लोगों द्वारा बनी योजनाएं ग्रामीणों की भावनाओं, धारणाओं, आवश्यकताओं व आकांक्षाओं के अनुरूप नहीं हैं। इन योजनाओं को ग्रामीण जन अपनी योजनाएं नहीं मानते, अतः इनके कार्यान्वयन में उनका योगदान नगण्य रहता है। इन योजनाओं को सरकारी समझकर ग्रामीण जन इनसे आर्थिक व व्यक्तिगत लाभ कैसे उठा सकता है। इस कारण ग्राम-विकास की भावना जाग्रत् नहीं होती। परिणामस्वरूप देश में आज तक सर्वांगीण ग्राम-विकास का नमूना खड़ा नहीं हो पाया।

सर्वांगीण ग्राम-विकास क्या है

हमें निम्नलिखित बातों को आधार बनाकर विकास की दिशा प्रस्तुत करनी होगी—

- अनंत काल से अखंड रूप से चले आ रहे ग्रामीण जीवन में ऐसी मौलिकताएं अवश्य होंगी, जो वर्तमान काल में भी संपूर्ण समाज के लिए (ग्रामीण और शहर) उपयोगी हो सकती हैं। उनकी खोज करना तथा उनका राष्ट्र की नवरचना में समुचित उपयोग करना होगा।
- ग्रामीण क्षेत्र में रहनेवाले लोग निरक्षर हो सकते हैं, किंतु उन्हें सर्वथा अशिक्षित मानना गलत होगा। उनमें से अनेक में विचारशक्ति, योजकवृत्ति तथा प्रतिभा है। उनके उपयोग की समुचित विधि अपनाए बिना ग्रामीण जीवन आत्मनिर्भर नहीं बनेगा।
- ग्राम-विकास में स्थानीय महिलाओं व पुरुषों के सक्रिय सहकार का रूप विकसित करना होगा।
- ग्रामों के विकास का अर्थ ग्रामों का शहरीकरण करना नहीं हो सकता। वर्तमान शहर पाश्चात्य औद्योगिक सभ्यता के प्रतिबिंब मात्र हैं। उनमें भी भारतीय जीवन-मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा करने

का काम ग्राम–विकास के माध्यम से ही संभव होगा।

- केवल आर्थिक विकास या भौतिक समृद्धि में ही ग्राम–विकास की इतिश्री नहीं है। मानव एकात्म प्राणी है। उसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियां विद्यमान हैं। इन चारों का संतुलित विकास ग्राम–विकास का लक्ष्य होना चाहिए। संसार में जहां कहीं वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार हुए हैं या होंगे, उन्हें अपने मानवीय जीवन–मूल्यों के सांचे में ढालकर अपनाना होगा।
- व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन में परस्पर पूरकता निर्माण करना अनिवार्य है। सामाजिक अस्तित्व एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन की यह प्राथमिकता है। इस संतुलित जीवन को विकसित करना ग्राम विकास की विशेषता होगी।
- पुरातन एवं नूतन पीढ़ी में परस्पर सद्भावना व सामंजस्य बनाए रखना अति आवश्यक है। उसके बिना परंपरागत जीवन के स्थायी मूल्यों को कायम रखना संभव नहीं होगा।

गोंडा को प्रयोगशाला क्यों चुना

इन्हीं सब आधारभूत तत्त्वों की नींव पर दीनदयाल शोध संस्थान ग्रामीण क्षेत्र में सामूहिक विकास का नमूना खड़ा करने के लिए संलग्न है। इस दिशा में हर प्रकार के आवश्यक प्रयोग करने के लिए प्रयोगशाला के रूप में देश में दो जिलों का, जो प्राकृतिक दृष्टि से एक–दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, चयन किया गया है।

एक जिला उत्तर में देश की सीमा पर हिमालय के चरणों में स्थित है तो दूसरा जिला दक्षिण के ऐतिहासिक नगर औरंगाबाद के निकट है। जहां उत्तर भारत का जिला जल एवं उपजाऊ भूमि से युक्त है, वहां दक्षिण का जिला सूखाग्रस्त, पथरीला और ऊबड़–खाबड़ है। उत्तर के जिले में बहुत घनी आबादी है, किंतु दक्षिण के जिले में वह छितरी हुई है। जहां उत्तर भारत का जिला साल में तीन माह बाढ़ की चपेट में फंसकर फसलों की बरबादी के लिए विवश है, वहीं दक्षिण के जिले के गांवों को साल में छह–सात माह पीने का पानी भी बाहर से लाने के लिए विवश होना पड़ता है, किंतु दोनों जिले समान रूप से उपेक्षित हैं। अशिक्षा, बेकारी, गरीबी व पिछड़ेपन में दोनों एक–दूसरे से होड़ लगाए हुए हैं। इन दोनों जिलों में सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्रचना के प्रयोग सफल हुए, तो देश के हर जिले के लिए अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत हो सकता है। दोनों जिले मिलकर भारत के लगभग हर क्षेत्र की परिस्थिति एवं समस्याओं का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखते हैं। इन दोनों जिलों का प्रयोगशाला के रूप में चयन करने के पीछे यही एक दृष्टि है।

बीड जिला पुराने हैदराबाद राज्य का अंग रहा है। अब वह महाराष्ट्र के सबसे अधिक पिछड़े मराठवाड़ा के अंतर्गत आता है। इस जिले में भारत के बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक परली–बैजनाथ नाम का प्रसिद्ध तीर्थ है। यह जिला रेल मार्ग से वंचित है, अतः इस जिले में इस आधुनिक युग में भी सैकड़ों नागरिक ऐसे हैं, जिन्होंने अभी भी रेलगाड़ी के दर्शन नहीं किए हैं।

गोंडा जिले को अपनी प्रयोगशाला बनाए हुए बारह साल का काल पूर्ण हो गए हैं, किंतु बीड

जिले में काम नया है। गोंडा जिले में 2814 ग्राम, दस कस्बे, पच्चीस विकासखंड और लगभग 29 लाख आबादी है। बीड जिला विस्तार में छोटा न होते हुए भी आबादी में गोंडा जिले से आधा है। उसमें केवल सात विकासखंड, तेरह सौ के लगभग ग्राम और सात कस्बे हैं।

गोंडा जिले में ग्राम विकास की चर्चा प्रारंभ करते ही बहुत बड़ी समस्या उपस्थित हुई। जिले के निवासियों में बातें होने लगीं कि दीनदयाल शोध संस्थान किसी-न-किसी मतलब से अपने जिले में ग्राम विकास के बहाने पग बढ़ा रहा है। बिना किसी खास स्वार्थ के हम ग्रामीणों का भला करने की फुरसत इन लोगों को कैसे मिली? लोगों के इस संदेह को दूर किए बिना ग्राम विकास में उनका सहयोग पाना असंभव था। आजादी के बाद सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के प्रति जन विश्वास को इतना बड़ा धक्का लगा होगा, इसकी हमें कल्पना नहीं थी। ग्राम विकास का कार्य करने के पीछे शोध संस्थान का अपना कोई स्वार्थ नहीं है—यह भावना कायम करने में ही डेढ़-दो साल का समय खर्च करना पड़ा, किंतु भरोसा जम जाने पर लोगों के सहयोग की सीमा नहीं रही। दो साल की अल्प अवधि में ही छोटे एवं गरीब किसानों ने अपनी निजी खेती के लिए दो हजार गांवों में 27,516 नलकूप लगवाकर कृषि विकास की दिशा में जन-सहयोग का कीर्तिमान प्रस्थापित कर दिया।

युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का कार्य अत्यंत कठिन तथा नाजुक है। इस कार्य के लिए ठीक दिशा, कुशाग्र बुद्धि, दूरदृष्टि एवं विशेष कुशलता आवश्यक है, किंतु इस कार्य को संपन्न किए बिना न समाज गतिमान हो सकता है, न उन्नत।

□

उद्यमशीलता सबकी जिम्मेदारी

दुर्भाग्य से अपने समाज में, विशेषतः शिक्षित वर्ग में नौकरी करने की वृत्ति अधिक प्रबल है। यह वृत्ति राष्ट्र नवनिर्माण में सहायक नहीं होती। देश के सभी युवकों को सरकारी या गैर-सरकारी नौकरियां उपलब्ध कराना संभव नहीं हो सकता। वैसे भी नौकरी करनेवालों को आदेशों का पालन करना होता है। उनमें अपनी प्रतिभा का उपयोग करने की संभावना कम रहती है। इस कारण देश में उपलब्ध प्रतिभा व्यर्थ सिद्ध हो रही है। नौकरी करनेवाला व्यक्ति काम के प्रति दायित्व की भावना कम अनुभव करता है। उसकी नजर प्रतिमाह मिलनेवाले वेतन पर ही रहती है। उसमें काम के प्रति निष्ठा कम देखने को मिलती है। कारण, उसमें दायित्व-बोध लगभग शून्य रहता है। नव स्वतंत्र देश के लिए यह वृत्ति घातक है।

नई पीढ़ी में अपनी आजीविका के लिए नौकरी को माध्यम बनाकर राष्ट्र-जीवन की युगानुकूल नवरचना संभव नहीं हो सकती। अपने देश में प्राकृतिक संसाधनों की कमी नहीं है। उपलब्ध प्राकृतिक संपदा का पूर्ण उपयोग किया जाए तो अपना देश संसार में समृद्धि की दृष्टि से भी अन्य किसी भी देश से पीछे नहीं रह सकता। आधुनिक विज्ञान एवं तकनीकी क्षमता से युक्त युवक-युवतियों की अपने देश में कमी नहीं है। यदि प्राकृतिक संसाधनों एवं तकनीकी दृष्टि से सक्षम युवक-युवतियों को एक-दूसरे से आबद्ध किया जाए तो समाज का कोई भी वर्ग आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा नहीं रह सकता। हर एक सक्षम व्यक्ति उत्पादक बनेगा, स्वावलंबन एवं स्वाभिमान के साथ राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाने में योगदान करेगा। साथ ही देश के युवा वर्ग में नौकरी करने के लिए जो दौड़ लगी हुई है, वह भी घटेगी।

किंतु आजादी के बाद इस दिशा में आवश्यक पहल नहीं की गई। योजना आयोग इस दिशा में कदम बढ़ा नहीं पाया। महात्मा गांधी ने ग्राम स्वराज की आवश्यकता प्रतिपादित की थी। अपने देश के सर्वांगीण विकास के लिए गांधीजी का चिंतन व्यावहारिक था। उस चिंतन को स्वीकार कर तदनुसार योजनाबद्ध काम करने से ही देश में व्याप्त आर्थिक असंतुलन, भयानक विषमता तथा बेहिसाब बढ़ी बेकारी मिट सकती है।

मंथन, अप्रैल-जून 1995

स्थानीय तकनीक

गांव-गांव में उपलब्ध प्रतिभा तथा प्राकृतिक संपदा का पूर्ण लाभ उठाने की दृष्टि से निम्नांकित योजना लाभदायी सिद्ध होगी। विकसित देशों में उपलब्ध तकनीकी विद्या की वर्तमान युग में अवहेलना करना उचित नहीं है। किंतु वह तकनीकी विद्या उसी प्रकार हम अपने देश में चलाने लग जाए तो वह पग-पग पर खटकनेवाली विषमता को बढ़ाने का ही काम करेगी। वस्तुतः तकनीकी विद्या समाज के विकास का साधन है। समाज तकनीकी विद्या के लिए नहीं है। यह बात दृष्टि से ओझल हो गई है। तकनीकी समाज के हित के लिए है एक और बात महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान का काम प्रकृति के रहस्यों को खोजना तथा इस खोज के द्वारा मानव को प्रगति की दिशा में गतिशील बनाना है। किंतु तकनीकी की विशेषता भिन्न है। तकनीकी प्राकृतिक कच्चे माल को मानव के लिए अधिक उपयोगी बनाने का माध्यम है। प्राकृतिक संपदा जगह-जगह पर भिन्न-भिन्न होती है। उस संपदा को मानव के लिए अधिक उपयोगी बनाने का काम, जहां जो संपदा उपलब्ध है, वहीं किया जाना सब दृष्टियों से उपयोगी होता है। इस कारण तकनीकी विद्या स्थानीय आधार पर ही आविष्कारित तथा विकसित होनी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखकर भारत ने आर्थिक क्षेत्र में कार्य किया होता तो उससे केवल गांधीजी का मंतव्य ही पूर्ण नहीं होता अपितु देश के हर अंचल का संतुलित विकास होकर सबकी समृद्धि का मार्ग प्रशस्त होता। साथ-ही-साथ देश में व्याप्त बेरोजगारी का दानव दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक भयावह रूप धारण न करता।

कच्चे माल का प्रयोग

आर्थिक विकास के लिए स्थानीय आधार पर उपलब्ध कच्चे माल को आधार बनाकर स्थानीय इकाई को गठित किया जाना चाहिए। इस इकाई में कौन-कौन सा कच्चा माल कितना-कितना उपलब्ध है, इसकी ठीक जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। इस इकाई में उत्पादन की दृष्टि से कच्चे माल के उत्पादन की मात्रा कम है तो उस एक काम के लिए इस इकाई के क्षेत्र का आवश्यकतानुसार विस्तार करना चाहिए।

इस प्रकार की प्रत्येक इकाई में कृषिजन्य, वनजन्य, भूगर्भजन्य तथा पशुजन्य कच्चा माल उपलब्ध हो सकता है। संभव है, कहीं-कहीं भूगर्भजन्य अथवा वनजन्य कच्चा माल उपलब्ध न हो, किंतु कृषिजन्य एवं पशुजन्य कच्चा माल सभी जगह पर कम-अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। उस कच्चे माल को तैयार माल के रूप में परिवर्तित करने का कार्य स्थानीय आधार पर ही किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिए स्थानीय आधार पर परंपरागत तकनीकी कला उपलब्ध रहती है। अत्याधुनिक तकनीकी, जो देश या विदेशों में उपयोग में आ रही हो और जिसका अध्ययन कर स्थानीय आधार पर बेरोजगारी न बढ़ाते हुए तैयार माल का स्तर बढ़ाने की दृष्टि से उपयोग करना लाभदायी हो सकता है, तो उस तकनीकी को अपनाने के लिए स्थानीय युवक-युवतियों को आवश्यक प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करनी होगी। इससे स्थानीय आधार पर तैयार होनेवाले माल की गुणवत्ता उसी स्तर की संभव हो

सकेगी, जो गुणवत्ता बड़े-बड़े कारखानों में उत्पादित तैयार माल की होती है।

आधुनिक युग में कच्चे माल को सैकड़ों और हजारों किलोमीटर दूर ले जाकर तैयार माल का रूप प्रदान किया जाता है। इस कारण तैयार माल बनाने में अनावश्यक व्यय बढ़ता है। उस व्यय का प्रमुख कारण होता है यातायात पर आने वाला खर्च। स्थानीय कच्चे माल को यदि दूर जाकर तैयार माल के रूप में परिवर्तित करने की प्रक्रिया अपनायी गई और उससे तैयार माल स्थानीय लोगों के उपयोग के लिए वापिस लाया गया तो स्थानीय लोगों को बहुत बड़ी महंगाई का भुगतान करना पड़ता है। आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से यह पद्धति घाटे की है। फिर भी इसी गलत रास्ते पर आर्थिक विकास के नाम पर विषमता बढ़ाने का तथा गरीबों को अधिकाधिक त्रस्त करने का काम हो रहा है।

सामाजिक पुनर्रचना में आर्थिक पुनर्रचना महत्त्व का स्थान रखती है। आर्थिक रचना समाज के प्रत्येक परिवार के लिए सहायक एवं सामाजिक दृष्टि से संतुलित हो, इस रूप में विकसित करनी होगी। उसके लिए निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए—

- क्षेत्रीय इकाई को आधार बनाना।
- क्षेत्र विशेष में कृषिजन्य, वनजन्य, भूगर्भजन्य तथा पशुजन्य उपलब्ध कच्चे माल का सर्वेक्षण करना, अर्थात् निश्चित किए गए क्षेत्र में चारों प्रकार के कच्चे माल वर्ष में कितनी-कितनी मात्रा में उपलब्ध होते हैं, इसकी जानकारी प्राप्त करना।
- चुने हुए क्षेत्र में परंपरागत रीति से जिन कच्चे मालों का उत्पादन हो रहा है, उनका उत्पादन अधिकतम करने की दिशा में उपयुक्त प्रयास करना।
- परिस्थिति का अध्ययन कर क्षेत्र में और कौन-कौन से कच्चे माल का उत्पादन किया जाना संभव है, इसकी आवश्यक जांच करना। नए उत्पादन के लिए प्रथम प्रयोगात्मक प्रयास करना। प्रयोग सफल होने पर नए कच्चे माल का अपने क्षेत्र में व्यापक स्तर पर उत्पादन बढ़ाने की व्यवस्था करना। क्षेत्र को अधिक समृद्ध बनाने की यह विधि है।
- उत्पादित कच्चे माल को उत्तम प्रकार के तैयार माल के रूप में परिवर्तित करना। तैयार माल की गुणवत्ता बढ़ाकर बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिकने लायक उत्पादन के उद्देश्य से तकनीकी का विकास करने के लिए स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित करना। प्रोत्साहन के साथ उसके लिए आवश्यक उपकरण उपलब्ध कराना।
- उपर्युक्त विधि को पूर्ण सफल करने की दृष्टि से स्थानीय युवक-युवतियों को समुचित प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करना, जिससे क्षेत्रीय प्रतिभाओं का पूरा विकास हो सके।
- स्थानीय निवासियों की आवश्यकताएं पूर्ण करके जो तैयार माल बचेगा उसे क्षेत्र के बाहर बेचने का समुचित प्रबंध करना।
- क्षेत्रीय आबादी की आवश्यकताएं अनेक प्रकार की होती हैं। संभवत: क्षेत्रीय आधार पर प्राप्त कच्चे माल से उत्पादित वस्तुओं से स्थानीय निवासियों की सभी आवश्यकताएं पूर्ण न हों। उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए क्षेत्र के बाहर से कौन-कौन सी वस्तुएं मंगानी पड़ती हैं

तथा बाहर से आनेवाली वस्तुओं में से प्रत्येक वस्तु की मात्रा कितनी होती है, इसकी ठीक-ठीक जानकारी प्राप्त करना।

- आयातित वस्तुओं में से कौन-कौन सी वस्तुएं और कच्चा माल बाहर से मंगाकर स्थानीय आधार पर तैयार वस्तुओं के रूप में परिवर्तित करना संभव है, यह देखना होगा। साथ ही कीमत और गुणवत्ता की दृष्टि से ये वस्तुएं आयातित वस्तुओं से कम अच्छी न हों तथा उनकी लागत भी अधिक न हो। इन दोनों कसौटियों पर जिन-जिन वस्तुओं का निर्माण स्थानीय आधार पर संभव है, उनका स्थानीय लोगों द्वारा उत्पादन करवाना।
- जिन आयातित वस्तुओं का स्थानीय आधार पर लाभकारी उत्पादन संभव नहीं है, उन वस्तुओं के लिए अपने क्षेत्र से साल में कितनी धनराशि क्षेत्र से बाहर जाती है, इसकी जानकारी संगृहीत करना।
- आर्थिक स्वावलंबन एवं संतुलन बनाए रखने के लिए जितनी धनराशि आयातित वस्तुओं को मंगाने में खर्च हो रही है, उससे अधिक धनराशि का माल स्थानीय आधार पर उत्पादन कर स्थानीय आवश्यकता के अतिरिक्त बाहर बेचने का प्रयास प्रारंभ करना और धीरे-धीरे इस लक्ष्य को सिद्ध करना।
- उपयुक्त कार्य के लिए जहां क्षेत्रीय आधार पर उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता बढ़ाने का ध्यान रखना होगा, वहां क्षेत्र के बाहर अपने उत्पादित माल के विपणन की समुचित व्यवस्था करनी होगी।

उपर्युक्त योजना के माध्यम से जहां क्षेत्रीय स्तर पर स्वावलंबन की स्थिति निर्माण होगी, वहां आबादी के सभी समर्थ निवासियों को अर्थार्जन की सुविधा उपलब्ध होगी। समाज में फैली आर्थिक विषमता घटने लगेगी तथा देश में समान रूप से आर्थिक विकास संभव होगा। आर्थिक विकेंद्रीकरण का भी मार्ग प्रशस्त होगा, जिसके लिए गांधीजी और दीनदयालजी प्रेरित किया करते थे।

उपर्युक्त योजना से स्थानीय प्रतिभा विकसित होकर स्थानीय आधार पर तकनीकी का भी विकास होगा। तकनीकी विद्या के लिए पर-निर्भरता समाप्त होने लगेगी।

भारत केवल कृषि प्रधान नहीं

भारत को कृषि प्रधान देश कहा जा रहा है। किंतु अंग्रेज आने के पूर्व अपनी आबादी के निवासियों की आवश्यकताएं पूर्ण करने की दृष्टि से हरेक ग्राम में स्थानीय आधार पर लगभग सभी प्रकार के उद्योग चला करते थे। ये उद्योग कुटीर उद्योग के रूप में विकसित हुए थे। खेती के लिए जितने भी उपकरण आवश्यक हुआ करते थे, उनका उत्पादन बढ़ई या लुहारों द्वारा गांवों में ही संपन्न होता था। इसी प्रकार चर्मकार, तेली, बुनकर, सुनार, ठठेरा, कुंभकार आदि उद्योग साधारणत: हर ग्राम में थे। भारत की प्रत्येक आबादी औद्योगिक केंद्र के रूप में विकसित थी। कई स्थानों का उत्पादन तो सारे संसार में विख्यात था। इन कुटीर उद्योगों का उत्पादन केवल कृषि आधारित था, यह कहना तथ्यपूर्ण नहीं है। अपनी आबादी की सभी आवश्यकताएं स्थानीय

आधार पर पूर्ण करने की व्यवस्था थी। इसी को गांधीजी ने ग्राम–स्वराज कहा था। अंग्रेजों ने योजनाबद्ध रीति से उन उद्योगों का उन्मूलन किया था। ब्रिटेन में उत्पादित माल को खपाने के लिए अंग्रेजों ने यह षड्यंत्र रचा था।

उपर्युक्त विकट परिस्थिति में हमें सामाजिक पुनर्रचना का अति कठिन कार्य संपन्न करना है। उसके बिना अन्य उपायों से समाज एवं राष्ट्र का उत्थान संभव नहीं है। परंपरागत व्यवस्थाएं चाहे जितनी निरुपयोगी हो गई हों, उनकी आलोचना करने मात्र से वे समाप्त होने वाली नहीं है। कालबाह्य व्यवस्थाओं के स्थान पर युगानुकूल उपयुक्त व्यवस्थाओं की स्थापना से ही उनका अंत होगा। सामाजिक पुनर्रचना में संलग्न युवक–युवतियों को इस तथ्य को ध्यान में रखकर तदनुसार उपयुक्त नूतन व्यवस्थाएं निर्माण करनी होंगी।

युवक–युवतियां अर्थार्जन द्वारा अपनी आबादी की या समाज की कोई–न–कोई आवश्यकता पूर्ण करें, यह भावना नहीं रही। इस कारण अव्यवस्था फैल रही है। अधिक धनार्जन का माध्यम दिखाई देने पर सभी उसी माध्यम में घुसने की होड़ लगाते हैं। परिणामस्वरूप कुछ ही काल में वह माध्यम फलदायी नहीं रहता। इस वृत्ति से सभी को नुकसान हो रहा है। यह अव्यवस्था सर्वसाधारण युवक–युवतियों के लिए परेशानी का कारण बनी हुई है, किंतु इसका निराकरण करना उनके वश में नहीं है।

कालबाह्य जातियों के स्थान पर व्यावसायिक संगठन बने हैं, किंतु उनके मूल में जाति व्यवस्था का जो आदर्श था, वह नहीं रहा। इन व्यावसायिक संगठनों का यह ध्येय नहीं है कि वे अपने व्यवसाय द्वारा समाज की सेवा करें। इन संगठनों का हेतु है अपने लिए अधिकतम लाभ अर्जित करना। इस कारण ये संगठन सामाजिक उत्थान या राष्ट्र नवनिर्माण में कोई योगदान नहीं देते, अपितु अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए सामाजिक उन्नति में बाधक बनते हैं। संगठित मजदूरों ने अपनी आर्थिक स्थिति में बहुत सुधार कर लिया है तथा पर्याप्त सुविधाएं अर्जित कर ली हैं, किंतु असंगठित मजदूरों की दुदर्शा की उन्हें कोई चिंता नहीं है।

वर्तमान काल में उत्पादन एवं व्यापार का एकमेव लक्ष्य है अधिकतम कमाई करना। जिस समाज से वे धनार्जन करते हैं, उस समाज की सेवा एवं उन्नति में उनकी कोई रुचि नहीं रहती।

□

जनशक्ति
पुनर्रचना की वाहक

दीनदयाल शोध संस्थान ने जनशक्ति के आधार पर आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का प्रयोग सन् 1978 में प्रारंभ किया था। इस प्रयोग के लिए हमने सर्वप्रथम चुना उत्तर प्रदेश के बेहद पिछड़े गोंडा जिले को। संपूर्ण जिले को इकाई मानकर यह प्रयोग प्रारंभ किया गया था। गोंडा जिले की उस समय की आबादी 1971 की जनगणना के अनुसार 28 लाख थी। इस आबादी की 94 प्रतिशत जनसंख्या सर्वथा कृषि-कार्य पर निर्भर थी। जिले के लगभग 9 प्रतिशत किसान अलाभकर जोतों के मालिक थे। जमींदारी उन्मूलन के बावजूद जिले की केवल 62 प्रतिशत कृषि-भूमि इन नब्बे प्रतिशत छोटे-छोटे किसानों के पास थी और 3 प्रतिशत भूमि संपन्न जमींदारों और ताल्लुकेदारों के पास बनी रही। गरीब किसान साहूकारों से लिए हुए कर्ज में आकंठ डूबे हुए थे। इसी से अनुमान लग सकता है कि जिले में गरीबी के कारण बहुसंख्य लोगों की कितनी दयनीय दशा थी।

जनजीवन की यह हालत आजादी पाने के 31 साल बाद भी बरकरार थी। ऐसी स्थिति में पहली आवश्यकता थी इन अभावग्रस्त किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने की। अत: दीनदयाल शोध संस्थान ने तय किया कि सबसे पहले इन गरीब किसानों को रोज के खाने की चिंता और निरंतर बढ़ रहे कर्ज के बोझ से मुक्ति दिलाई जाए। उसके बाद ही यह वर्ग सामाजिक कार्य में रुचि ले पाएगा। इसके लिए इन साधनहीन गरीब किसानों की भूमि की उपज बढ़ाना ही एकमात्र विकल्प नजर आया। सिंचाई की उचित व्यवस्था से ही सीमित भूमि की उपज बढ़ाई जा सकती थी। सिंचाई के प्रबंध का स्वाभाविक परिणाम होगा कि किसान अपने खेत से सलाना दो-तीन फसलें ले सकेगा। इससे उसकी आमदनी तिगुनी और चौगुनी तक बढ़ सकेगी। निर्धनता से मुक्ति पाकर वह खुशहाली की ओर कदम बढ़ा सकेगा। तभी वह समाज का उपयोगी अंग बन पाएगा।

दो सौ गांवों में नलकूप

25 नवंबर, 1978 को तत्कालीन राष्ट्रपति महामहिम नीलम संजीव रेड्डी द्वारा इस ग्रामोदय

प्रकल्प का जयप्रकाश नारायण एवं उनकी आदर्शवादी पत्नी प्रभाजी की स्मृति में बसा गांव 'जयप्रभा ग्राम' में विधिवत् शुभारंभ किया गया। इस अवसर पर दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा गोंडा जिले में दो साल में दो हजार नलकूप लगवाने की घोषणा की गई। उस समय सबने इस घोषणा को हास्यास्पद माना। इस योजना को कपोल कल्पना का नाम दिया। किंतु दो वर्षों में गोंडा जिले के 200 गांवों में 5 एकड़ या उससे कम भूमिवाले किसानों के खेतों में 27,516 नलकूप किसानों द्वारा लगवाकर शोध संस्थान ने सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। केंद्रीय सरकार ने वस्तुस्थिति जानने के लिए 'पीपुल्स एक्शन फ़ॉर डेवलपमेंट,' जो मंत्रालय के अंतर्गत कार्यरत सरकारी संस्था है, केंद्रीय कृषि द्वारा एक जांच समिति गोंडा जिले में भेजी। उसने अपनी रिपोर्ट में स्पष्ट रूप में कहा कि जांच के बाद कार्यरत नलकूपों की संख्या का आंकड़ा घोषित आंकड़े से कहीं अधिक पाया गया है। आज तक सरकार की किसी योजना द्वारा या अन्य किसी संस्था द्वारा इतने अल्प समय में इतने व्यापक स्तर पर गरीबों को लाभ पहुंचानेवाला रचनात्मक कार्य नहीं हुआ है।

इस अभूतपूर्व अभियान का बहुत महत्त्वपूर्ण पहलू था स्थानीय जनता की रचनात्मक क्षमता का सार्थक उपयोग। नलकूप के लिए महंगे स्टील पाइप के स्थान पर स्थानीय बांसों का प्रयोग उनकी प्रतिभा के उपयोग का एक माध्यम बना। इस अभिनव तकनीक के आविष्कार में ग्रामीणों की सूझ-बूझ से लाभ हुआ। स्थानीय आधार पर उपलब्ध बांसों के पाइप द्वारा संचालित सत्रह हजार नलकूपों के निर्माण के इस अद्वितीय कार्य का श्रेय ग्रामीणों को जाता है।

उन्होंने तीन इंच व्यास के पके हुए किंतु हरे बांस के टुकड़े एक-दूसरे से जोड़कर डेढ़ सौ फुट गहरे नलकूप लगवाए। नारियल की रस्सी से बांस के टुकड़ों को जोड़ा और नलकूप की जड़ में जाली भी नारियल की रस्सी की सहायता से बनाई। हरा पका बांस और नारियल की रस्सी कीचड़ या पानी में न सड़ते हैं, न गलते हैं। परिणामस्वरूप, सोलह साल पुराने होने के बाद भी ये नलकूप बिना किसी बाधा के सतत काम कर रहे हैं। इस तरह ग्रामीणों ने सिद्ध कर दिया कि उन्हें काम का सुअवसर उपलब्ध कराकर प्रोत्साहित किया जाए, तो वे आश्चर्यजनक विकास कार्य संपन्न कर सकते हैं।

कृषि केंद्र प्रेरणास्रोत बने

वस्तुतः इस अद्वितीय सफलता का श्रेय जनशक्ति को जाता है। दीनदयाल शोध संस्थान ने तो एक प्रेरक और सहायक का ही दायित्व निभाया था। जब जनशक्ति नवनिर्माण के कार्य में स्वप्रेरणा से जुटती है, तो इससे भी अधिक आश्चर्यजनक सुपरिणाम प्रकट कर सकती है। उपर्युक्त प्रयोग ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि राष्ट्र का नवनिर्माण स्वप्रेरित जनशक्ति के सहयोग के बिना संभव नहीं हो सकता। सिंचाई के क्षेत्र में इस उपलब्धि के साथ-साथ दीनदयाल शोध संस्थान ने जयप्रभा ग्राम में कृषि प्रयोगों के लिए तीन एकड़ का एक कृषि-केंद्र स्थापित किया है। मिट्टी से परिचित कृषि वैज्ञानिकों ने परंपरागत तौर-तरीकों से ही इस भूमि पर साल में दो

तथा तीन फसलें उगाने के लिए सफल प्रयोग कर दिखाए हैं। प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा जिले के किसानों को प्रेरित किया गया कि वे भी इन सफल प्रयोगों को अपने खेतों में आजमाएं। जिले की 4.7 लाख एकड़ भूमि पर गरीब किसान सलाना दो फसलें और 51,711 एकड़ भूमि पर तीन फसलें 1984 तक उगाने लगे थे। अब तो यह कार्य जिले भर में लोकप्रिय बन गया है।

अपने देश में 76 प्रतिशत जोतें अलाभकर हैं। इन जोतों का आकार ढाई एकड़ या इससे भी कम है। जब तक इन्हें लाभकर जोतों में परिवर्तित नहीं किया जाएगा, तब तक देश की आर्थिक स्थिति सुधार पाना असंभव है। अतः दीनदयाल शोध संस्थान ने इस आवश्यकता की पूर्ति की दिशा में भी प्रयोग किए हैं।

औद्योगीकरण की अवधारणा

दीनदयाल शोध संस्थान ने ग्रामों के आर्थिक विकास की जो अवधारणा बनाई है और जिसके आधार पर वह अपनी औद्योगिक पुनर्रचना की गतिविधियां चला रहा है, उसके निम्न आधारभूत बिंदु हैं—

- कुछ गांवों के समूह को 'स्थानीय क्षेत्र' के रूप में निर्धारित करते हुए ग्राम समूह को आर्थिक विकास की आधारभूत इकाई माना गया है।
- इस आधारभूत इकाई में पाया जानेवाला कच्चा माल ही वस्तुतः वहां की संपन्नता का आधार हो सकता है। इस कच्चे माल के चार प्रमुख स्रोत हैं—
  (अ) कृषिजन्य, (ब) वनजन्य, (स) खनिजजन्य तथा (द) पशुजन्य पदार्थ। सबसे पहले सर्वेक्षण करके यह जान लेना आवश्यक होता है कि सालाना औसत के लिहाज से स्थानीय क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के कच्चे माल की कितनी-कितनी मात्रा उपलब्ध हो सकती है।
- क्षेत्रीय जनता को अपने इस परंपरागत कच्चे माल का अधिकाधिक उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित और प्रशिक्षित किया जा रहा है। विभिन्न प्रकार के कच्चे माल का जितना अधिक उत्पादन किया जाएगा, क्षेत्रीय जनता की संपन्नता की संभावना भी उसी अनुपात में बढ़ेगी। साथ ही ग्रामीणों को इसके लिए भी प्रोत्साहित किया जा रहा है कि वे अपने क्षेत्र में संभाव्य गैर-परंपरागत कच्चे माल के उत्पादन की दिशा में भी प्रयोगात्मक कदम बढ़ाएं।
- उपलब्ध कच्चे माल को अच्छे किस्म के लिए तैयार माल के रूप में रूपांतरित करने की तकनीकी स्थानीय आधार पर विकसित करने के प्रयास किए जा रहे हैं। परंपरागत और आधुनिकतम तकनीक के गुण-दोषों को परखते हुए स्थानीय आधार पर तकनीकी का विकास किया जा रहा है। इस प्रक्रिया में सर्वोपरि महत्ता इस बात को दी जा रही है कि इलाके का काम करने योग्य हर व्यक्ति पर्याप्त और लाभदायी रोजगार पा सके। तकनीकी विकास का हमारा उद्देश्य है गरीब ग्रामीणों में पाई जानेवाली प्रतिभा का विकास करना, उनका जीवन स्तर सुधारना तथा उनकी गुणवत्ता बढ़ाना।
- स्थानीय तकनीकी पनपाने और स्थानीय आधार पर आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है।

- स्थानीय जनता की खपत को प्राथमिकता दी जा रही है। इसके बाद बचे अतिरिक्त उत्पाद को निर्धारित क्षेत्र के बाहर बेचने की समुचित व्यवस्था का आवश्यक प्रबंध किया जा रहा है।
- यह निश्चित है कि स्थानीय कच्चे माल से तैयार उत्पादों से स्थानीय लोगों की सभी जरूरतें पूरी नहीं की जा सकतीं। इसलिए यह जानना अनिवार्य है कि स्थानीय खपत के लिए किन-किन चीजों का किस-किस मात्रा में आयात करना आवश्यक है।
- तदुपरांत यह जानना जरूरी है कि आयातित वस्तुओं में से कौन-कौन सी ऐसी वस्तुएं हैं, जिनके लिए कच्चा माल बाहर से मंगवाकर स्थानीय आधार पर उनका तैयार माल के रूप में उत्पादन किया जा सकता है। ऐसे उत्पाद की गुणवत्ता और मूल्य खुले बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिकने लायक हों, इसका विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।
- यह सब करने के बावजूद स्थानीय जरूरतों की पूर्ति के लिए कुछ वस्तुएं, उदाहरणार्थ नमक, मिट्टी का तेल आदि तो बाहर से मंगवानी ही पड़ती हैं। सर्वेक्षण करके यह पता चलाया जा रहा है कि सालाना कुल कितने मूल्य की और कितनी मात्रा में ऐसी वस्तुओं का अनिवार्यतः आयात करना पड़ता है।
- आयात-निर्यात का संतुलन बनाए रखने के लिए अधिक नहीं तो कम-से-कम आयात में होनेवाले व्यय के बराबर मूल्य के स्थानीय आधार पर तैयार किए गए माल का निर्यात करना आवश्यक है। अतः निर्यात के लिए आवश्यक मात्रा में उत्पादन बढ़ाना जरूरी है। यह भी सुनिश्चित करना आवश्यक है कि निर्यात के लिए उत्पादित किया जानेवाला माल गुणवत्ता तथा कीमत की दृष्टि से तुलनात्मक रूप से बेहतर और सस्ता हो, तभी बाहर इसकी मांग बढ़ेगी तथा स्थानीय कारीगरों की कुशलता की कीर्ति फैलेगी।

ग्रामवासियों की समृद्धि तथा क्षेत्रीय स्वावलंबन की वृद्धि के लिए ऊपर लिखे बिंदु अति महत्त्वपूर्ण हैं। दीनदयाल शोध संस्थान की सुविचारित मान्यता है कि इस पद्धति द्वारा काम करने योग्य सभी महिला-पुरुषों को लाभकारी स्वरोजगार उपलब्ध होगा, निरंतर बढ़ रही विषमता और गरीबी दूर होगी और आम लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठेगा।

□

लाभकारी कृषि
ग्राम अर्थव्यवस्था की रीढ़

आज भी ग्रामीण अंचल देश की 64 प्रतिशत आबादी की आजीविका का भार वहन कर रहा है। राष्ट्र जीवन के विकास के लिए आवश्यक शत-प्रतिशत प्राकृतिक संसाधनों की पूर्ति कर रहा है। इस आधारभूत ग्रामीण अंचल के विकास में ही देश का विकास है, यह महात्मा गांधी बार-बार कहते रहे। किंतु उन्हीं के नेतृत्व में स्वतंत्र हुए भारत में ग्रामीण अंचल की सर्वाधिक उपेक्षा हो रही है। ग्रामीण अंचल की नई पीढ़ी प्राकृतिक संसाधनों का अथाह खजाना छोड़कर शहरों की गंदी बस्तियों में रहना पसंद करने लगी है। कारण यह भी है कि गांवों में रोजगार के अवसर लगभग शून्य हैं। इतनी दयनीय दशा बनी है देश के ग्रामीण अंचल की।

शिक्षा आयोग (1964-1966) ने अपने गहन अध्ययन के आधार पर सुझाव दिया था कि ग्रामीण अंचल के युवक-युवतियों को व्यापक स्तर पर व्यावसायिक प्रशिक्षण देने का समुचित प्रबंध किया जाना आवश्यक है। तदनुसार 1973 में भारत सरकार ने देश के प्रत्येक जिले में युवक-युवतियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण उपलब्ध कराने का निर्णय लिया था। इसका प्रबंध करने का दायित्व कृषि मंत्रालय को सौंपा था। कृषि मंत्रालय द्वारा संचालित भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् ने इस कार्य की योजना बनाने के लिए उदयपुर की सेवा मंदिर संस्था के डॉ. मोहन सिंह मेहता की अध्यक्षता में समिति गठित की थी। उस समिति ने 'कृषि विज्ञान केंद्र' के नाम से योजना प्रस्तुत की थी। सरकार ने उसे मान्यता प्रदान की। इस योजना में कृषि प्रशिक्षण के साथ अन्य व्यावसायिक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था का स्पष्ट संकेत है। फलस्वरूप यह योजना ग्रामीण अंचल के समग्र विकास की दृष्टि से व्यावहारिक एवं परिणामजनक सिद्ध हो सकती है। प्रथम कृषि विज्ञान केंद्र 1974 में पांडिचेरी में प्रस्थापित कर इस योजना का शुभारंभ हुआ था।

कृषि विज्ञान केंद्र की योजना की उपयुक्तता अनुभव कर राष्ट्रीय कृषि आयोग ने 1976 में कृषि विज्ञान केंद्रों के विस्तार का कार्यक्रम बनाया था। उस कार्यक्रम के अनुसार 1980 के अंत तक देश के सभी जिलों में एक-एक कृषि विज्ञान केंद्र प्रस्थापित करने थे। किंतु अब तक केवल

10 मार्च 2000, स्रोत: डीआरआई दस्तावेज

261 जिलों में ही कृषि विज्ञान केंद्र खोले गए हैं। गत पांच वर्षों में एक भी कृषि विज्ञान केंद्र की वृद्धि नहीं हुई है।

केंद्रों की उपेक्षा की जा रही है

दुर्भाग्य है कि राष्ट्र-जीवन की मूलभूत आपूर्ति के इस अभिनव कार्य को प्रोत्साहित करने के स्थान पर निरुत्साहित किया जा रहा है। धनाभाव का कारण बताकर प्रति कृषि विज्ञान केंद्र के लिए जो कृषि वैज्ञानिक तथा उनके सहयोगी मिलकर 26 की संख्या का प्रावधान था, उसे घटा कर कुल संख्या 16 रखने का आदेश जारी किया गया है। प्रति कृषि विज्ञान केंद्र, 16 आवासों के स्थान पर केवल 6 आवासों की ही अनुमति दी गई है। इतना ही नहीं, केंद्रीय सरकार द्वारा कृषि विज्ञान केंद्रों पर होनेवाले व्यय का शत-प्रतिशत आर्थिक भार वहन किया जाता था, वह पांच साल तक 75 प्रतिशत करने का तथा पांच साल के बाद 50 प्रतिशत करने का आदेश जारी कर गैर-सरकारी संस्थाओं को हतोत्साहित किया गया था। गैर-सरकारी संस्थाओं ने योजना आयोग के तत्कालीन उपाध्यक्ष माननीय श्री जसवंत सिंहजी को वस्तुस्थिति की जानकारी दी, तो उन्होंने अविलंब कृषि विज्ञान केंद्र के लिए शत-प्रतिशत आर्थिक दायित्व केंद्र सरकार द्वारा वहन करने का निर्णय घोषित किया। यह ग्राम विकास का महत्त्व पुनर्प्रस्थापित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है।

इस समय केवल 261 जिलों में ही कृषि विज्ञान केंद्र कार्य कर रहे हैं। देश के सभी जिलों अर्थात् 530 जिलों में कृषि विज्ञान केंद्र चलाए गए तो केंद्रीय सरकार को प्रतिवर्ष केवल 275 करोड़ रुपयों का ही बोझ वहन करना पड़ेगा। कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा होनेवाले ग्रामीण अंचल के समग्र विकास के कार्य की तुलना में यह राशि नगण्य है।

जनसहयोग से काम हो

कृषि विज्ञान केंद्र की योजना जन-अभियान के रूप में चलाना सब दृष्टियों से उपयुक्त था। उसी से ग्रामीण अंचल के विकास में असीम जनशक्ति का सदुपयोग संभव होता। किंतु इस महत्त्वपूर्ण पहलू की उपेक्षा की जा रही है। गुलामी के काल में प्रचलित हर काम शासकीय तंत्र द्वारा ही करने की वृत्ति लोकतांत्रिक जीवन के विपरीत काम कर रही है। अतः अधिकांश कृषि विज्ञान केंद्र कृषि विश्वविद्यालयों या भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा संचालित संस्थाओं को ही सौंपे जाते रहे। संसद् में हुई बहस के परिणामस्वरूप गैर-सरकारी संस्थाओं को भी कृषि विज्ञान केंद्र दिए जाने लगे हैं। इस निर्णय को प्रशासकों ने खुशी से स्वीकार नहीं किया। मजबूरीवश उन्हें यह करना पड़ रहा है। गत काल में कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा हुए कार्यों की जांच- पड़ताल की गई तो उसमें तीन कृषि विज्ञान केंद्रों को सर्वश्रेष्ठ माना गया। उनमें से दो कृषि विज्ञान केंद्र गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित हैं। इससे सिद्ध होता है कि गैर-सरकारी संस्थाएं ग्राम विकास के कार्यों में जन

सहयोग अधिक प्राप्त कर पाती हैं। आवश्यकता है, निष्पक्ष भाव से गैर-सरकारी संस्थाओं का चयन करने की।

समग्र विकास का माध्यम

कृषि विज्ञान केंद्र की मूल अवधारणा कृषि विकास के कार्यों तक ही सीमित नहीं है। भूमिहीन ग्राम-निवासियों की व्यवस्था का भी उसमें प्रावधान है। उसमें ग्रामीण जीवन के आर्थिक विकास का समावेश है। अतः कृषि विज्ञान केंद्र के स्थान पर उसका नामाभिधान 'कृषि उद्योग विज्ञान केंद्र' करना अधिक उपयुक्त होगा। जब इस अभियान के कार्य की इकाई देश के हर एक जिले में सक्रिय होने जा रही है तो कृषि मंत्रालय, ग्राम विकास मंत्रालय, लघु उद्योग मंत्रालय एवं वन मंत्रालय के कार्यों का कार्यान्वयन इसी एक इकाई द्वारा सहज संभव हो सकता है। एक ही इकाई के माध्यम से ग्रामीण अंचल के समग्र विकास में ग्रामीण जनशक्ति का सदुपयोग संभव है। ऐसी संभावना होते हुए अलग-अलग इकाइयों की व्यवस्था 'खर्चे अधिक और काम कम' का कारण बन रहा है।

इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए अलग से अखिल भारतीय ग्राम विकास परिषद् या मंडल बनाया जाना अधिक कारगर होगा। इसमें कृषि मंत्रालय, ग्राम विकास मंत्रालय, लघु उद्योग मंत्रालय, वन मंत्रालय तथा ग्राम विकास में संलग्न गैर-सरकारी संस्थाओं के प्रतिनिधि नामांकित करना उपयुक्त होगा। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा भी अलग से इंडियन कौंसिल ऑफ रूरल इंस्टिट्यूशन कार्य कर रहा है। उस कौंसिल का भी इस कार्य के लिए उपयोग किया जा सकता है। इससे केवल ग्राम विकास ही नहीं, अपितु प्राकृतिक संसाधनों की पर्याप्त आपूर्ति होगी, शहरीकरण की गति रुकेगी, बेकारी कम करने में सहायता मिलेगी। ग्रामीण अंचल में संतोष का वातावरण निर्माण होगा।

☐

वैकल्पिक औद्योगीकरण
बेरोजगारी और विषमता का हल

सह-जीवन मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। वह अकेला नहीं रह सकता। अतः उसका हर एक कार्य सह-जीवन पर आधारित होना आवश्यक है, तभी वह सुख-समाधान पा सकता है। अतः औद्योगीकरण का सहज एवं स्वाभाविक लक्ष्य होना चाहिए समाज की आवश्यकता पूर्ति करना।

किंतु प्रचलित औद्योगीकरण अन्यों की आवश्यकता पूर्ति के लिए न होकर निजी संपत्ति बढ़ाने का लक्ष्य सम्मुख रखकर किया जा रहा है। फलस्वरूप, औद्योगीकरण अनेकानेक समस्याओं का कारण बना है। वर्तमान औद्योगीकरण के कारण समाज में विषमता, शोषण और बेकारी बेकाबू होती जा रही है। स्वचालित यांत्रिक विधियां तथा यंत्र-मानव का प्रचलन बढ़ रहा है, जो सह-जीवन के विपरीत निजी समृद्धि के लिए श्रमशील बंधु-बहनों को बेकारी का शिकार बना रहा है। इस प्रकार, औद्योगीकरण की प्रचलित गति अमानवीय है।

उद्योग के तीन पहलू हैं—पहला है पूंजी, दूसरा है श्रम तथा तीसरा है प्रबंधन। इन तीनों अंगों में परस्पर-पूरकता अनिवार्य है। उसके बिना न उत्पादन की विधि अबाधित रह सकती है, न उत्पाद की गुणवत्ता बढ़ सकती है, न ही उत्पाद सस्ता बनाया जा कसता है। तथाकथित प्रगतिशील औद्योगीकरण उपर्युक्त मूलभूत आधार को ही खो बैठा है। परिणामस्वरूप, श्रम, पूंजी और प्रबंधन में अनबन बनी हुई है, जो सामाजिक जीवन के लिए परेशानी पैदा कर रही है। वैकल्पिक औद्योगीकरण में हमें उत्पादन के तीनों अभिन्न अंगों में परस्पर-पूरकता का विकास करना होगा।

परिपूर्ण जीवन-दृष्टि

तकनीकी प्रगति को दोष देना आवश्यक नहीं है। वह किस हेतु से की जा रही है, उस पर उसकी अच्छाई या बुराई निर्भर है। भारत में पुरातन काल में हजारों साल हर एक आबादी में अनेक उद्योग चलते रहे। उनके कारण जनजीवन में विषमता, बेकारी, प्रदूषण या पर्यावरण की समस्याएं उत्पन्न होती रही हैं। वर्तमान काल में ही औद्योगीकरण के दुष्परिणाम क्यों भुगतने पड़ रहे हैं? प्रथमतः इसे समझना आवश्यक है। भारतीय परंपरा ने परिपूर्ण जीवन-दृष्टि का विकास

किया था। जन्म देनेवाली महिला ही केवल मां का आदर नहीं पाती थी। धरती मां, गंगा मां और गऊ मां को भी तत्सम श्रद्धा का स्थान प्राप्त था।

वनस्पतियों के प्रति भी पूज्य भावना प्रचलित थी। इसके लिए मूल में अंधश्रद्धा नहीं थी। मानव के लिए उपकारक तत्त्वों के प्रति कृतज्ञता की भावना काम करती थी। इस मानवीय जीवन-दृष्टि के कारण ही हजारों साल के सुखमय औद्योगिक जीवन में न पर्यावरण की समस्या उपस्थित हुई, न नदियों का जल ही प्रदूषित हुआ।

भारतीय परंपरा में उद्योगों का लक्ष्य हुआ करता था-लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति। उसे समाज-सेवा का माध्यम माना जाता रहा। किंतु उपर्युक्त जीवन-दृष्टि बदल गई है। अब उद्योग परिवारिक समृद्धि के लिए प्रारंभ किए जाते हैं। अधिकतम लाभ अपने पास ही रहे, यह वृत्ति काम करती है। उसी के लिए तकनीकी आविष्कारों से लाभ उठाया जाता है। मानव ही मानव का शोषण कर रहा है। ऐसी मानसिकता के होते हुए प्राकृतिक संसाधनों का विनाश अवश्यंभावी है, जो मानव मात्र के अस्तित्व के लिए संकट खड़ा कर रहा है।

परस्पर-पूरकता पर आधारित आजीविका

आजीविका मानव की प्राथमिक आवश्यकता है। उसके बिना वह अपनी कर्मशक्ति खोता है। उसका जीवन दयनीय बनता है, किंतु आजीविका सर्वथा व्यक्तिगत उपलब्धि नहीं है। वह परस्परावलंबन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। अन्यों की आवश्यकता पूर्ति उसका आधार है। व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों का वह परिपाक है। यह महत्त्वपूर्ण तत्त्व जीवन-दृष्टि से ओझल हो गया है।

समाज की आवश्यकताएं पूर्ण करना उद्योग प्रारंभ करने का लक्ष्य हुआ करता था, शोषण करना नहीं। सामाजिक सेवा की अर्थात् 'सर्वभूत हितेरतः' की आध्यात्मिक वृत्ति का वह व्यावहारिक रूप था। व्यक्ति की आजीविका का निर्वाह उसका स्वाभाविक प्रतिफल था। स्वस्थ जीविकोपार्जन की यही दिशा स्वस्थ एवं समृद्ध सामाजिक जीवन उपलब्ध कराती है।

काल के प्रवाह में स्वस्थ सामाजिक जीवन की उपर्युक्त दृष्टि लुप्त हो गई है। अधिकतम धनार्जन करना तथा धनपति बनना उद्योग संचालन का लक्ष्य बना है। किस उद्योग ने कितना अधिक मुनाफा कमाया, इस पर उसकी सफलता एवं प्रतिष्ठा निर्भर करती है। परिणामस्वरूप औद्योगीकरण समाज सेवा का साधन नहीं रहा। वह उसके शोषण का माध्यम बना है। इसी कारण उद्योग चलानेवालों तथा उद्योग के अनिवार्य अंग के रूप में परिश्रम करनेवाले मजदूरों में संघर्ष की घातक प्रथा प्रचलित हुई है। उद्योग में मजदूरों की संख्या कम-से-कम करने के लिए स्वचालित यांत्रिकीकरण में तकनीकी का लाभ उठाया जा रहा है। जिनके परिश्रम के आधार पर उत्पादन होता रहा, उन्हीं से मुक्ति पाने में उद्योग-मालिक लगे हैं। इसी से ज्ञात होता है कि धन के लालच में सर्वसाधारण समाज के प्रति

वर्तमान उद्योगपतियों की भावना क्या हो सकती है। इसी मानसिकता के कारण समाज में विषमता, बेकारी एवं प्रदूषण बढ़ रहा है।

वर्ग संघर्ष एकात्मता के प्रतिकूल

उपर्युक्त अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए ट्रेड यूनियन आंदोलन का जन्म हुआ था। यह प्रतिक्रियात्मक आंदोलन समस्या का समाधान नहीं है। वर्ग संघर्ष की वृत्ति अपने अद्वैत एवं एकात्म मानव दर्शन के प्रतिकूल है। संगठित श्रमिक वर्ग आर्थिक न्याय पाने के लिए संघर्ष कर अपनी आर्थिक स्थिति तो सुधार लेता है, लेकिन उसे भी वर्तमान उद्योगपतियों के समान ही शेष समाज के हितों की परवाह नहीं होती। दोनों प्रवृत्तियां स्वार्थमूलक, विघटनकारी एवं असामाजिक हैं।

उद्योग अस्तित्व में आए समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, किंतु दुर्भाग्य से संसार में धन की महत्ता सर्वोपरि बन गई। भौतिकता के प्राधान्य का इससे भिन्न परिणाम हो ही नहीं सकता था। धनपतियों ने अधिकाधिक धनार्जन के लिए उद्योगों को अपना हथियार बनाया। श्रमिकों के हितों की अवहेलना की। आम लोगों की आवश्यकताओं का लाभ उठाया। इस मानसिकता के कारण स्वाभाविक परिणाम है जन–आक्रोश। अंततोगत्वा जन–आक्रोश के शिकार बनेंगे धनपति ही। किसी भी प्रकार का सुरक्षा कवच उनकी सुरक्षा न कर सकेगा। इससे श्रमिकों का भी अहित ही होगा। बिना वैकल्पिक पद्धति को अपनाए भावी अराजकता का तांडव रोकना असंभव है।

डेढ़–दो सौ साल पूर्व भारत में औद्योगीकरण हर एक छोटी बड़ी आबादी का अभिन्न अंग था। उद्योग भी एक पारिवारिक इकाई थी, अतः पूंजी, श्रम एवं प्रबंध एकात्म थे, किंतु आज वह स्थिति प्राप्त करना सभी स्तरों पर संभव नहीं हो सकता। सभी बड़े उद्योगों को समाप्त नहीं किया जा सकता, किंतु उनके लिए स्वास्थ्यवर्धक प्रक्रिया प्रारंभ की जा सकती है।

उद्योग का लक्ष्य समाज-सेवा

उद्योग प्रस्थापित करने एवं चलाने का लक्ष्य होगा समाज–सेवा। पूंजी लगानेवाले, श्रम प्रदान करनेवाले तथा प्रबंध करनेवाले समान रूप से समाज सेवा की भावना से कार्य करें। उद्योग की उत्पादन क्षमता के अनुसार शत–प्रतिशत उत्पादन करना उनका सामूहिक कर्तव्य होगा। उद्योग अनुचित लाभ कमाने के चक्कर में नहीं पड़ेंगे। ग्राहकों की सेवा लक्ष्य होने के कारण उत्पाद की गुणवत्ता श्रेष्ठ तथा कीमत उत्पादन खर्च से बीस से पच्चीस प्रतिशत से अधिक नहीं रखी जाएगी। उत्पादन शुल्क उत्पादन खर्च में ही सम्मिलित रहेगा। उसका अंश शेष उत्पादन खर्च के दस प्रतिशत से अधिक नहीं होगा। इससे तीनों तत्त्व अर्थात् पूंजी संग्रहकर्ता, परिश्रमकर्ता एवं प्रबंधकर्ताओं का जीवन सुखानंद के साथ चलेगा। हर एक उद्योग 'उद्योग परिवार' का रूप धारण करेगा। शासन के लिए आवश्यक आय भी होती रहेगी। सामाजिक सुव्यवस्था, राष्ट्रभक्ति एवं सभी नागरिकों की आवश्यकता पूर्ति इसी से संभव होगी। अधिकांश उद्योग कुटीर, ग्राम एवं छोटे स्तर के होंगे। बड़े उद्योग इन छोटे उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति में सहायक बनेंगे।

कृषकों को रोजगार

व्यापक स्तर पर औद्योगीकरण भारत की प्रमुख आवश्यकता है। देश की करीब तीन-चौथाई आबादी अर्थात् पैंसठ करोड़ लोग खेती के भरोसे किसी प्रकार जी रहे हैं। औसत हिसाब से इनके लिए प्रति व्यक्ति एक एकड़ भी कृषि भूमि उपलब्ध नहीं है। फलस्वरूप कृषि व्यवसाय संपन्नता का माध्यम नहीं रहा। यह स्थिति विकास की दृष्टि से अवरोधक है। कृषिभूमि पर से आबादी का पर्याप्त बोझ घटाए बिना न कृषि का अपेक्षित विकास संभव है, न सर्वव्यापी दरिद्रता ही मिटाई जा सकती है। इसका एकमेव उपाय कृषकों को वैकल्पिक लाभदायी रोजगार ग्रामीण अंचल में ही उपलब्ध कराना है। यह कार्य केवल व्यापक स्तर पर कुटीर एवं ग्रामीण औद्योगीकरण के द्वारा ही हो सकता है।

अबाधित गति से बढ़ रही विषमता तथा बेकारी अराजकता की ओर ले जा रही है। परिणामस्वरूप सभी लोग भयग्रस्त हैं। औद्योगीकरण की वैकल्पिक विधियां अपनाए बिना भविष्य उज्ज्वल नहीं बन सकता।

वैकल्पिक औद्योगीकरण की दिशा

अपना जीवन निर्वाह करना मानव की सहज प्रवृत्ति है। किंतु इतने में ही उसकी मानवीयता सीमित समझना हितावह नहीं है। अन्यों के जीवन निर्वाह की चिंता करने की प्रेरणा भी उसमें निर्माण हो सकती है और होनी चाहिए, तभी मानव मानवीयता से विभूषित होगा। उद्योग चलाने के लिए इस प्रेरणा की पूंजी की विशेष महत्ता है। वैकल्पिक औद्योगिक रचना की यह प्राथमिक आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति शासन या शासकों द्वारा संभव नहीं है। शासन का काम प्रबंध करना है। प्रेरक बनने का दायित्व शासन या शासक नहीं निभा सकते। शासन का जन्म केवल प्रबंध कार्य के लिए ही हुआ है। अत: प्रेरणा प्रदान करने का कार्य सामाजिक स्तर पर ही करना होगा।

वैकल्पिक औद्योगीकरण की दूसरी आवश्यकता है अंचलीय एवं सामाजिक विषमता घटाकर सभी के लिए लाभदायी रोजगार उपलब्ध कराना। योजनाबद्ध विकास को चार दशकों से अधिक काल बीत गया है। किंतु देश के विभिन्न अंचलों में अभी भी औद्योगिक विकास की दृष्टि से अत्यधिक विषमता छाई हुई है। कुछ अंचल लगभग उद्योगहीन बने हुए हैं। जिन अंचलों में काफी उद्योग चल रहे हैं, वहां भी बेकारी का अस्तित्व कायम है। योजनाबद्ध औद्योगिक विकास की यह हास्यास्पद अवस्था है। हमें वैकल्पिक औद्योगीकरण के द्वारा इन दोनों समस्याओं का निराकरण करना होगा।

औद्योगीकरण के लिए प्राथमिक आवश्यकता कच्चे माल की होती है। प्राकृतिक अवस्था में उपलब्ध नैसर्गिक संपदा कच्चे माल के रूप में काम आती है। उसे मानवोपयोगी बनाने की विधि को तकनीकी कहते हैं और तैयार माल के उत्पादन की प्रक्रिया को उद्योग कहते हैं।

देश के प्रत्येक अंचल में किसी-न-किसी प्रकार की प्राकृतिक संपदा उपलब्ध है। उसे

मानवोपयोगी बनाने के लिए उपयुक्त उद्योग उसी अंचल में प्रस्थापित किए जाने चाहिए। उससे स्थानीय निवासियों की आवश्यकताएं सुलभता से पूरी होती हैं। उसके लिए परिवहन पर खर्च नहीं करना पड़ता। तैयार माल का वजन कच्चे माल से कम होता है। इस कारण तैयार माल को अन्यत्र पहुंचाने में परिवहन लागत कम आती है। फलस्वरूप तैयार माल जहां कहीं भी बिकेगा, वहां तुलनात्मक दृष्टि से सस्ता रहेगा। कच्चे माल से तैयार माल बनाने के बाद जो कुछ शेष बचेगा, वह उसी स्थान पर रहेगा। उसका भी उपयोग हो सकता है। उस बेकार हुई सामग्री से उपयोगी वस्तुएं बन पाईं तो अंचलीय समृद्धि में बढ़ोतरी होगी। इस पद्धति से सबसे बड़ा लाभ अंचलीय विषमता के निराकरण में होगा।

कृषि उत्पादन पद्धति की पुनर्रचना

आधुनिकता के नाम पर कृषि क्षेत्र से मानव एवं पशु शक्ति को घटाने का अघोषित अभियान चल पड़ा है। कृषि का यांत्रिकीकरण करने के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया जा रहा है। क्या कृषि पद्धति की यह दिशा वैज्ञानिक एवं लाभदायक है?

उपर्युक्त प्रश्न को व्यावहारिक कसौटी पर परखने के लिए कृषि-भूमि में विद्यमान तत्त्वों को समझना भी आवश्यक है। कृषि भूमि माटी का ढेर मात्र नहीं है, उसमें अनेक द्रव्य गुण छिपे पड़े हैं। कृषि भूमि की सतह के नीचे 9 इंच और उससे अधिक गहराई में ऐसे उपजाऊ तत्त्व हैं, जिन्हें सूर्य की रोशनी से बचाना आवश्यक होता है। 9 इंच गहराई में अनेक ऐसे जीव-जंतु हैं, जो जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में सहायक हैं। इन्हें सूर्य का प्रकाश हानि पहुंचाता है, अतः कृषि भूमि जोतने के लिए ऐसे हल का प्रयोग करना चाहिए, जो गहराई में पोलापन तो निर्माण करे, किंतु 9 इंच से अधिक गहरी जमीन को सूरज की रोशनी से बनाए रखे। सतह से 6 इंच से 8 इंच तक की ही भूमि को सूर्य की प्रखर किरणों के संपर्क में लाना आवश्यक है। यह भूमि का विज्ञान है।

यांत्रिकीकरण की आधुनिक विधियां उपर्युक्त तथ्यों की उपेक्षा करती हैं। परिणामस्वरूप कृषि भूमि अपनी प्राकृतिक उपजाऊ शक्ति खोने लगी है। तथाकथित वैज्ञानिक पश्चिमी देशों में मशीनी युग के पहले कृषि कार्य के लिए भी घोड़ों का उपयोग करते रहे। बैलों के उपयोग से वे अनभिज्ञ थे। घोड़ों की लीद खाद के काम में नहीं आ सकती, अतः रासायनिक खाद एवं खेती के यांत्रिकीकरण को उन्होंने अपनाया। परिणामस्वरूप कुछ शतकों में ही वे अनुभव करने लगे हैं कि उनकी कृषिभूमि की उपजाऊ शक्ति घटती जा रही है। भारत में खेती अनंतकाल से हो रही है। फिर भी उपजाऊ शक्ति बनी हुई है, अतः स्पष्ट है कि अपनी कृषि पद्धति की वैज्ञानिकता काल की कसौटी पर खरी सिद्ध हुई है। उनकी तथाकथित वैज्ञानिकता काल की कसौटी पर विफल सिद्ध हो रही है।

किसानों का स्वावलंबन

अनुभवों के आधार पर शासन तथा सामाजिक व्यवस्था के लिए लोकतांत्रिक पद्धति सर्वश्रेष्ठ

सिद्ध हुई है। पुरातन परिवार पद्धति इसका अनुभवसिद्ध नमूना रहा है। लोकतंत्र की सफलता के लिए नागरिकों का स्वावलंबन सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू है, अतः जनजीवन के लिए आवश्यक सभी भौतिक साधन स्वावलंबन के लिए पोषक होने चाहिए। भारत की परंपरा में इस दृष्टि से कृषक वर्ग पूर्ण रूप से स्वावलंबी रहा है। अधिकांश कृषि साधन उसे अपने ग्राम से ही उपलब्ध होते थे। कृषि की आधुनिक पद्धति इस दृष्टि से प्रतिकूल है।

किसान को खेती के लिए आवश्यक खाद के लिए विशाल कारखानों पर निर्भर रहना पड़ता है। ये कारखाने कृषकों के सहायक बनने के लिए नहीं, अपितु अधिकतम धनार्जन के लिए धनपतियों द्वारा प्रस्थापित किए जाते हैं। बड़ी-बड़ी कंपनियों को छोटे-छोटे किसानों का शोषण करने का अवसर मिल रहा है। सरकार द्वारा खाद के लिए सब्सिडी देना इसका उपाय नहीं है। यांत्रिकीकरण किसानों को महत्त्वपूर्ण समय पर परेशानी में डालता है। जिस सीमित अवधि में खेतों को जोतना नितांत आवश्यक होता है, उन दिनों डीजल के एक एक पंप पर डीजल के अभाव के चलते हजारों ट्रैक्टर दस-दस दिन लाइन लगाए खड़े रहते हैं। इस प्रकार किसान का स्वावलंबन समाप्त हो रहा है।

जिन किसानों के पास खाद और डीजल के लिए नकद पैसा नहीं होता, उन्हें कर्ज लेने के लिए विवश होना पड़ता है। कर्ज के दुष्परिणामों से शासकों को छोड़कर सभी परिचित हैं। परिणामस्वरूप आधुनिक कृषि-पद्धति किसानों का स्वावलंबन समाप्त करने के साथ-साथ मध्यम एवं छोटे किसानों के कृषि उत्पादन पर भी विपरीत परिणाम कर रही है। जहां यह पद्धति कृषि कार्य की दृष्टि से अवैज्ञानिक है, वहां लोकतंत्र के लिए भी घातक है। संख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा वर्ग अर्थात् किसान अपना व्यक्ति स्वातंत्र्य और स्वावलंबन खोता जा रहा है, जो लोकतंत्र का प्रबलतम आधार है।

☐

भविष्य का भारत
पाश्चात्य पथ अनुकूल नहीं

जिन दिनों भारत परतंत्र था, उन्हीं दिनों पश्चिमी देशों में वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति का दौर जोरों पर था। भाप और बिजली की शक्ति के आविष्कारों ने विशालकाय कारखानों का युग प्रारंभ किया। उनके द्वारा बड़े पैमाने पर उत्पादन होने लगा। दुनिया भर के बाजारों में इन कारखानों का माल बिकने लगा। परिणामस्वरूप, पश्चिमी देशों की समृद्धि आकाश छूने लगी, अतः उनका प्रभाव विश्व भर में फैला। दूसरे विश्व युद्ध के परिणामस्वरूप अंग्रेजों के विश्वव्यापी साम्राज्य के दिन लद गए। एक के बाद एक देश स्वतंत्र होते गए। उन्हें अपने देश को विकसित करने का सुअवसर मिला।

पश्चिम के देशों के जगमगाते वैभव ने नवस्वतंत्र देशों को प्रभावित किया। अमरीकी और रूसी जीवनशैली ने इन दशों को सर्वाधिक आकर्षित किया। अतः नवस्वतंत्र देशों में अपनी तरक्की के लिए उन्हीं के तौर-तरीकों को अपनाने की होड़ लगी। भारत भी उसी लहर का शिकार बना। गांधीजी के मानवीय दिशादर्शन की अवहेलना हुई।

पश्चिम की नकल से हानि

अपने देश का इतिहास, अपना जीवन-दर्शन, अपने जीवन-मूल्य तथा उपलब्ध संसाधनों को आधार बनाकर अपना विकास स्वयं करने की बुद्धि हमने काम में नहीं लाई। अपनी असीम जनशक्ति तथा अथाह प्राकृतिक संसाधनों को नजरअंदाज कर दुर्लभ पूंजी पर आधारित विकास की दिशा अपनाई गई। तदनुसार ही पंचवार्षिक योजनाएं बनीं। अरबों रुपयों का विदेशी कर्ज लाद लिया गया। कृषि एवं औद्योगिक विकास पश्चिमी देशों की नकल के रूप में किया जाने लगा। ग्रामप्रधान भारत शहरी सभ्यता के ढांचे में ढलने लगा।

देश के छह लाख से अधिक गांवों को तथा उनकी विशाल आबादी को नजरअंदाज करना संभव नहीं था, अतः उनके विकास को योजनाओं में प्रारंभ से ही स्थान मिला, किंतु दिशा वही रही, जो पश्चिमी देशों में प्रचलित थी। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, केंद्रीय वैज्ञानिक एवं

औद्योगिक अनुसंधान परिषद् की अनेक प्रयोगशालाएं, राज्य सरकारों द्वारा निर्मित संस्थाएं, भारतीय प्रौद्योगिकी प्राधिकरण, कृषि तथा अन्य विश्वविद्यालयों जैसी आधुनिक इकाइयां काम करने लगीं। इसके बावजूद ग्रामों में लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना संभव नहीं हुआ। ग्रामीण युवा वर्ग का शहरों में आकर गंदी बस्तियों की आबादियां अबाध गति से बढ़ाने का सिलसिला जारी रहा और अब भी है।

उपर्युक्त इकाइयों द्वारा जो तकनीकी उपलब्ध की गई, उसका उपयोग ग्रामीण कारीगरों की क्षमता बढ़ाने के स्थान पर उनके कामों में गतिहीनता बढ़ाने में हुआ। कारण, वह तकनीकी पूंजी प्रधान और परंपरागत कारीगरों के लिए दुरूह थी। यह तकनीकी मूलतः संगठित औद्योगिक इकाइयों का लघुरूप मात्र थी। वह ग्रामीण युवाओं में न वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करने लायक रही, न ग्रामीण अंचल में उपलब्ध सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों में मूल्य-वृद्धि करने में ही समर्थ हुई। वस्तुतः विज्ञान एवं तकनीकी प्रक्रिया एकात्म है। उन्हें इस रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक था, जिससे ग्रामवासियों द्वारा उत्पादित माल की गुणवत्ता बढ़ती।

ग्रामीण तकनीकी का अभाव

स्वतंत्र भारत में ग्रामीण विकास की गति अवरुद्ध हुई। निर्धनता निरंतर बढ़ती गई। भूमि पर आबादी का बोझ असह्य हो गया। कृषि योग्य भूमि का लगातार बंटवारा होने के कारण अलाभकर जोतों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। भूमिहीन मजदूरों के लिए रोजगार का अभाव हुआ है। परंपरागत उद्योग बंद पड़े हैं। जो किसी प्रकार चलाए जा रहे हैं, उनके उत्पाद की मांग ही नहीं रही। कारण, ग्रामीण बाजारों में संगठित उद्योगों के माल ने अपना प्रभाव जमा लिया है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ऊर्जा का हुआ विस्तार तथा सड़कों के निर्माण के कारण यातायात की बढ़ी सुविधाओं के बावजूद गावों में ग्रामीण तकनीकी के अभाव में आर्थिक विकास को गति मिलना संभव नहीं हुआ है। इस विकट समस्या के निराकरण की जरूरत है, किंतु उसके लिए ग्रामीण अंचल में जाकर वस्तुस्थिति समझने की किसी को फुरसत ही नहीं है। नीति-निर्धारक शासकगण दफ्तर की फाइलों को निपटाने में ही उलझे रहते हैं या स्वागत समारोह की शोभा बढ़ाते हैं। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार कृषि के अतिरिक्त क्षेत्रों में रोजगार वृद्धि से ही भारत की दरिद्रता में कमी लाई जा सकती है। विदेशी विचारक हमारी वस्तुस्थिति अधिक जानते हैं, किंतु हमारा अपना नेतृत्व इस तथ्य को न समझना चाहता है, न उसका उपाय करने में ही रुचि रखता है। वह सत्तासुख भोगने में ही मगन है।

भारत की परंपरा ग्रामीण अंचल में स्वयं साध्य उद्यम की रही है। उसमें अपने परिवार के अतिरिक्त अन्य किसी के श्रम का योगदान लेने की आवश्यकता नहीं होती थी। भारतीय कुटीर उद्योगों की यह विशेषता थी। परिणामस्वरूप बेकारी की समस्या ही उपस्थित नहीं होती थी। परिवार आधारित उद्योगप्रियता की यह परंपरा चली आ रही थी। इस परंपरा के अनुरूप तकनीकी विकसित करने का ध्यान ही नहीं रखा गया, अन्यथा कुटीर उद्योगों की अल्प पूंजीवाली औद्योगिक नीति में पूंजीप्रधान

व खर्चीली विशालकाय औद्योगिक नीति को प्रतिस्पर्धा में टिकने ही नहीं देती। न बेकारी सिर उठा पाती, न गरीबी का तांडव मचने लगता। इस अत्यावश्यक पहलू की उपेक्षा की गई है। इस वास्तविकता की ओर ध्यान दिए बिना गांवों में बढ़ रही बेकारी तथा गरीबी मिटाना संभव नहीं है।

ग्रामीण उद्योग आयोग, ग्रामीण विकास प्राधिकरण, जिला औद्योगिक केंद्र आदि अनेक इकाइयां ग्राम विकास के नाम पर बना रखी हैं, उन पर धन भी बहाया जा रहा है, किंतु उनकी अवधारणाएं पश्चिमी देशों में विकसित शहरी जीवन पर आधारित हैं। वे गांवों को शहर बनाने के फेर में हैं। उनसे ग्रामीण क्षेत्र में स्वावलंबन का जीवन विकसित होने की अपेक्षा करना मृगमरीचिका के पीछे दौड़ना मात्र है। ऐसा मानने के निम्न कारण हैं—

(क) उनके सम्मुख काम का रूप बिखरा हुआ है।

(ख) लक्ष्य की स्पष्टता का अभाव है।

(ग) ग्रामीण तकनीकी विकसित करने की उनमें न प्रेरणा है, न क्षमता।

ग्राम विकास के कार्यों में स्थानीय लोगों का सक्रिय योगदान लेने की अधिकारियों में मानसिकता ही नहीं है। ग्रामवासियों के लिए किस तकनीकी की जरूरत है, यह समझने की इन अधिकारियों में इच्छा भी नहीं है। ऊपर से आए आदेशों का पालन करने का उनका गुलामी के काल में बना स्वभाव स्वतंत्र भारत में भी कायम है। स्थानीय आवश्यकता को समझ कर वे जरूरी कदम भी नहीं उठाते। यदि ग्रामवासियों के दृष्टिकोण से समस्याओं एवं आवश्यकताओं का आकलन करने की नेतृत्व में मानसिकता होती तो सहज में ही समझ में आता कि समस्या वितरण मात्र की नहीं, अपितु ग्रामीण तकनीकी के विकास की है।

अमानवीय औद्योगीकरण

ग्रामीण अंचलों में पुन: निर्मित हो पाने वाले तथा पुन: निर्मित न हो पाने वाले प्राकृतिक संसाधन पाए जाते हैं। इस तथ्य को ध्यान में रखकर ही उनका उपयोग करने की योजना बनाई जानी चाहिए। कारण, मानव समाज का अस्तित्व अनंत काल तक टिकने वाला है। पश्चिमी देशों में प्रचलित भोगप्रवण प्रवृत्ति इस वस्तुस्थिति का ध्यान नहीं रखती, अन्यथा ओजोन क्षतिग्रस्त न हुआ होता, न प्राणघातक प्रदूषण का प्रादुर्भाव ही होता। इस अमानवीय वृत्ति को भारत के ग्रामीण विकास में प्रश्रय न मिले, इसका विशेष ध्यान रखकर अपनी संस्कृति के अनुसार मानवीय तकनीकी विकसित करना स्वतंत्र भारत की आवश्यकता थी और है।

पश्चिमी देशों में हुई तथाकथित प्रगति के अनुसार किए गए औद्योगिक विकास ने अपने परंपरागत कुटीर उद्योगों के अस्तित्व पर ही कुठाराघात किया है, जो हमारे ग्रामीण जीवन के मूलभूत आधार थे। लोकतांत्रिक जीवन के प्राणस्वरूप साधन थे। विकेंद्रीय अर्थव्यवस्था के अद्वितीय नमूने थे। नवस्वतंत्र लोकतांत्रिक कहे जाने वाले भारत ने उन्हीं को तलाक दे दिया है तथा आधुनिकता के चक्कर में अमानवीय औद्योगीकरण का वरण किया है।

स्वचालित यंत्र पद्धति का विस्तार तथा यंत्र-मानव के आविष्कार का सत्कार मानव श्रम के बहिष्कार का खतरनाक अवतार है। उससे इने-गिने सक्षम लोग ही सुखोपभोग का आनंद लूटते हैं और शेष सामान्य-जन विपन्नावस्था में कराहते हैं। इसे वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति मानना विज्ञान की विडंबना है, प्रकृतिप्रदत्त प्रतिभा का सरासर दुरुपयोग है, मानवीयता की अवमानना है तथा अपनी परंपरागत सभ्यता एवं संस्कृति की अवहेलना है।

सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों का स्रोत, जिस पर मानव समाज का जीवन एवं विकास निर्भर है, एकमात्र ग्रामीण अंचल है। यदि वही वीरान हुआ तो मानव मात्र का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। कृषिजन्य पदार्थ, वनजन्य पदार्थ, भूगर्भजन्य पदार्थ तथा पशुजन्य पदार्थ, जिनके बिना मानव जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती, किसी अन्य स्रोत से पाना असंभव है।

सृष्टि का अस्तित्व परस्पर-पूरकता पर आधारित है। मानव उसी का श्रेष्ठतम आविष्कार है। सृजनशीलता का उसे वरदान प्राप्त है। संवेदनशील स्वभाव उसकी विशेषता है, अतः सबके प्रति करुणामय व्यवहार उससे अपेक्षित है। शरीरधारी होने के कारण उपभोग उसकी आवश्यकता मात्र है, उसका लक्ष्य नहीं है। संवेदनशील स्वभाव उसके उपभोग पर संयम का अंकुश लगाने की क्षमता रखता है। इन्हीं प्रकृति प्रदत्त गुणों के कारण मानव मानवीयता से विभूषित होता हुआ चराचर को मंगलमय रूप प्रदान कर सकता है। यही उससे अपेक्षा भी है। यही मानव-धर्म है, किंतु प्रकृति प्रदत्त सद्‌गुणों का उपयोग करने में मानव का विवेक समय से न जागे तो मानव ही उपभोग की वृत्ति के वशीभूत होकर दानव बनता है। विनाश का तांडव रचता है।

भविष्य के गांव की कल्पना

सबसे पहले इस बात को समझ लेना चाहिए कि प्राचीन काल में भारतीय ग्रामीण जीवन पर्यावरण के स्वस्थ सिद्धांतों के आधार पर संगठित किया गया था। जीवन पद्धति, कृषि, उद्योग, जल प्रबंध आदि मानव के हर कार्यक्षेत्र में प्रकृति के साथ सामंजस्य पैदा करने के लक्ष्य को स्वीकार किया गया था। आद्य ग्रंथों में इस समरसता के अनेक संदेश भरे पड़े हैं। यही कारण है कि हजारों वर्षों की खेती-बाड़ी के बाद भी कुछ शताब्दी पहले तक भारतीय पर्यावरण को स्वस्थ बनाए रखा जा सका। ब्रिटिश शासन के आगमन के बाद और प्रकृति पर विजय पानेवाली प्रौद्योगिकी तथा वाणिज्यिक सभ्यता को जबरदस्ती स्थापित करने के बाद भारत के पर्यावरण में प्रदूषण प्रारंभ हो गया।

दूसरे महायुद्ध के बाद जब प्रकृति पर विजय पाने वाली प्रोद्यौगिकी अधिक विनाशकारी और व्यापक रूप से प्रभावी हो गई अर्थात् इसका प्रभाव कृषि, उद्योग, यातायात, आवास, ऊर्जा-प्रजनन क्षेत्रों अर्थात् जीवन की समस्त गतिविधियों में फैल गया तो पर्यावरण के विनाश की गति अधिक तीव्र हो गई। उष्ण कटिबंध में पर्यावरण का विनाश प्रायः अंतिम कगार पर पहुंच गया है, क्योंकि प्रकृति पर विजय पानेवाली प्रौद्योगिकी का दुष्प्रभाव सदा अधिक एवं तीव्र होता है। ग्रामीण विश्वविद्यालयों

पर यह बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है कि वे विनाश की इस प्रक्रिया की दिशा को बदलें, यद्यपि अनेक लोग इस सीमा तक निराश हो गए हैं, कि वे समझने लगे हैं कि विनाशकारी प्रक्रिया को अब रोका नहीं जा सकता।

राधाकृष्णन आयोग ने सच ही कहा था कि भविष्य में हमें किस प्रकार के ग्राम का निर्माण करना है, इसकी मानसिक कल्पना का सृजन किए बिना ग्रामीण शिक्षा के स्वरूप का उचित निर्धारण नहीं किया जा सकता। गांव के अपने कल्पना चित्र की हर बात से हमारा सहमत होना आवश्यक नहीं है। पिछले 40 वर्षों में विश्व के विकास क्रम ने हमारी कल्पना दृष्टि को समृद्ध बनाया है। हम यह तो चाहेंगे कि गांवों में मल-निस्सारण के लिए नालियों की व्यवस्था हो। हम चाहेंगे कि सुरक्षित तालाबों या नलकूपों से पीने का पानी प्राप्त किया जाए और पानी को रेत, बजरी और कोयले से साफ किया जाए, न कि पाईप द्वारा दबाव के माध्यम से संभरण किया जाए। हम चाहेंगे कि हमारे गांव के घरों में टेलीफोन हो, जिससे उपग्रह का उपयोग हो। ग्रामीण शिक्षा के स्वरूप का निर्धारण करने के लिए ग्राम-सृजन की मानसिक कल्पना का निर्धारण जरूरी है।

सौर ऊर्जा का प्रयोग

संचार माध्यमों द्वारा ग्रामवासी दूसरे महाद्वीपों के लोगों के साथ वार्त्तालाप कर सकें। इससे यातायात व्यय में कमी आएगी। हमारे पास हर गांव में सूर्य ताप द्वारा बिजली प्रजनन की व्यवस्था होनी चाहिए, हमारी यातायात पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि ऊर्जा की कम-से-कम खपत हो और यथासंभव गोबर गैस यंत्र (बायोगैस प्लांट) का प्रयोग करें। हम यह भी चाहेंगे कि अपने गांव में सौर-ऊर्जा चूल्हे द्वारा भोजन पकाएं, सौर भट्‌ठी द्वारा पानी गरम करें, सौर-ऊर्जा द्वारा सुखाने का यंत्र हो और खाद्य वस्तुओं को ठंडा रखनेवाला यंत्र (रेफरीजरेटर) भी सौर-ऊर्जा से चलित हो। हमें सूर्यतापी ताल से बिजली उत्पादन की कल्पना को चरितार्थ करके दिखाना होगा। प्रयोग में लाई गई वस्तुओं के पुनः प्रयोग में लाने की विधि, जैविक संतुलन और सहकारिता तथा हानिकर जीवों का परिहार करने की विधियां उपलब्ध कराना और विविधता हमारा लक्ष्य होना चाहिए।

हमारी कृषि प्राकृतिक खाद तथा खेती-बाड़ी के सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए, जिसमें अनेक किस्मों की फसलें उगाने से उत्पादन आधार को विस्तार देकर उत्पादन में वृद्धि की जाती है। जब कभी हम पुनः प्रयोग में न आनेवाले संसाधनों द्वारा बिजली का प्रजनन करते हैं तो यह सहप्रजनन के सिद्धांत पर आधारित होना चाहिए, ताकि कोई भी वस्तु व्यर्थ नष्ट न हो और पर्यावरण दूषित न हो। हम देहात में अनेक छोटे उद्योग स्थापित करेंगे, जो प्रदूषण पैदा नहीं करते और जो प्रकृति के साथ सामंजस्य स्थापित करनेवाली अत्यंत विकसित प्रौद्योगिकी पर आधारित हैं। हम चाहेंगे कि प्राथमिक और प्राथमिकोत्तर स्कूल, पुस्तकालय, भाषण-कक्ष, व्यायामशाला और प्राकृतिक चिकित्सा केंद्र हर गांव में स्थापित किए जाएं और प्रसूति-गृह, बाल कल्याण संस्थान और परामर्श व्यवस्था केंद्र ग्राम समूहों में स्थापित किए जाएं।

लोकतांत्रिक शिक्षा पद्धति

हमारी शिक्षा पद्धति सर्वाधिक लोकतांत्रिक और उत्पादनोपयोगी सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए। इसमें अध्यापक, छात्र और संरक्षक का पूर्ण सहयोग होना चाहिए, जिसमें अध्यापक किसान की बुद्धिमत्ता से बहुत कुछ ग्रहण करेगा। सामाजिक संगठन के धरातल पर वस्तुओं के पुनः प्रयोग का नया सिद्धांत स्थापित कर सकते हैं, जिसमें अध्यापक, छात्र और संरक्षक कुछ कार्यों में अपनी भूमिका में परस्पर परिवर्तन कर सकते हैं। हम चाहेंगे कि ऐसे समाज का निर्माण हो, जिसमें पारिवारिक समरसता और सामुदायिक जीवन का मानव की स्वतंत्रता और रचनात्मकता के साथ सह अस्तित्व स्थापित हो, जहां लोग अधिकांशतः अपने स्वतंत्र उद्योग-धंधे स्थापित करें, जहां स्थानीय समुदाय इस बात का ध्यान रखें कि हर व्यक्ति किसी लाभकारी कारोबार में लग जाए। व्यक्तिगत सुरक्षा के नाम पर समाज कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया जाए।

इसके अतिरिक्त हम चाहेंगे कि हमारे गांव साफ-सुथरे, सुंदर और स्वास्थ्यप्रद हों और वहां ऐसी स्थिति हो, जिसमें मनुष्य और प्रकृति के बीच मां और बच्चे का रिश्ता स्थापित हो जाए और शोषणकारी शक्तियां और विनाशकारी दलाल और मध्यस्थ न हों। जहां उत्पादक और उपभोक्ता की सहकारी समितियां ही अर्थव्यवस्था का निर्धारण करने वाली शक्ति हों। जहां ऐसी पंचायतें और सभाएं हों, जो विकेंद्रीकृत स्वतंत्र शासन की आदर्श संस्थाओं के रूप में काम करें और देश के शेष भाग के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित करें। हम चाहेंगे कि प्रत्येक छोटा ग्राम या बस्ती इसी प्रकार समस्त विश्व का चिंतन करें, जैसे धरती में गहरे धसीं जड़ों पर टिका वृक्ष अपनी स्थानीय भूमि के गर्भ से पोषक तत्त्व ग्रहण करता है और फिर भी आसमान में ऊंचाई को छूने का सामर्थ्य रखता है।

□

ग्रामोदय कोष
आत्मनिर्भरता का सोपान

अर्थ जीवन का आधार है। उसकी सर्वप्रियता मानव की जन्मजात प्रवृत्ति बन गई है। अर्थ को संगृहीत करने की लालसा निरपवाद है। उसकी जितनी जरूरत व्यक्ति या परिवार के लिए है, उतनी ही सामाजिक जीवन के लिए भी है। विषमताग्रस्त समाज की समस्याओं का निराकरण सामूहिक कोष के बिना संभव नहीं है। प्राकृतिक प्रकोप के काल में सामूहिक कोष न रहा तो पीड़ितों को समय से राहत पहुंचाना असंभव हो जाता हैं। विपन्नावस्था से पीड़ित निवासी को उबारने के लिए भी सामूहिक कोष ही उपयोगी होता है। इस दृष्टि से ग्राम्य जीवन स्वयंपूर्ण बनाने के लिए प्रत्येक आबादी में ग्रामोदय निधि की समुचित व्यवस्था अनिवार्य है।

गांव के प्रत्येक नागरिक से इस निधि में यथाशक्ति योगदान पाने की व्यवस्था की जानी चाहिए। वस्तुतः आबादी का प्रत्येक व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। उसका अपनी आबादी के प्रति जन्मजात दायित्व है। उदर-भरण करनेवाला गरीब व्यक्ति भी कम-से-कम एक मुट्ठी अनाज इस निधि में देकर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का पालन करे। अन्यथा व्यक्ति और समाज की पर-पूरकता का जीवन व्यावहारिक धरातल पर कभी साकार ही नहीं होगा।

1962 में अपने देश पर चीन ने अचानक आक्रमण किया था। इस अनपेक्षित महासंकट का सामना करने के लिए सरकार ने आम लोगों से आर्थिक सहायता मांगी थी। साधारण-से-साधारण महिला-पुरुषों ने भी खुले दिल से अधिक-से-अधिक योगदान दिया था। अनेक महिलाओं ने तो अपने सर्वप्रिय जेवर भी समर्पित किए थे। अनेक सफाई मजदूरों ने एक-एक माह का वेतन देश को बचाने के लिए स्वेच्छा से अर्पित किया था, किंतु यह निधि एकत्रित करनेवालों का इस समर्पित राशि में कितना योगदान था? इसकी जड़ में अब जाने की जरूरत नहीं है। हमें यह देखना है कि इस कार्य में कोई भी अपवाद न रहे। पूर्णकालीन कार्यकर्ता भी अपने योगक्षेम में से ग्रामोदय निधि में अपना योगदान देने में पीछे न रहें। अन्यथा उनकी प्रेरक शक्ति पर विपरीत परिणाम होगा। नेतृत्व की हर बात को लोग बहुत पैनी नजर से देखते हैं।

यह अभियान विभिन्न प्रकल्पों में 18 सितंबर, 1998 को शुरू किया गया।

ग्रामोदय निधि प्रबंध

वर्तमान काल में जनजाति के बारे में विश्वसनीयता का अभाव हो गया है। अरबों रुपयों के घोटाले सामने आए हैं। कारगर कदम उठाने की संभावना दिखाई नहीं देती। फलस्वरूप संदेह की चपेट से बच पानेवाले नेता ढूंढ़ना कठिन हो गया है। ऐसे संदेहास्पद वातावरण के बावजूद ग्रामोदय निधि की व्यवस्था करना अवश्यंभावी है। केवल आवश्यकता है सतर्कता के साथ काम करने की। उसके लिए प्रारंभ से ही समुचित प्रबंध किया जाना चाहिए।

गांव के दो-तिहाई वयस्क एवं निष्पक्ष लोग तथा एक तिहाई निष्पक्ष युवकों की मिलकर एक ग्रामोदय निधि प्रबंध समिति चयनित की जाए। इसमें कम-से-कम सात या अधिकतम ग्यारह सदस्य हों। इस समिति में एकाधिक महिलाएं अवश्य रखी जाएं।

समिति का एक संयोजक नामित किया जाए। प्रत्येक बैठक का संपूर्ण विवरण उसी बैठक में लिखकर उस पर सबके हस्ताक्षर कराए जाएं। यह काररवाई पुस्तिका स्थायी आलेख के रूप में रखने लायक होनी चाहिए। एकत्रित ग्रामोदय निधि किसी बैंक में तीन नामों से जमा करानी चाहिए तथा बैंक से रुपया निकालने का कार्य इन तीन लोगों में से किन्हीं दो लोगों के हस्ताक्षर से होना चाहिए।

दैनंदिन आय-व्यय की पुस्तिका एवं खतौनी की पुस्तिका लिखने का दायित्व ग्रामोदय निधि प्रबंध समिति के संयोजक का हो। इसके लिए माह की कोई तिथि निश्चित की जा सकती है। आवश्यकता के अनुसार विशेष बैठक तीन दिन की सूचना देकर बुलाई जा सकती है। आपातकालीन बैठक उसी दिन बुलाई जा सकती है। एक तिहाई से अधिक उपस्थिति द्वारा लिया गया निर्णय वैध माना जाए। व्यय करने का निर्णय बैठक में ही किया जाना चाहिए। तीन माह में एक बार आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इसी बैठक में गांव के विकास के संबंध में चर्चा तथा निर्णय किए जा सकते हैं। तभी विकास कार्य में सबका सक्रिय योगदान संभव होगा।

मानव जीवन में आर्थिक आकर्षण उसकी संवेदनशीलता को घटा रहा है। हाथ में आया रुपया छोटा बच्चा भी दूसरे को देना नहीं चाहता। समाज में प्रचलित आर्थिक आकर्षण की असंतुलित प्रवृत्ति का यह कुसंस्कार है। सामाजिक जीवन-दृष्टि विकसित करने में उपर्युक्त मानसिकता बाधक है। उपदेश मात्र से यह दोष दूर होने वाला नहीं है।

हर एक मानव आबादी के एक अंग के रूप में ही जीवन-यापन करता है। गरीब व्यक्ति भी अपने उदर-भरण के बिना नहीं रहता। अतः हर एक कुटुंब प्रतिदिन कम-से-कम एक मुट्ठी अनाज ग्रामोदय कोष में अर्पित करे, इस प्रथा को प्रचलित करने का प्रयास किया जा रहा है। इससे कौटुंबिक जीवन में सामाजिक संस्कार होने के साथ-साथ गांव के अभावग्रस्तों के जीवन को सुधारने का काम गांववालों के द्वारा ही होने लगेगा।

नवस्वतंत्र भारत की न्यूनतम आवश्यकताएं

(अ) सामाजिक एवं आर्थिक विषमता घटाने की।

(आ) सभी सक्षम युवक-युवतियों को लाभप्रद स्वरोजगार उपलब्ध कराने की।

(इ) प्रदूषण समाप्त कराने की।

(ई) स्वस्थ पर्यावरण उपलब्ध कराने की।

(उ) नैतिकतापूर्ण आचरण प्रचलित करने की।

आजादी के पचास साल बीतने पर भी उपर्युक्त प्राथमिक आवश्यकताएं केवल नारों तक ही सीमित रही हैं। जब तक जनसहयोग आधारित शासन व्यवस्था अपनाई नहीं जाती, तब तक केवल नौकरशाही के माध्यम से उपर्युक्त आवश्यकताएं पूर्ण नहीं होंगी। शासन व्यवस्था में उपर्युक्त सुधार की प्रतीक्षा करते-करते पचास साल बीत गए। देश की दशा पतन की ओर ही बढ़ती जा रही है। अतः दीनदयाल शोध संस्थान ने उपेक्षाग्रस्त ग्रामीण अंचलों में अनेक स्थानों पर प्रयोगात्मक कार्य कर उत्साहवर्धक अनुभव प्राप्त किए हैं। छोटे-छोटे प्रयोगों की सफलता ने व्यापक स्तर पर समाज के सर्वांगीण विकास का व्यावहारिक नमूना खड़ा करने की प्रेरणा प्रदान की है। फलस्वरूप ग्रामीण लोकशक्ति के आधार पर पांच सौ ग्रामों के औद्योगीकरण का उपर्युक्त प्रकल्प हाथ में लिया है। इस प्रकल्प से चयनित ग्रामों के महिला-पुरुषों में खुशहाली के जीवन की आशा जगी है। विश्वास है कि इस प्रकल्प की सफलता देश-विदेश के अभावग्रस्त इलाकों के लिए अनुकरणीय सिद्ध होगी।

अभावग्रस्त क्षेत्रों में ग्रामवासियों के आपसी झगड़े उनके विकास में बाधक बनते हैं। जिला कचहरियों का दृश्य देखकर मन परेशान होता है। हर वकील भोले-भाले ग्रामीणों से घिरा रहता है। ज्यादातर मुकदमे जमीन के झगड़ों और फौजदारी के होते हैं। जिले के लगभग सभी ग्रामों से गरीब किसान बार-बार कचहरियों में आते हैं। इन किसानों का धन अपनी तरक्की में न लगकर मुकदमेबाजी में बरबाद होता है। मुकदमा जीतनेवाला और हारने वाला, दोनों की आर्थिक हालत दयनीय हो जाती है। इस दुर्दशा के निवारण की चिंता न किसी नेता में दिखाई देती है, न बुद्धिमान वकीलों में। इस मुकदमेबाजी से गांवों को न बचाया गया तो गांवों में खुशहाली कभी भी संभव नहीं होगी। दीनदयाल शोध संस्थान इन मुकदमों की महामारी से गांवों को बचाने की दिशा में कदम बढ़ा रहा है।

पुरातन काल में भारत में पंचायत पद्धति प्रभावी रूप से प्रचलित थी। हर आबादी में निष्पक्ष, निर्विवाद तथा प्रामाणिक व्यक्तियों का अस्तित्व था। ऐसे ही पांच बुजुर्ग लोगों को पंच बनाया जाता था। इन पांच लोगों का निर्णय परमेश्वर का निर्णय मानने की परंपरा थी। गांव में किसी भी कारण निर्मित हुई अनबन पंच सुलझा देते थे। पूरा गांव एक परिवार के रूप में सुखानंद से जीवन बिताता था। गांव-गांव में किसी के घर ताला नहीं लगाना पड़ता था। इस तथ्य को विदेशी यात्रियों ने अपने संस्मरणों में लिखा। ऐसे ही निष्पक्ष, निर्विवाद एवं प्रामाणिक व्यक्तियों का हर आबादी में विकास किए बिना जनजीवन में सुधार होना असंभव है। इसी दिशा में शोध संस्थान के समाज-शिल्पी काम कर रहे हैं।

वर्तमान काल में चारों ओर मची धांधली के कारण लोग परेशान हैं। उन्हें उससे उबरने का

उपाय सूझ नहीं रहा है, यद्यपि वे इसके समाधान के लिए व्याकुल हैं। फलस्वरूप समाज स्वास्थ्य-शिल्पियों को लोगों का सहयोग पाने में अधिक कठिनाई नहीं हो रही है। समाज स्वास्थ्य-शिल्पी इस दिशा में प्रयोगात्मक कदम बढ़ा रहे हैं। चुने हुए प्रौढ़ सज्जनों का व्यक्तित्व निर्विवाद रूप से निष्पक्ष बनाने की दिशा में काम किया जा रहा है। खुशी की बात है कि इस काम की सफलता की संभावना बढ़ रही है। ऐसे लोगों के सहारे गांवों के अंदर हो रही अनबन को प्रारंभ में ही मिल-बैठकर सुलझाने का प्रयास प्रारंभ किया गया है। लोग इस नए प्रयास को पसंद कर रहे हैं। गांव का नया मुकदमा कचहरी में न जाए, यह प्रयास हो रहा है। अगला कदम होगा कचहरी में चल रहे पुराने मुकदमे आपसी समझौते से वापस लेने का। यह काम आसान नहीं है, लेकिन प्रामाणिकता से जुट जाने पर कोई भी काम असंभव नहीं होता।

□

स्वावलंबन
स्वराज्य का अधिष्ठान

मुझे बहुत खुशी हो रही है कि अपने जितने प्रकल्प चल रहे हैं, उन प्रकल्पों से अधिकांश कार्यकर्ता इस कार्यक्रम में सपरिवार उपस्थित हैं। सुबह श्री यादवराव देशमुख ने कहा कि परिवार ही समाज की आधारभूत इकाई है, किंतु आमतौर पर हम देखते क्या हैं कि कार्यक्रमों में सब लोगों को नहीं बुलाया जाता है। सबका मतलब–परिवार को। इसकी आवश्यकता आजादी के 54 साल के बाद भी दिखाई नहीं पड़ती। यह दुर्भाग्य है। दीनदयालजी का जो विचार था, उन विचारों को साकार करने का काम दीनदयाल शोध संस्थान कर रहा है। एकात्म मानव का निर्माण। परिवार ही एकात्म नहीं होगा, तो परिवार में जन्म लेनेवाला मानव, चाहे पुत्री हो, चाहे पुत्र, एकात्म कैसे बनेगा? अब इसीलिए अपना यह कार्यक्रम कार्यकर्ताओं के परिवारों के साथ मिलकर चलेगा। प्रसंग के अनुसार भाषण दिए जाते हैं, लेकिन वे एक कान से सुने जाते हैं, दूसरे कान से निकाले जाते हैं। जीवन जैसा–का–तैसा बना रहता है। क्या फर्क पड़ा है आजाद होकर। देश के नागरिक गुलामी की हालत में जैसे सरकार के मुखापेक्षी होते थे, आज भी सरकार के ही मुखापेक्षी हैं। स्वावलंबी नहीं हैं।

आखिर स्वराज्य का अर्थ क्या है? जब स्वावलंबन नहीं, तो स्वराज्य कैसे? क्या कुछ ही नेताओं का या कुछ ही शासकों का स्वराज्य है या देश का स्वराज्य है? इसके लिए भाषणों से काम नहीं चलेगा। प्रत्यक्ष जीवन में इन सब बातों को साकार करना पड़ेगा। जिन बातों को अपने को समाज में कार्यान्वित करना है, उसे लिखकर छापा गया है, फोल्डर के रूप में। आपको दिया गया है। उसको पूरा पढ़ लीजिए। दीनदयाल शोध संस्थान के नाम से, जहां कहीं भी काम होगा, वह इस फोल्डर में लिखा हुआ है। जिस दिशा में यह काम हो रहे हैं, उस काम में सफलता भी मिल रही है—उसका बहुत संक्षिप्त में इस फोल्डर में उल्लेख किया गया है।

अपने देश में पता नहीं कितने सालों से सामाजिक सुधार के काम होते आ रहे हैं। हिंदुस्तान के आजाद होने के बाद, उन कामों में अब वह बल नहीं रहा। अब तो सबको राजनीति से ही प्यार है। सत्ता के माध्यम से ही सबकुछ होगा, यह समझ बनी है। इसलिए हिंदुस्तान में कोई भी सामाजिक कार्य या संगठन सत्ता से दूर नहीं रहना चाहता। यह अपने देश का बहुत बड़ा दुर्भाग्य है।

अखिल भारतीय कार्यकर्ता परिवार शिविर, चित्रकूट, जून 2001 में दिए गए भाषण पर आधारित।

सब बातों को देखकर दीनदयालजी ने बड़ी चिंता की। मेरा तो अपना बड़ा सौभाग्य है कि लगातार 25 वर्ष उनके साथ काम किया। इस कारण उनके मन की पीड़ा क्षण-क्षण मुझे अनुभव करने को मिली। इसीलिए उनके बाद सोचा कि उन्होंने जो कुछ कहा था, उसको व्यावहारिक धरातल पर साकार करने का प्रयास किया जाए। आज समाज की मूल शक्ति का ह्रास हो रहा है। बहुत सी सामाजिक कुरीतियां आज भी चल रही हैं। बाल-विवाह के खिलाफ कानून है, लेकिन मैंने देखा, अपने जयप्रभा ग्राम में शादी के मौसम में 7-8 साल की बच्चियों की मांग में सिंदूर पड़ा है। इन कुरीतियों को न बदलकर राजनीतिक लोग भी समाज को तोड़ रहे हैं।

मैं संघ का प्रचारक था। एक दिन संपादक हनुमान प्रसाद पोद्दार, जिनके नाम से यहां गौशाला चल रही है, के यहां सब एकत्र थे। वहां कांग्रेस के प्रदेश अध्यक्ष थे—बाबा राघवदास। तो उन्होंने मेरी ओर इशारा करके पूछा, 'यह कौन लड़का है, कहां रहता है?' हनुमान प्रसादजी बोले, 'कहीं रहता नहीं है, बेचारा दो-चार दिन भूखा रहता है, तो मेरे पास आता है, खाना खाता है। रोज कहते हैं आने के लिए, रोज आता नहीं।'

अब बाबा राघवदास बोले, 'उसे मुझे दे दो।' तो कांग्रेस के दफ्तर में मैं उनके साथ रहने लगा। आज समाजवादी कहनेवाले लोगों ने मिलकर जात-पाँत तोड़क मंडल शुरू कर दिया है। अब मैं तो कांग्रेसी था नहीं, लेकिन मैं बाबा राघवदासजी के कमरे में, कांग्रेस के दफ्तर में रहता था और आचार्य नरेंद्र देव उसके प्रेरक थे। डॉ. राम मनोहर लोहिया से तभी मेरी दोस्ती हुई थी। उनके अंतिम काल तक रही। अब यही समाजवादी जाति के आधार पर समाज को बराबर बांटते चले आ रहे हैं। जाति-पाँति तोड़क मंडल उन्हीं लोगों ने शुरू किया था। मेरे सामने शुरू किया था। समाज को जोड़ने के काम में नई पीढ़ी में रुचि निर्माण करने का हमारे मन में भाव ही नहीं है। वस्तुतः अपने देश को बड़ा बनाना कोई दिक्कत की चीज नहीं है। सब हो सकता है। समाज एकजुट होगा तो आर्थिक स्वावलंबन के लिए भी खड़ा होगा।

कुछ महिलाएं यहां काम कर रही हैं, पति नहीं कर रहे हैं। पत्नियां अपने पति को भी अपने साथ इन कामों में लगाएं। इसकी आवश्यकता है। हमारे देश में यह खाई है। जिस देश में विदुषी महिलाएं हुईं, वहां महिलाओं का सामाजिक कार्य में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेना अपवाद की बात नहीं है। जब शंकराचार्य मंडन मिश्र से वाद-विवाद करने बैठे तो प्रश्न आया कि इसकी अध्यक्षता कौन करे। तो मंडन मिश्र की पत्नी को अध्यक्ष बनाया गया। ऐसी हमारे देश की परंपरा रही है। आजकल पत्नी किस बात के लिए होती है, ये मैं बताऊं, इसकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैं तो इसका अनुभवी भी नहीं हूं। लेकिन देखता रहता हूं। वस्तुतः गांधीजी ने कहा था, जो काम नहीं करता, जो उत्पादन नहीं करता, उसको खाने का अधिकार नहीं। दवा का तो सवाल ही नहीं है।

गांवों में हों उत्पादकता बढ़ाने के प्रयोग

आज हम आर्थिक जीवन के संबंध में विचार करेंगे। जब हम आर्थिक जीवन का विचार करते हैं तो आर्थिक जीवन की परिपूर्ति के लिए दो ही उपक्रम हैं। पहला—अन्न की व्यवस्था। जिसका

उत्पादन खेती के माध्यम से होता है। दूसरा-उद्योग, क्योंकि मानव खाली खा-पी करके ही नहीं रह पाता। हमको कपड़े पहनने पड़ते हैं। मेरे जैसा बूढ़ा होगा तो चश्मा भी चाहिए। हमको बहुत चीजें चाहिए। मकान भी चाहिए तो इन शेष चीजों के लिए उद्योग चाहिए। मानव के लिए आर्थिक व्यवस्था इन्हीं दो साधनों से होती है। उद्योग भी अनेक प्रकार के हैं। अब दूसरा प्रश्न यह भी है कि उद्योगों के लिए प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रयोग कैसे हो? इसके लिए प्रयास करने हैं, प्रयोग करने हैं। हमारे जीवन के लिए प्रकृति ने जो कुछ भी दिया है, उसके बिना तो हम जी नहीं सकते। हमें जीने के लिए अनाज चाहिए। वह कृषि से मिलता है। यह दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास, बैंगलोर, हैदराबाद, कानपुर कहीं नहीं होगा। यह तो गांव में ही होगा।

सारा खजाना देहात में है। शहर में केवल उपभोग का कार्य होता है। उपभोग के लिए आवश्यक सामान देहात में पैदा होता है। तो देहात से आदमी उलटी दिशा में भाग रहा है। इससे बेकारी की समस्या हल नहीं होगी। अपने को गांव में प्रयोग करने होंगे। हमारे गांव में कोई बेकार नहीं रहे। प्रतिवर्ष 70-80 लाख बेकार हो रहे हैं। 87 लाख सरकारी आंकड़ा है। बेकारी मिटाने के लिए हम क्या करें? संसार के सामने यह सवाल है। भारत के सामने बहुत उग्र है। इसके लिए हम तय करें कि यहां हम किसी को बेकार नहीं रहने देंगे। सबके लिए लाभकर रोजगार का इंतजाम करेंगे। ये कैसे होगा? गांवों में जितनी चीजें उत्पादित हो रही हैं, वो शहर में रहनेवाले लोगों के लिए जरूरी हैं। विदेशों में भी उनकी जरूरत है। इतिहास देखो तो अनंतकाल से हिंदुस्थान की चीजें दुनिया के देशों में जाती थीं, क्योंकि उनकी आवश्यकता थी। आज भी है। ये सब चीजें देहात की हैं। तो देहात में जो भी कच्चा माल या प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं, उनसे तैयार होनेवाला माल हम अपने-अपने क्षेत्र में ही निर्मित करें। चाहे फिर उसका बाजार शहरों में, पूरे देश में या विदेशों में उपलब्ध हो। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे गांवों में रोजगार पैदा हो। इस दिशा में हमारा संस्थान नए-नए प्रयोग कर रहा है।

□

ग्राम शिल्प

ग्राम्य जीवन का पोषण-मंत्र

आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का उदय पश्चिमी देशों में हुआ। वहां वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति ने विस्मयकारी गति प्राप्त की। विशालकाय कारखानों का युग आरंभ हुआ। शहरीकरण की लहर चल पड़ी। इससे ग्रामीण अंचल लगातार सिकुड़ता चला गया। भौतिकता की महत्ता सर्वोपरि बनी। जिससे मानव-मन की संवेदनशीलता घटने लगी। हृदय की विशालता एवं उदात्तता का ह्रास होता चला गया। व्यक्तिगत हित-साधन मानव-जीवन का केंद्र बना। उत्पादन की गति बेहद बढ़ी। नए-नए बाजारों की खोज होने लगी। शासकों एवं व्यापारियों में गठबंधन हुआ। पश्चिमी साम्राज्यों का विस्तार होता गया। उन देशों में समृद्धि की बाढ़ आ गई। मानव ही मानव का शोषक बना। गुलामी में फंसे लोगों में हीन भावना पनपती गई। समृद्धिमूलक सभ्यता मानव सुलभ स्वभाव का आकर्षण बनी। पराधीन देशों के संपन्न नागरिकों ने उसे अपनाने में पहल की।

भारत के स्वाधीनता संग्राम में शामिल रहे अधिकांश नेतागण भी इसी सभ्यता के प्रभाव में आए। किंतु भारत के आध्यात्मिक परंपरा के अनुरागी नेतृत्व ने इस भोगवादी सभ्यता के दूरगामी दुष्परिणामों का उसी समय ठीक से आकलन किया। उन्होंने अपने सहयोगियों को इस खतरनाक दिशा से बचने के लिए आगाह किया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''भारत इस पाशवी सभ्यता में प्रवाह पतित होकर हरगिज नहीं बहेगा। वह अपनी अनुभव परंपरा के सहारे, मानवीय मूल्यों को आधार बनाकर आधुनिक आविष्कारों का पूरा लाभ उठाते हुए अपने राष्ट्र-जीवन की ऐसी नवरचना करेगा, जो विश्व के अन्य देशों के लिए भी अनुकरणीय बन सके।''

महात्मा गांधी ने 1909 में लिखी अपनी 'हिंद स्वराज' पुस्तिका में इस दिशा में अनोखे एवं व्यावहारिक विचार लिपिबद्ध कर दिए थे। अन्य कई नेतागण भी इस बात को अनुभव करते थे कि भारत की अपनी विशेष संस्कृति है, जो मानव मात्र के सर्वांगीण उत्थान का मार्ग प्रशस्त करती है। उसमें मानव की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक क्षमता विकसित करने का सामर्थ्य है। वह एकात्मता का संबल है। ग्राम्य-जीवन इसे बल पहुंचाता है। अतः ग्राम्य जीवन

ग्राम विश्व प्रकल्प का प्रारूप नवंबर1987 में तैयार किया गया। ग्राम विश्व के माध्यम से नानाजी ने समाज में बढ़ते शहरीकरण के बावजूद गांवों को उनके मूल रूप में ही रखने पर जोर दिया है, ताकि शासक मानव का शोषक नहीं बल्कि पोषक बना रहे, साथ ही भोगवादी मानसिकता पर अंकुश रहे।

को उन्नत करने में ही भारत एवं मानव मात्र का उज्ज्वल भविष्य समाया हुआ है।

अंग्रेजों ने अपने शासन-काल में ब्रिटेन में स्थापित विशाल कारखानों के हित में भारत के उन्नत ग्राम-शिल्प को अर्थात् ग्रामीण उद्योगों को जान-बूझकर ध्वस्त कर डाला। विशाल ग्रामीण आबादी को केवल सीमित कृषि के सहारे जीने के लिए मजबूर कर दिया। इस षड्यंत्र से ग्रामीण अंचल को मुक्त किए बिना भारत का भविष्य उज्ज्वल बनाना असंभव है। इसकी कल्पना तत्कालीन नेताओं को थी। इसी कारण उन्होंने साफ शब्दों में कहा था कि भारत का भविष्य ग्राम विकास में ही है, लेकिन स्वराज्य प्राप्ति के बाद सत्तारूढ़ नेतृत्व ने इन तथ्यों की भारी अवहेलना की। उन्होंने भोगवादी औद्योगिक सभ्यता को ही अपने देश के लिए श्रेयस्कर माना। विशालकाय कारखानों का देशव्यापी जाल फैलाने की योजनाएं बनाईं, जिससे ग्रामीण उद्योग सिकुड़ते गए। बेकारी बढ़ती गई। हरित क्रांति के बावजूद आधी से अधिक आबादी आज भी दो समय की सूखी रोटी के लिए मोहताज है। एक-तिहाई से अधिक ग्रामों में पीने के लिए शुद्ध पेयजल तक नहीं मिलता। स्वास्थ्य-सेवाओं का विस्तार करोड़ों देशवासियों को बीमारियों से बचाने में असमर्थ है। लाखों स्कूल खोले जाने के बावजूद दो-तिहाई जन समुदाय निरक्षरता के कलंक को धो नहीं पाया। करोड़ों नौजवानों के सशक्त हाथ काम चाहते हैं, लेकिन बेकार बने रहने को मजबूर हैं। गरीबी एवं बेरोजगारी के कारण गांव उजड़ रहे हैं। काम की तलाश में वहां से आए करोड़ों ग्रामवासी शहरों की गंदी बस्तियों में नारकीय जीवन बिता रहे हैं। इससे भी अधिक घातक प्रभाव डाला है हमारी राजनीतिक शैली ने।

राष्ट्र-निर्माण में सहभागिता

आजादी के लंबे संघर्ष में व्यापक स्तर पर आम लोगों को सहभागी बनाया गया था। इसी के परिणामस्वरूप विश्वव्यापी साम्राज्यवादी शक्ति से लोहा लेने में हम समर्थ हुए थे। किंतु आजादी मिलने के बाद उसी असीम लोक-शक्ति की घोर उपेक्षा की गई। सन् 1950 में हमने अपना संविधान स्वीकार कर बिना किसी भेदभाव के सभी बालिगों को भारत का भविष्य बनाने हेतु मताधिकार दिया। राष्ट्र-निर्माण में सभी लोगों को सहभागी बनाने का यह स्वर्णिम अवसर था। पर चुनावी राजनीति ने उस पर पानी फेर दिया। देश में ऐसा माहौल पैदा किया गया कि विकास का कार्य करने का पूरा दायित्व केवल सरकार का है। दुर्भाग्य से हर राजनीतिक दल ने चुनावों के दौरान लोगों से यही एक मांग की—''तुम हमें वोट भर दे दो, फिर तुम्हें कुछ करने की जरूरत नहीं। हमारी सरकार बनते ही तुम्हारे सब काम पूरे हो जाएंगे।'' परिणामस्वरूप जनता सरकारों पर पूर्णतः आश्रित होती चली गई। दूसरी ओर, चुनावी राजनीति की स्वार्थपरक उठा-पटक में निस्स्वार्थ सेवा के प्रेरणास्रोत सूखते गए। आजादी की लड़ाई में प्राणपण से जुटे लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, गोखले, सावरकर और उनके जैसे हजारों नेता तथा स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महर्षि अरविंद आदि सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूतों ने निस्स्वार्थ सेवा एवं समाज-सुधार के लिए जो प्रेरणा एवं अलख जगाई थी, स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद वह निस्तेज होती गई। चुनावी राजनीति ही सार-सर्वस्व बन गई। राष्ट्र

हित का स्थान दलीय स्वार्थ ने ले लिया। निस्स्वार्थ और सर्वमान्य व्यक्तियों का अभाव बढ़ता गया। फिर जनता को नव निर्माण में सहभागी बनाने की प्रेरणा मिले तो कहां से? यह एक ऐसा दुष्चक्र है, जिसे तोड़े बिना प्रगति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

खुशी की बात है कि इस चिंताजनक परिस्थिति में भी आशा और विश्वास का आधार कायम रखने का महत्त्वपूर्ण कार्य करनेवाले तपस्वी आज भी देश में मौजूद हैं। सब प्रकार के प्रतिकूल वातावरण में भी अनेक लोगों ने व्यक्तिशः तथा स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा सीमित दायरे में ही क्यों न हो, स्व पराक्रम एवं स्वावलंबन के आधार पर ग्रामीण अंचलों में विकास के अनुकरणीय नमूने खड़े किए हैं। उन्होंने कर दिखाया है कि समाज से कालबाह्य रूढ़ियां हटाई जा सकती हैं। छुआछूत का कलंक मिटाया जा सकता है। गंदी आदतों एवं व्यसनों को समूल नष्ट किया जा सकता है। सदाचार एवं ईमानदारी जनजीवन का स्वभाव बन सकती हैं। सबके सहयोग से सबकी समृद्धि अर्जित की जा सकती है। वैभव-प्रदर्शन एवं दहेज जैसी कुप्रथाएं मिटाई जा सकती हैं। परस्पर-पूरकता का सामाजिक जीवन हर आबादी में खड़ा किया जा सकता है। सबकी खेती में भरपूर फसल उगाई जा सकती है। नए-नए ग्रामोद्योग फिर से आरंभ किए जा सकते हैं। ग्रामीण जीवन स्वावलंबनपूर्ण एवं समृद्ध बन सकता है।

यद्यपि इस प्रकार के स्वयंसेवी प्रयास देश में अनेक स्थानों पर चल रहे हैं, किंतु प्रायः सभी एकाकी रूप में कार्यरत हैं। उनका कोई संगठित व्यासपीठ नहीं है, जहां एकत्रित होकर वे अपने अनुभवों का आदान-प्रदान कर सकें। सरकार ने भी अब अनुभव किया है कि स्वयंसेवी संस्थाओं के बिना विकास कार्यों में जन-सहभाग प्राप्त नहीं हो सकता। फलतः सातवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में इन स्वयंसेवी संस्थाओं का सक्रिय योगदान लेने की नीति अपनाई गई है। यह एक शुभ लक्षण है। पर सभी स्वयंसेवी प्रयासों को परस्पर-पूरक एवं अधिकाधिक सक्षम बनाए बिना कार्य में अपेक्षित गति प्राप्त नहीं की जा सकती। 'ग्राम-विश्व' इस क्षेत्र में कार्यरत कार्यकर्ताओं एवं संस्थाओं का सम्मिलित रूप है। ऐसी संस्थाओं तथा ग्राम-विकास के किसी भी क्षेत्र में तकनीकी प्राप्त अनुभवी लोगों को एक व्यासपीठ पर लाकर एक-दूसरे के अनुभवों से लाभान्वित करना। इन प्रयासों के लिए अपेक्षित सरकारी या गैर-सरकारी आर्थिक या तकनीकी सहायता उपलब्ध करा देना। अधिकाधिक लोगों को इस प्रकार के स्वयं कार्य करने की प्रेरणा देने के लिए एक प्रभावी अभियान का प्रारूप खड़ा करना 'ग्राम-विश्व' की आकांक्षा है। उसके संविधान में स्वीकृत उद्देश्य एवं कार्यक्रमों से उसके सम्यक् स्वरूप का परिचय सहजता से हो सकता है।

उद्देश्य

- सामाजिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए जाति, वंश, वर्ण एवं धर्म-निरपेक्ष एकात्म व्यवस्था विकसित करना।
- लोगों में ऐसी प्रवृत्ति या रुझान पैदा करना, जिससे ग्रामीण एवं शहरी जन परस्पर-पूरक जीवन जी सकें।

- 'परिवार' को समाज की आधारभूत इकाई के रूप में पुनर्स्थापित कर व्यक्ति एवं समाज को परस्पर-पूरक बनाना।
- वातावरण एवं पर्यावरण का संतुलन बनाए रखना।
- क्षेत्र-विशेष के अनुकूल 'तकनीकी' विकसित करना।
- ग्राम-विकास के कार्य में लगे व्यक्तियों एवं संगठनों से सजीव संपर्क स्थापित कर उन्हें परस्पर सहयोगी बनाना।
- युवा-शक्ति एवं व्यावसायिक जनों की संगठित शक्ति को राष्ट्रीय नव निर्माण में प्रयुक्त करना।

कार्यक्रम

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति हेतु 'ग्राम-विश्व' के निम्नांकित कार्यक्रम होंगे—

- व्यक्ति एवं संस्थाओं को सहभागी बनाकर 'स्वयंसेवी-आंदोलन' को सशक्त बनाना तथा उसे देश की हर आबादी में सक्रिय करना।
- विभिन्न निकायों की विशेषताओं को समझना तथा विभिन्न प्रकल्पों के लिए उनका समुचित उपयोग करना।
- उपयोगी जानकारी को स्वयंसेवी संस्थाओं तक पहुंचाना।
- कार्यशालाएं, परिसंवाद एवं प्रशिक्षण आदि कार्यक्रमों को नियमित रूप से आयोजित करना।
- नवीन क्षेत्रों के अध्ययन, अनुसंधान एवं विकास की विधियां विकसित करना।
- अपने-अपने प्रकल्पों की रचना एवं विकास में अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करना।
- सुयोग्य स्वयंसेवी संगठनों की सहायता से उनके चारों ओर फैले क्षेत्रों में स्वयंसेवी कार्यों का व्यापक विस्तार करना, जिससे ग्राम-विकास कार्यक्रमों को अधिक सुसंगठित, सबल व सुविस्तृत किया जा सके।
- विविध संस्थाओं के विषय में जानकारियां देना। ज्ञान विस्तार के लिए छपी हुई सामग्री प्रकाशित करना एवं दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'मंथन' एवं अभियांत्रिकी व ग्राम्य तकनीकी संस्थान, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित 'सरल टेक्नोलॉजी' जैसी पत्रिकाओं एवं उपर्युक्त विद्याओं से संबद्ध पत्र-पत्रिकाओं का समुचित उपयोग करना।
- ग्राम विकास के लिए समयानुसार आवश्यक कार्यक्रम अपनाना।

आह्वान

आज अपना देश एक चौराहे पर खड़ा है। पुरानी पीढ़ी निराश हो चली है। तो नई पीढ़ी दिग्भ्रमित है। स्वयंसेवी प्रयासों को सुदृढ़ कर एक व्यापक अभियान का रूप देना समय की आवश्यकता है। तभी देश को नई दिशा, नई गति एवं नई प्रेरणा मिल सकती है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए यह कार्य नितांत आवश्यक है। इस महान् राष्ट्रीय कार्य में 'ग्राम-विश्व' सभी के सहयोग का आह्वान करता है। □

विकेंद्रीकरण
देश की आत्मा में बसता है

पूर्वी यूरोप एवं स्वयं सोवियत संघ में जो कुछ हुआ है और हो रहा है, वह इस बात का साफ सबूत है कि केंद्रीयकरण, चाहे वह आर्थिक हो या राजकीय, वास्तव में मानव स्वभाव के प्रतिकूल है। वह न तो मानव की उन्नति कर सकता है और न ही स्वयं लंबे समय तक टिक सकता है। इन घटनाओं से यह भी सिद्ध होता है कि इनसान केवल रोटी, कपड़ा और मकान प्राप्ति से ही संतुष्ट नहीं रह पाता। वासना-तृप्ति तक ही उसका अस्तित्व सीमित नहीं है।

इसी तथ्य को भारत के स्वातंत्र्य संग्राम के दार्शनिकों एवं अग्रणी नेताओं ने मानवीय परंपरा के अध्ययन से अनुभव किया था और उसे स्पष्ट शब्दों में प्रकट भी किया था। उन्होंने घोषणा की थी—''हमारा-स्वातंत्र्य संग्राम केवल राजनीतिक नहीं है। वह मानवीय संस्कृति के अस्तित्व के लिए छिड़ा हुआ संघर्ष है। इसी पृष्ठभूमि के आधार पर गांधीजी ने विकास की प्रक्रिया के लिए ग्राम को केंद्र बनाकर नवनिर्माण करना अनिवार्य माना था। उनका कहना था कि इसी माध्यम से सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विकेंद्रीकरण संभव हो सकता है। इसके बिना मानव प्रतिभा की अनंत संभावनाओं का व्यावहारिक रूप निखर नहीं सकता।

लेकिन दुर्भाग्य है कि स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद गांधीजी का नेतृत्व हमें अधिक दिन उपलब्ध नहीं हो सका। शासनतंत्र एवं केंद्रीयकरण अधिकाधिक हावी होता गया। युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का कार्य हो या सांस्कृतिक उत्थान के प्रयास हो। आर्थिक नवरचना की विधियों को विकसित करना हो या शैक्षणिक अनुसंधान की दिशा में बढ़ना हो। सभी कुछ शासकीय माध्यम के अभिन्न अंग बन गए हैं। स्व-प्रेरणा मुरझा गई है। सब बातें सत्ता में केंद्रित हो गईं। महानगर विकास के केंद्र बने हैं। ग्रामों का अस्तित्व नगण्य बन गया है। आजादी के बयालीस साल बाद भी गांव अविकसित पड़े हैं। शहरीकरण बढ़ता जा रहा है।

लेकिन संतोष का विषय यह भी है कि आजादी के बाद चल पड़े सत्ताधिष्ठित केंद्रीयकरण के प्रबल प्रवाह से कुछ स्वातंत्र्य सैनिकों ने स्वयं को बचा लिया है। सब प्रकार के भौतिक आकर्षणों एवं सुख-सुविधाओं को ठुकराकर उन्होंने ग्रामों को ही अपना कार्यक्षेत्र बना लिया है। उन्होंने

ग्राम संगम प्रकल्प की परिकल्पना। नानाजी का स्पष्ट मत था कि केंद्रीकृत व्यवस्थाएं मानव स्वभाव के प्रतिकूल हैं, इसलिए उनका टिकना संभव नही है।
डीआरआई दस्तावेज, 1990

ग्रामीण विकास की साधना में अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया है। गांधीजी की ग्रामोत्थान एवं विकेंद्रीकरण की मशाल को जलाए रखा है। इसी कारण केंद्रीयकरण के दुष्परिणामों को देखकर कुछ उच्च उपाधियां प्राप्त प्रतिभाशाली युवक-युवतियों ने ग्राम-विकास की दिशा अपनाई है। वह ग्रामीण अंचल में जा बसे हैं। ग्राम-विकास कार्य के दीप-स्तंभ अपनी टिमटिमाती रोशनी से पथ-प्रदर्शक बनने की क्षमता रखते हैं।

विकास के मूलगामी प्रयास

समय की मांग है कि देश भर में फैले इन मूलगामी प्रयासों को सामूहिक-शक्ति के रूप में प्रकट किया जाए। स्वाभाविक एवं स्थायी विकास के मार्ग की महत्ता से आम लोगों को परिचित कराया जाए। जनता-जनार्दन को अनुभव कराया जाए कि देश का एक-एक नागरिक, अर्थात् हर एक महिला-पुरुष, राष्ट्र-नवनिर्माण में युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना, आर्थिक नवरचना तथा शैक्षणिक अनुसंधान की प्रक्रिया में सक्रिय योगदान की क्षमता रखता है।

ग्रामीण अंचल के निवासी निरक्षर भले ही हों, किंतु अशिक्षित नहीं हैं। वे मधुर वाणी में अपने विचारों की अभिव्यक्ति न कर पाते हों, किंतु वे प्रतिभाशून्य नहीं हैं। समाचार-पत्रों या दूरदर्शन में वे दिखाई न पड़ते हों, किंतु वे कम कर्तृत्वशाली नहीं हैं। मैले-कुचैले भले ही हों, किंतु कम प्रामाणिक नहीं हैं। रूप रंग से असभ्य से लगते हों, किंतु उनका हृदय कम संवेदनशील नहीं है। उनका हृदय, सोच और व्यवहार इनसानियत की उदात्त भावना से परिपूर्ण है। यदि उनका साथ रहा और विकास कार्यों में उन्हें सहयोगी बनाया गया। तो वह भारत के भविष्य निर्माताओं की श्रेणी में अग्रगण्य स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

इस वस्तुस्थिति को उजागर एवं प्रभावी बनाना इस काल की परम आवश्यकता है। बीसवीं सदी का यह अंतिम दशक बहुत महत्त्वपूर्ण है। केंद्रीयकरण के अभेद्य माने जानेवाले गढ़, जिन पर बीसवीं सदी के लोगों की आशा भरी नजरें गड़ी हुई थीं, काल की कसौटी पर अपने आप दृढ़ रहे हैं। इस कारण तथाकथित प्रगतिशील कहे जानेवालों के सामने, ''अब क्या होगा?'' यह प्रश्न मुंह बाए खड़ा है।

इस प्रश्न का उत्तर देने की क्षमता गांधीजी के दिशा-दर्शन में है। अर्थात् ग्राम विकास की विधियों में सन्निहित है। इस तथ्य की मान्यता संपूर्ण संसार द्वारा होगी। अब ऐसा समय काल आ गया है। ग्राम-विकास में संलग्न सभी संस्थाओं एवं व्यक्तियों को इस सुअवसर पर अपना परिस्थिति प्रदत्त दायित्व निभाने के लिए आगे आना होगा। उनकी तपस्या की फलश्रुति का मंगल प्रसंग उपस्थित हुआ है। इसी कारण इस क्षेत्र में सक्रिय अनेक लोगों ने मिलकर 'ग्राम-संगम' का आयोजन करने का पावन संकल्प किया है।

बीसवीं सदी का अंतिम दशक इक्कीसवीं सदी में प्रवेश की सिद्धता का काल है। इस काल के आरंभ में ग्रामीण विकास में संलग्न संस्थाएं एवं व्यक्ति एकत्रित होकर सामूहिक विचार-विनिमय करें। अपने ऐतिहासिक दायित्व को निभाने की योजनाएं बनाएं। अपने कार्य विस्तार के लिए उपलब्ध

अनुकूलताओं का लाभ उठाएं। संभावित बाधाओं का अनुमान लगाकर उनसे मुक्ति पाने का उपाय खोजें। आम लोगों का विश्वास एवं सक्रिय सहयोग पाने के लिए उपयुक्त कार्यक्रम आयोजित करें। केंद्रीयकरण का व्यावहारिक विकल्प (विकेंद्रीकरण) प्रस्तुत करने की चुनौती सार्वजनिक रूप से स्वीकार करें। राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में शासकीय आवश्यकता से लोकशक्ति की (स्वयंसेवी प्रयासों की) महत्ता कम नहीं है। यह अपने कर्तृत्व से सिद्ध करने के लिए आवश्यक रणनीति अपनाएं। प्रशासकीय तंत्र एवं लोकशक्ति की परस्पर-पूरकता की विधियां विकसित करना समय की आवश्यकता है। इसी से विकेंद्रीकरण एवं लोकतंत्र का स्वस्थ स्वरूप विकसित होगा। इसी विधि से न वर्तमान शहरों की उपयोगिता घटेगी, न ग्राम उपेक्षित या पिछड़े रहेंगे। इक्कीसवीं सदी में प्रवेश के लिए उपर्युक्त सिद्धता करना 'ग्राम-संगम' का मंतव्य है।

इस अभियान में स्वयंसेवी संस्थाओं, ग्राम-विकास या व्यक्तिगत प्रयासों का विलीनीकरण नहीं होगा। ऐसा करना हमारे लक्ष्य के प्रतिकूल है। वह केंद्रीकरण की दिशा है। सबके प्रयासों का अपना-अपना महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य है। विकास की भिन्न-भिन्न विधियां मुखरित करना विकेंद्रीकरण की आत्मा है। भारत जैसे विशाल एवं विविधताओं से संपन्न देश में सब जगहों के विकास का एक ही रूप में न हो सकता है और न होना चाहिए। 'ग्राम-संगम' सबकी विशेषताओं से विभूषित 'मिलन' मात्र है। नए युग के निर्माण का यह अभिनव अभियान है।

☐

खाद्यान्न आत्मनिर्भरता
कृषि से भारत का भाग्योदय

शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के एकात्म रूप को मानव कहा गया है। मन, बुद्धि तथा आत्मा मानव की विशेष निधि है। इस निधि का करिश्मा प्रगट करने के लिए मानव के पास एकमेव साधन है शरीर। शरीर के कर्तृत्व का आधार है अन्न। अन्न का स्रोत है कृषि। कृषि ऐसा अनोखा तत्त्व है, जिस पर मानव मात्र का जीवन एवं भविष्य निर्भर है। मानव-जीवन केवल उदर-भरण तक ही सीमित नहीं है। उसे कपड़ा, मकान तथा अन्य अनेक बातों की आवश्यकता होती है। उन सबकी पूर्ति करती है 'धरती'। बिना धरती की उपज के न कोई कारखाना चल सकता है, न मानव की आवश्यकताएं ही पूर्ण हो सकती हैं। इसी अनुभूति के फलस्वरूप अपनी सभ्यता ने 'धरती' को 'मां' स्वरूप माना है। कृतज्ञता की उदार भावना पर ही अपनी संस्कृति एवं सभ्यता आधारित है। यही मर्म है मानव की मानवीयता का, अर्थात् इनसानियत का। इस दृष्टि का अभाव ही मानव की क्षमताओं को विनाश की ओर बढ़ाता है।

प्रकृति का वरदान

भारत पर प्रकृति की विशेष कृपा है। अपने देश में सभी प्रकार की जलवायु विद्यमान है। ऊंचे-से-ऊंचे पर्वतों, छोटे-बड़े पहाड़ों, अखंड प्रवाहिनी नदियों, विभिन्न प्रकार के जल-स्रोतों, तरह-तरह के नालों, विशाल सरोवरों तथा कम-अधिक आकार के तालाबों का जाल देश भर में फैला हुआ है। आठ हजार किलोमीटर लंबा समुद्र किनारा हमारे पास है। नि:सर्ग ने हमें बहुमूल्य वन-संपदा प्रदान की है। मानवोपयोगी पशुओं की देश भर में भरमार है। विविध प्रकार की खनिज संपत्ति भारत के भूगर्भ में उपलब्ध है। सब प्रकार की कृषि-भूमि सभी अंचलों में व्याप्त है। अनेकानेक प्रकार की फसलों व फलों की बहारों का क्रम बारहों मास चलता रहता है। अनंत प्रकार के फूलों व उनके सुगंधों की सुलभता भारत की विशेषता है। तीनों ऋतुओं की हम पर कृपा है। अपरिमित सौर ऊर्जा और विपुल जन-शक्ति के हम धनी हैं।

चुनौती

इतने विविध एवं असीम संसाधनों की धरोहर हमारे पास होते हुए भी करोड़ों की संख्या

कृषि विज्ञान केंद्र की अवधारणा। डीआरआई दस्तावेज। तिथि: 22 अगस्त, 1993

में भारत की संतान गरीबी की असह्य यातनाएं भोगने के लिए मजबूर है। काम के अभाव में असंख्य युवक-युवतियां बेकारी की मार से पीड़ित हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति हमारी बुद्धिमत्ता, योजकता तथा पुरुषार्थ के लिए चुनौती है।

दीनदयालजी के चिंतन की दिशा

जिस महापुरुष की स्मृति चिरायु बनाने में दीनदयाल शोध संस्थान कार्यरत है, ऐसे पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने प्रथम पंचवार्षिक योजना के प्रारंभिक काल में ही जो विचार व्यक्त किए थे, वे 'कृषि विज्ञान-केंद्र' के लक्ष्य से एकरूप हैं। उन विचारों का यहां उल्लेख करना समीचीन होगा—

''ग्राम और वनांचलों में वास करनेवाले मैले-कुचले, अनपढ़ और असहाय लोग हमारे नारायण हैं। हमें इनकी पूजा करनी है। यह हमारा सामाजिक एवं मानव धर्म है। जिस दिन हम इनको अच्छे आवास बनवा देंगे, जिस दिन हम इनके बच्चों और स्त्रियों को शिक्षा तथा जीवन दर्शन की जानकारी करा देंगे, जिस दिन हम इनके पावों की बिवाइयों को भरेंगे और जिस दिन हम इनको उद्योग-धंधों की शिक्षा देंगे तथा इनकी आय को ऊंचा उठाकर उन्हें आत्मनिर्भर बना देंगे, उसी दिन उनके प्रति हमारा बंधुभाव व्यक्त होगा।

आर्थिक योजनाओं तथा आर्थिक प्रगति का माप, समाज की ऊपर की सीढ़ी पर पहुंचे व्यक्ति से नहीं, बल्कि सबसे नीचे की सीढ़ी पर विद्यमान व्यक्ति से होगा। ग्रामों में जहां समय अचल खड़ा है, जहां माता और पिता अपने बच्चों के भविष्य को बनाने में असमर्थ हैं, वहां जब तक हम आशा और पराक्रम का संदेश नहीं पहुंचा पाएंगे, तब तक राष्ट्र का चैतन्य जाग्रत् नहीं होगा।''

विश्व भर में धारणा बनी हुई है कि सामाजिक जीवन में निर्माण होने वाली समस्याओं का निराकरण तथा आम लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य राजनीतिक प्रणाली तथा शासनतंत्र के द्वारा ही संभव है। आजादी पाने के बाद भारत भी उसी मार्ग पर अग्रसर हुआ था। किंतु राष्ट्र नवनिर्माण के कार्यों में तथा सामाजिक उन्नति के प्रयासों में सर्वसाधारण नागरिकों में विशेषतः युवावर्ग में अपेक्षित रुचि तथा सक्रियता प्रगट नहीं हुई। अतः योजना आयोग ने ग्रामीण-विकास के कार्यों में व्यापक स्तर पर जनसहयोग पाने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को सहयोग पाने की नीति का अवलंबन किया है। उसी कारण कृषि विज्ञान-केंद्रों के संचालन में स्वयंसेवी संस्थाओं को वरीयता दी जा रही है।

वस्तुतः देश भर में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों तथा विशाल जनशक्ति का समागम संभव हुआ तो भारत संसार का सिरमौर राष्ट्र बन सकता है। यह कार्य संपन्न करना सामाजिक भावना से प्रेरित व्यक्तियों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए अधिक सरल है। कृषि विज्ञान-केंद्र की योजना को इस संभावना का माध्यम बनाकर हम अपना कर्तृत्व प्रगट कर राष्ट्र नवनिर्माण में उल्लेखनीय योगदान कर सकते हैं।

भारतीय कृषि की दुर्दशा

गत कुछ काल से हम बड़े गर्व से कह रहे हैं कि अपना देश खाद्यान्न के मामले में

आत्मनिर्भर हो गया है। किंतु क्या हम इस वस्तुस्थिति को समझ रहे हैं कि अपने देश की लगभग तीन चौथाई जनशक्ति कृषि कार्यों में खर्च होने के बावजूद देश की आय में कृषि क्षेत्र का योगदान केवल पचास प्रतिशत ही है? जितनी प्रतिशत जनशक्ति कृषि कार्य में संलग्न है, कम-से-कम उतनी प्रतिशत कृषि आय का योगदान राष्ट्रीय आय में होना चाहिए।

भारत में 76 प्रतिशत जोत वाले किसानों के पास केवल ढाई एकड़ या इससे कम ही कृषि भूमि है। सरकार इन्हें अलाभकर जोतवाले किसान मानती है। देश की समृद्धि बढ़ाने में इन अलाभकर जोतवाले किसानों का भी उपयोग कैसे किया जाए, यह सर्वाधिक विचारणीय विषय है। इसके लिए व्यावहारिक कदम उठाते समय हमें स्वर्गीय राजीव गांधी की स्वीकारोक्ति को ध्यान में रखना होगा—''हम विकास के कार्यों पर जो धन खर्च करते हैं, उसका केवल पंद्रह प्रतिशत ही जरूरतमंदों तक पहुंचता है।''

जिस हरित क्रांति की चर्चा हो रही है, उसका श्रेय कुछ ही इलाकों के बड़े-बड़े किसानों को ही है। इससे पंजाब, हरियाणा, पश्चिम उत्तर प्रदेश या महाराष्ट्र, आंध्र और तमिलनाडु के कुछ ही भाग आते हैं। इस हरितक्रांति का लाभ उन्हीं किसानों को मिल रहा है, जिनके पास पंपसेट्स ट्रैक्टर्स या अन्य कृषि यंत्र हैं। कृषि विज्ञान-केंद्रों के वैज्ञानिकों की सहायता के बिना ही वे आधुनिकतम कृषि सुधारों का लाभ उठाने में सर्वथा समर्थ हैं। वस्तुतः खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता भारत के संभाव्य कृषि उत्पादन की दृष्टि से विशेष उपलब्धि मानना कृषि की क्षमता की वास्तविकता को न समझना है।

कृषि विज्ञान-केंद्रों में कार्यरत वैज्ञानिकों ने किसानों को प्रेरित कर देश भर में फैले 76 प्रतिशत अलाभकर जोतों को लाभकर जोतों में परिवर्तित करने का करिश्मा कर दिखाया तो भारत कृषि उत्पादन में संसार भर में अपना कीर्तिमान प्रस्थापित कर सकता है। राष्ट्र नवनिर्माण में कृषि विज्ञान-केंद्रों का यह बहुत बड़ा योगदान होगा।

1921 के आंकड़ों के अनुसार अविभाजित भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या केवल दो करोड़ दस लाख थी, किंतु 1981 के आंकड़े बता रहे हैं कि यह संख्या ग्यारह करोड़ से भी अधिक बढ़ गई है। यह क्रम और तेजी से बढ़ रहा है। इसके निम्नांकित कारण हैं—

- जोतों का अबाधित गति से होनेवाला बंटवारा।
- परंपरागत ग्रामोद्योगों का निरंतर होनेवाला ह्रास।
- आबादी में अनियंत्रित वृद्धि।

उपर्युक्त कारण अप्रत्याशित नहीं है। मानव विकास की प्रक्रिया में यह होना अवश्यंभावी था। इस मामले में समय से आवश्यक उपाय योजना का अभाव ही इन कारणों की जड़ में है। इस उपेक्षा के दुष्परिणाम हैं -

- भूमि के अधिकार की लालसा होते हुए भी कृषि क्षमता के प्रति बढ़नेवाली अनास्था।
- ग्रामीण नौजवानों का शहरों के प्रति आकर्षण, शहरों में गंदी बस्तियों का बेहिसाब विस्तार

तथा नई पीढ़ी का अपराधीकरण के जाल में फंसना।

- फसलों की बोआई और कटाई के दिनों में आवश्यक मानवशक्ति का अभाव।

कृषि क्षेत्र की क्षमता

उपर्युक्त समस्याओं के निराकरण की उपाय योजना के पूर्व देश के कृषि की संभाव्य क्षमता जान लेना उपयुक्त होगा। बेकाबू हो रही गरीबी और बेकारी से सभी परेशान हैं। इस संबंध में अभी तक हुए सभी उपाय अपेक्षित सफलता पाने में असमर्थ रहे हैं। कारण, हमारी प्राथमिकताएं उपलब्ध संसाधनों पर आधारित नहीं हैं।

वस्तुतः कृषि, केवल खाद्यान्न में आत्मनिर्भर बनने का माध्यम ही नहीं, गरीबी एवं बेकारी के समूल निराकरण तथा देश को समृद्धि प्राप्त करा देनेवाला सर्वाधिक सबल और स्थायी साधन हो सकता है। इसके पर्याप्त आधार हैं—

- हिंदुस्थान की अधिकांश आबादी कृषिजनित प्रतिभा से संपन्न है।
- देश में कृषि वैज्ञानिकों तथा तकनीकी विशारदों की पर्याप्त संख्या है।
- कृषि के लिए सभी प्रकार की भूमि उपलब्ध है।
- अन्य देशों की तुलना में अपने पास सिंचित भूमि कम नहीं है। चीन के पास बारह करोड़ एकड़ के लगभग सिंचित भूमि है, जबकि अपने पास पंद्रह करोड़ एकड़ सिंचित भूमि है तथा सिंचित क्षेत्र को और अधिक बढ़ाने की क्षमता बाकी है।
- साल में दो फसलें उगा पाने की क्षमता भारत के लगभग सभी अंचलों में विद्यमान है।
- भारत में शीत कटिबंध, समशीतोष्ण कटिबंध तथा उष्ण कटिबंध से युक्त तीनों प्रकार की जलवायु मौजूद है।
- कृषि के लिए आवश्यक सौर ऊर्जा जितनी मात्रा में हमें उपलब्ध है, उतनी कम ही देशों को नसीब है।

इन उपलब्धियों को आधार बनाकर देश की आर्थिक विकास की रचना की गई तो गरीबी और बेकारी का उन्मूलन होने के साथ ही देशी और विदेशी कर्जों का असह्य बोझ उतारा जा सकेगा तथा देश समृद्धि की दिशा में तेजी से बढ़ सकेगा।

वास्तविक स्थिति

संसार के किसी भी अन्य देश में अपने यहां के समान विभिन्न प्रकार की साग-सब्जियां तथा फलों का उत्पादन नहीं होता। फलोत्पादन की दृष्टि से ब्राजील और अमेरिका के बाद भारत का ही नंबर आता है, लेकिन हम उसका संभव लाभ नहीं उठाते। अपने फलों के उत्पादन में से हम केवल 0.5 प्रतिशत फलों का ही परिरक्षण कर पा रहे हैं, किंतु ब्राजील अपने फलों के उत्पादन के 70 प्रतिशत फलों का परिरक्षण कर विश्व बाजार में धनार्जन कर रहा है। परि-रक्षण तथा उसे दुनिया के बाजार में बेचने की व्यवस्था के अभाव में हमारे तीन हजार करोड़

रुपयों के फल तथा साग-सब्जी प्रतिवर्ष सड़कर बरबाद होते हैं। फलस्वरूप फलों एवं साग-सब्जियों के क्षेत्र का संभव विस्तार अवरुद्ध हुआ है।

नीदरलैंड एक छोटा सा देश है। उसके पास भारत के एक शतांश भाग के बराबर भूमि है, किंतु वह संसार के बाजार में बिकनेवाले 64 प्रतिशत कट-फ्लावर्स, 43 प्रतिशत टमाटर तथा 36 प्रतिशत आलू का प्रतिवर्ष उत्पादन कर दुनिया भर से धन कमा रहा है।

ऐसे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। इनका संक्षेप में उल्लेख करने का हेतु इतना ही है कि हम अपनी आर्थिक समृद्धि, देश में उपलब्ध मानव एवं प्राकृतिक संसाधनों पर ही खड़ी करें, न कि विदेशों में हुए विकास माध्यमों पर आधारित। हमें अपनी तकनीकी की विविधता एवं उनका स्वरूप अपनी आवश्यकताओं के अनुसार ही विकसित करना होगा। उसके लिए संसार में विकसित विज्ञान और तकनीकी का पूरा लाभ उठाया जा सकता है। तभी अपना देश और समाज स्वाधीनता का अर्थात् आत्मनिर्भरता का लक्ष्य सिद्ध कर सकेगा। इसी से हम अन्य देशों के लिए भी पूरक बन सकेंगे।

अपने देश में भी अनुकरणीय और विस्तार योग्य कार्य हो रहे हैं। तमिलनाडु प्रदेश के चंगलपट्टू स्थान पर सत्तर एकड़ का एक विशाल तालाब है। उसमें प्रति एकड़ 60 टन मछली का उत्पादन करना संभव हुआ है, किंतु पूरे भारत में मछली का प्रति एकड़ औसत उत्पादन केवल दो टन ही है। उसी प्रकार मद्रास के निकट के एक फार्म में टमाटर का प्रति एकड़ उत्पादन 40 टन संभव हुआ है, जबकि देश का टमाटर का औसत उत्पादन प्रति एकड़ केवल पांच टन ही है (सर्वे आफ इंडियन एग्रीकल्चर 1992, मद्रास)। इन उपलब्ध विधियों को गांव-गांव में सुलभ कराने का काम कृषि विज्ञान-केंद्रों को करना होगा।

किसान की आत्मनिर्भरता

वर्तमान काल में संचार माध्यमों की प्रगति विस्मयकारक हुई है। दूरदर्शन की सुविधा ने सुदूरता की कठिनाइयों को दूर किया है। इसके अनेक लाभ हैं। किंतु हर एक अच्छाई की सीमा का अवधान न रखा गया तो असीम हानि की संभावना हो सकती है।

कृषि विकास के क्षेत्र में, विशेषतः भारत में, इस दृष्टि से सजगता आवश्यक है। साधारणतः किसानों को अपनी दैनंदिन जीवन की आवश्यकता पूर्ति के लिए दूरस्थ वस्तुओं पर निर्भर रहना न पड़े, इसका विशेष ध्यान रखना होगा। कारण—

- कृषि कार्य में समय की सीमा सर्वाधिक महत्त्व रखती है।
- खेत और किसान सुदूर ग्रामों में फैले हुए हैं।
- ग्रामों में यातायात की सुविधाएं नगण्य हैं।
- किसान ही समाज का एकमेव घटक है, जो सर्वाधिक स्वाधीन बना रह सकता है। इसी कारण वह लोकतंत्र की रीढ़ है। उसे अधिकांश बातों में आत्मनिर्भर बनाए रखना सभी दृष्टियों से आवश्यक है।

धरती मानव जीवन का स्थायी आधार है। उससे पीढ़ी-दर-पीढ़ी समाज लाभान्वित होता रहे—इसका ध्यान रखना नितांत आवश्यक है। कृषि उन्नति के प्रयास इस बात को ध्यान में रखकर किए जाने चाहिए। भूमि से अधिकतम उत्पादन के लालच में ऐसे-ऐसे उपाय अपनाए जा रहे हैं, जो तात्कालिक लाभ अवश्य पहुंचाते हैं, किंतु उनके दूरगामी परिणाम घातक सिद्ध हो रहे हैं। उनसे जहां भूमि की मूलभूत उपजाऊ शक्ति का शनैः-शनैः ह्रास हो रहा है, वहां किसानों की आत्मनिर्भरता घटती जा रही है।

किसानों की आवश्यकताएं

- खेत जोतने के साधन।
- खाद की उपलब्धता।
- समय से अच्छे बीजों की सुविधा तथा
- सिंचाई का प्रबंध।

■ इस सदी में उत्तरोत्तर यांत्रिक कृषि का तेजी से विस्तार हो रहा है। इन यंत्रों का खाद्य है डीजल तेल। भूगर्भ में डीजल के भंडार सीमित हैं। इस ऊर्जा का पुनरोत्पादन संभव नहीं होता। इस सीमित ऊर्जा के लिए भी हमें भारी मात्रा में विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है। डीजल के अभाव में किसानों को अनेक बार बहुत परेशानी उठानी पड़ती है। डीजल का अभाव भ्रष्टाचार बढ़ाने में भी सहायक होता है। कृषि उत्पादन का खर्च बढ़ता है, किंतु तदनुसार किसानों को कृषि उत्पादन की कीमत प्राप्त नहीं होती। परिणामस्वरूप कृषि उन्नति के लिए आवश्यक लागत का अभाव होता है। डीजल के जलने से ग्रामीण-अंचल में भी प्रदूषण बढ़ता है। प्राकृतिक पर्यावरण बिगड़ता है।

भारत में खेती बैलों के द्वारा हुआ करती थी। बैलों का खाद्य, उत्पादित फसल का वह भाग होता है, जो मानव के लिए अखाद्य है। यह विधि परस्परपूरक हुआ करती थी।

इसके अतिरिक्त बैलों के गोबर और मूत्र से ऐसा जैविक खाद उपलब्ध होता था, जो भूमि की उपजाऊ शक्ति को कायम रखता था। खाद के लिए न धन खर्च करना पड़ता था, न दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था। बैलों के लिए किसान स्वाभाविकतः गायें पालता था। इस कारण बैलों के साथ-साथ दूध मिलता था। ग्रामीण-अंचल में कुपोषण की समस्या नहीं थी। कृषि कार्य के साथ बैल यातायात का भी काम करते थे। आज भी देश के यातायात का पचास प्रतिशत कार्य बैल ही निभा रहे हैं। किसान सब दृष्टियों से आत्मनिर्भर था। प्रदूषण की समस्या नहीं थी। भारत में अनंतकाल से कृषि-कार्य होते हुए भी भूमि की उपजाऊ शक्ति में तनिक भी ह्रास नहीं हुआ था।

■ रासायनिक खाद का प्रचलन सर्वव्यापी बन गया है। इस खाद का निर्माण विशालकाय कारखानों में हो रहा है। करोड़ों रुपयों की लागत से रासायनिक खाद के नए कारखाने खोलने की योजना है। किसानों को खाद के लिए इन दूरस्थ कारखानों पर निर्भर रहना पड़ रहा है।

इस खाद से प्रारंभिक काल में उत्पादन अवश्य बढ़ता है, किंतु कुछ काल के बाद इस खाद

के प्रयोग से शनैः-शनैः खेतों की उपजाऊ शक्ति घटने लगती है। फसलों में रोगों का प्रादुर्भाव होने लगता है। कीटनाशक दवाओं का प्रयोग अनिवार्य हो जाता है। इन दवाओं से जमीन में प्राकृतिक रूप में उपलब्ध पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इतना ही नहीं, रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाओं के प्रयोगों से उत्पन्न अन्न या साग-सब्जियां तथा फल मानव के स्वस्थ जीवन के लिए हानिकर सिद्ध हो रहे हैं। अतः रासायनिक खाद के उपयोग पर पुनर्विचार करना अति आवश्यक है।

■ समय से अच्छे बीज पाना भी किसानों के लिए समस्या बन गई है। छोटे किसानों के लिए यह समस्या अधिक गंभीर हो गई है। विभिन्न कृषि विश्वविद्यालय हर धान्य के अनेक प्रकार के अच्छे बीज तैयार कर रहे हैं, किंतु ये उन्नत बीज समय से ग्राम-ग्राम में सभी किसानों तक पहुंच नहीं पाते।

देश के हर जिले की कृषि-भूमि भिन्न-भिन्न प्रकार की है। जलवायु में भी अंतर है। अतः हर जिले में उपलब्ध परिस्थिति के अनुसार इन उन्नत बीजों का चयन करने की सुलभ-विधि काम में लाना आवश्यक है।

हर एक कृषि विज्ञान-केंद्र उपर्युक्त आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है। कृषि विज्ञान-केंद्र अपने केंद्र की भूमि पर नौ फिट चौड़ी तथा अठारह फिट लंबी अनेक क्यारियां बना लें। जिले में कौन-कौन सी परंपरागत फसलें प्रमुख रूप से उगाई जा रही हैं, यह समझ लें। कौन-कौन सी नई फसलें उगाना संभव है, इस बात को भी जान लें। इन दोनों प्रकार की फसलों के जितने प्रकार के उन्नत बीज उपलब्ध हैं, उन्हें इन छोटी-छोटी अलग-अलग क्यारियों में बो दें।

इन बीजों से फसल कितने दिनों में तैयार होती है, इस भूमि एवं जलवायु में कौन से बीजों में कम-से-कम रोग लगते हैं, कौन से बीज से अधिकतम उत्पादन संभव है, आदि का लिखित विवरण तैयार करें। यह कार्य जिले के किसानों के लिए केवल बीजों के उपयुक्त चयन करने तक ही सीमित नहीं रहेगा। इन क्यारियों में फसल की बोआई, खाद, पानी, निराई—गुड़ाई आदि की दृष्टियों से भी किसानों को प्रशिक्षण मिलेगा। इस प्रक्रिया का अगला कदम है—हर दस-बीस ग्रामों के मध्य में चार-पांच किसानों को, जिनके पास आठ-दस एकड़ कृषि भूमि है, चयनित बीजों का बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित करना। इसी से जिले के छोटे-बड़े सभी किसानों को उन्नत बीज समय से सुलभ होने लगेगा। कृषि विश्वविद्यालयों में होनेवाला अनुसंधान फलदायी होगा। वस्तुतः यह विधि 'लैब टू लैंड' का व्यावहारिक कदम सिद्ध होगी।

■ देश में दो-तिहाई भूमि (कृषि क्षेत्र) असिंचित है। इस क्षेत्र के किसानों को सर्वथा वर्षा के भरोसे खेती करनी पड़ती है। ऐसे क्षेत्रों के किसानों को वर्षा के जल का संग्रह करने की संभव विधियां अपनाने के लिए प्रेरित करना आवश्यक हो गया है। उपलब्ध जल का किफायत के साथ उपयोग करने के उपाय भी खोजने चाहिए। इस दिशा में कृषि वैज्ञानिकों को चाहिए कि वे स्थानीय लोगों के सहयोग से नए-नए प्रयोग करने की प्रक्रिया प्रारंभ करें। वस्तुतः सिंचाई की दृष्टि से भी किसानों को जितनी मात्रा में आत्मनिर्भर बनाना संभव हो, उतना ही लाभकारी होगा।

जोत को लाभकर बनाना

अपने देश में 76 प्रतिशत जोतें अलाभकर हैं। इन जोतों के स्वामियों के पास ढाई एकड़ या इससे भी कम कृषि भूमि है। इन अलाभकर जोतों को लाभकर बनाए बिना भारत से न गरीबी का उन्मूलन होगा, न बेकारी का अभिशाप मिटेगा। अतः प्रत्येक कृषि विज्ञान-केंद्र अपनी कृषि भूमि पर ढाई-ढाई एकड़ के दो भू-खंड तैयार कर लें। इनमें से प्रत्येक में एक परिवार के लिए साल भर का अनाज पैदा करने के अतिरिक्त पांच हजार रुपयों की प्राप्ति के लिए नकदी फसल (कैश क्रॉप) उगाएं। दो भू-खंड की व्यवस्था इसके लिए आवश्यक है कि दोनों में अलग-अलग प्रकार की नकदी फसलें उगाकर देखने का प्रयोग किया जा सके। यह काम अलाभकर जोतवाले किसानों के लिए प्रेरणा व प्रशिक्षण पाने का कार्य करेगा। इसी से एक-डेढ़ या दो एकड़ के किसान भी लाभान्वित होंगे। ग्रामीण-अंचल से भी गरीबी भगाने का वातावरण पनपता जाएगा। देश के कृषि उत्पादन में वृद्धि होगी। खेती के प्रति ग्रामीण युवकों में आकर्षण बढ़ेगा। शहरों की ओर हो रही दौड़ में कमी आने लगेगी। बेकारी दूर करने का यह एक प्रभावी माध्यम विकसित होगा।

जोतों के निरंतर बंटवारे से मुक्ति

हर परिवार में बंटवारा होना एक अनिवार्य प्रक्रिया है। ग्रामीण-अंचल में अधिकांश परिवारों के पास खेती के अतिरिक्त अन्य जायदाद नहीं होती। परिणामस्वरूप जोत छोटे और अलाभकर बनते जाने की प्रक्रिया अबाधित गति से चलती आ रही है। इसे रोका न गया तो कृषि उन्नति तथा ग्राम विकास का अपेक्षित कार्य संभव नहीं होगा। पांच एकड़ की जोत एक बंटवारे से हानि नहीं है, किंतु पांच एकड़ से कृषि भूमि के जोतों का आकार छोटा न होने पाए, इसका प्रबंध करना आवश्यक है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए आम ग्रामवासियों की मानसिकता अनुकूल बनानी होगी। उसके बिना कानून बना देने मात्र से लाभ नहीं होगा। कानून के द्वारा कृषि सुधारों में कितनी सफलता मिली? जोत की हदबंदी का नतीजा क्या हुआ? कानून के शिकंजे से बचने के अनेक उपाय रचे जाते हैं। अनैतिकता तथा भ्रष्टाचार फैलता है। अतः उपर्युक्त कार्यसिद्धि के लिए कृषि वैज्ञानिकों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ताओं को मिलकर जनमानस अनुकूल बनाने का कार्य संपन्न करना होगा। परिणामस्वरूप बिना कानून के भी जोत का बंटवारा पांच एकड़ के बाद न होने की प्रथा प्रचलित करने की संभावना हो सकती है।

पश्चिम का अंधानुकरण नहीं हो

समृद्धिपूर्ण पश्चिमी देशों में कृषि कार्य तुलनात्मक रूप से अधिक अनुभवपूर्ण नहीं है। विश्व भर का प्राकृतिक जगत् मानव के उपभोग के लिए ही निर्मित है तथा उपभोग ही मानव का जीवन दर्शन है —यह उनकी जीवन दृष्टि है। अतः उपभोग ही उनका जीवन कार्य बना है। सभी प्राकृतिक संसाधनों का अधिकतम शोषण करने में ही उनकी संपूर्ण शक्ति, बुद्धि एवं समय काम में आता है। इसी दिशा में उन्होंने अपनी वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति की है। इसी आधार पर वे

आश्चर्यजनक समृद्धि के स्वामी बने हैं। सीमित समय तक उपर्युक्त दृष्टिकोण फलदायी सिद्ध हुआ है। किंतु दो-ढाई सौ साल के अल्पकाल में ही उसके दुष्परिणाम प्रगट होने लगे हैं। अतः उनकी प्रगति के उपकरणों को सोच-समझकर ही अपनाया जाना चाहिए। अन्यथा ऐसा अनर्थ होगा, जिसका सुधार करना कठिन हो सकता है, विशेषतः कृषि उन्नति के कार्यों में।

गो-संवर्धन

गो-पालन भारतीय जीवन परंपरा की विशेषता रही है। इसका मर्म विस्मृत होने के कारण गो-पालन की दिशा ही बदल गई है। इसके दुष्परिणाम कृषि कार्य को तथा ग्रामवासियों को भुगतने पड़ रहे हैं। इस विश्व में परस्पर-पूरकता की प्राकृतिक प्रक्रिया स्थायी रूप से कार्यरत है। इसी प्राकृतिक तत्त्व पर भारतीय जीवन रचना खड़ी थी। परस्पर-पूरकता की जीवन-दृष्टि, किसी अन्य का शोषण (exploitation) करने की भोग प्रवण प्रवृत्ति पर अंकुश लगाती है। वह एक-दूसरे का हित साधन करने की प्रेरणा प्रदान करती है। भारतीय कृषि पद्धति इसी सिद्धांत पर विकसित हुई थी। अनंतकाल से भारत में कृषि कार्य विशाल स्तर पर निरंतर होता आ रहा है। इसके बावजूद भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम है। इस विशेषता के मूल में गो-पालन तथा गो-वंश की सहायता से कृषि कार्य पद्धति ही है। गाय के प्रति प्रचलित मातृत्व की भावना मानव सुलभ कृतज्ञता की परिचायक है, न कि अंधश्रद्धायुक्त पूजा विधि का एक अंग।

हाईब्रीड बीज

प्रथमतः बंगलौर में इंडो-अमेरिकन कंपनी ने बड़ी पूंजी लगाकर हाईब्रीड बीज उत्पादन का उद्योग प्रारंभ किया। अब औरंगाबाद, जालना तथा अन्य कुछ स्थानों में हाईब्रीड बीज उत्पादन के उद्योग चल पड़े हैं। यह बीज काफी महंगा बिकता है। अतः ये कंपनियां काफी नफा कमा रही हैं। अच्छा धन कमाने का रहस्य यह बीज तैयार करने की विधि में छिपा हुआ है। किसान अधिक उत्पादन के लालच में यह बहुत महंगा बीज प्रति किलो हजार रुपयों से अधिक दाम देकर खरीदता है। उससे प्रति एकड़ उत्पादन बढ़ता है, किंतु इस बीज से जो धान्य पैदा होता है, वह बीज के काम नहीं आता। किसान को यह बीज हमेशा कंपनी से ही खरीदना पड़ता है। इस बीज का उपयोग कुछ ही बड़े किसान करते हैं, जो पहले से ही मालामाल हैं। छोटे और सीमांत किसानों के पास इतनी पूंजी नहीं रहती। अतः वे हाईब्रीड बीज खरीद नहीं पाते। इस बीज के दूरगामी परिणामों के संबंध में अभी कुछ कहा नहीं जा सकता, किंतु यह पद्धति विकेंद्रित व्यवस्था के प्रतिकूल एवं विषमतामूलक है।

मत्स्य पालन

भारतीय जीवन में मछली की महत्ता अति प्राचीन युग से स्वीकार्य है। साथ ही भोज्य पदार्थ की दृष्टि से भी उसका उपयोग अनंत काल से प्रचलित है। अपने देश में मछली की उपलब्धि तीन

प्रकार से होती है—नदियों से, तालाबों से तथा समुद्र से। इन्हें दो भागों में बांटा गया है—खारे पानी में पाई जानेवाली (समुद्र में पायी जानेवाली) तथा मीठे पानी में पाई जानेवाली (नदी या तालाब से मिलनेवाली) मछलियां। अपने देश में नदी-नालों एवं तालाबों की कमी नहीं है। आठ हजार किलोमीटर समुद्र किनारा भी अपने पास है।

अपने देश में मछुआरा नाम से एक जाति ही है। उनका परंपरागत धंधा ही है मछलियों को पकड़ना तथा बेचना। मछली पालने का काम भी उससे जुड़ा हुआ है। इस उद्योग में बड़ी संख्या में लोग लगे हुए हैं। इस उद्योग की संभावनाओं को जानकर प्रशिक्षण की व्यवस्था एवं विस्तार का कार्य किया तो इस उद्योग को बढ़ाने की बहुत बड़ी गुंजाइश है। गरीबी एवं बेकारी दूर करने में यह उद्योग पर्याप्त सहायक हो सकता है। कृषि विज्ञान-केंद्र इस दिशा में बहुत कुछ कर सकते हैं।

मधुमक्खी पालन

मधुमक्खी पालन एवं कृषि कार्य परस्पर-पूरक कार्य है। खेती की लगभग सभी फसलों में फूल लगते हैं। फूलों को किसी प्रकार की हानि पहुंचाए बिना मधुमक्खियां अपना खाद्य प्राप्त करती हैं। इतना ही नहीं, नर तथा मादा पौधों के फूलों पर मधुमक्खियों का अदल-बदल कर बैठना फसल का उत्पादन बढ़ाने में सहायक होता है। खोज से ज्ञात हुआ है कि जो किसान अपने खेत में मधुमक्खियां पालता है, उसके खेत का उत्पादन दस प्रतिशत बढ़ता है।

मधुमक्खियां पालने की सुविधाजनक विधि भी प्रचलित हुई है। मधुमक्खियां पालने के लिए सुविधाजनक बक्से बनाए गए हैं। खेती के उत्पादन के साथ ही किसान को शुद्ध मधु बेचकर अतिरिक्त आय प्राप्त हो सकती है। मधु बेचने के लिए बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है। कृषि विज्ञान-केंद्र इस कार्यक्रम के द्वारा जहां कृषि उत्पादन को बढ़ा सकते हैं, वहां किसानों की आर्थिक आय में वृद्धि करवा सकते हैं।

रेशम कीट पालन

कृषि कार्य के साथ-साथ रेशम कीट पालन का कार्य मेल खाता है। रेशम के कीड़े पालने के लिए तूति के पत्ते चाहिए। तूति के पौधे खेत के मेंड़ों पर बेकार पड़ी जमीन पर उगाए जा सकते हैं। नकदी फसल (कैश क्रॉप) के रूप में इसकी खेती भी धनार्जन की दृष्टि से लाभदायी है। सरकार तथा खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा इस उद्योग के लिए आर्थिक सहायता की भी व्यवस्था उपलब्ध है। हर एक कृषि विज्ञान-केंद्र इसका लाभ उठाकर अपने क्षेत्र से गरीबी दूर करने के साधन के रूप में इसे प्रचलित कर सकता है।

साग-सब्जी उत्पादन

भारत में साग-सब्जियां उगाने के कार्य के विस्तार की बहुत गुंजाइश है। अपने देश में जितनी

प्रकार की सब्जियां पैदा होती हैं, इतनी विविधता शायद ही किसी अन्य देश में संभव हो। साग-सब्जियों में जीवनावश्यक तत्त्वों की उपलब्धता लोगों के ध्यान में आ रही है। अतः साग-सब्जियों का महत्त्व बढ़ता जा रहा है। उनके परिरक्षण की नई-नई विधियां भी आविष्कारित हुई हैं। साग-सब्जियों के लिए देश-विदेश में बाजार बढ़ रहा है। गरीबी एवं बेकारी दूर करने के लिए इस कार्य को पर्याप्त मात्रा में बढ़ाया जा सकता है।

अभी अपने देश में प्रतिवर्ष चार करोड़ अस्सी लाख टन सब्जियों का उत्पादन हो रहा है। औसत हिसाब लगाया जाए तो अपने यहां प्रति व्यक्ति केवल 135 ग्राम ही सब्जी उपलब्ध है, जबकि स्वास्थ्य की दृष्टि से कम-से-कम 285 ग्राम सब्जी प्रति व्यक्ति उपलब्ध होनी चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि अपने देश में ही सब्जी की मांग की आवश्यक पूर्ति करने में काफी गुंजाइश है। विदेशों में भी भारत की सब्जियों के लिए बाजार उपलब्ध है। कृषि विज्ञान-केंद्र अपने गृह विज्ञान के वैज्ञानिक द्वारा सब्जियों के परिरक्षण का कार्य बढ़ाएं तो देहात की महिलाओं की अतिरिक्त आय बढ़ाने का यह एक प्रभावी साधन बन सकता है। सब्जियों का उगाना भी नकद फसल (कैश क्रॉप) के रूप में अपनाकर हर किसान अपनी आय बढ़ा सकता है।

मसाले की खेती

मसालों के उत्पादन के विषय में भारत संसार का सिरमौर रहा है, किंतु इस कार्य की महत्ता का अनुमान लगाकर जो प्रबंध करना चाहिए, वह न होने से विश्व बाजार में हम अपना स्थान खोते जा रहे हैं। अभी भी भारत मसालों के उत्पादन में सर्वप्रथम है, लेकिन हमारा सालाना जो 20 लाख टन का उत्पादन है, उसमें से अधिकांश मसाले हम अपने ही उपयोग में लाते हैं। उसमें से केवल एक लाख तीस हजार टन मसाले हम निर्यात कर पा रहे हैं, जबकि विश्व बाजार की मांग बहुत अधिक है।

मसालों के उत्पादन में आवश्यक ध्यान न दिए जाने के दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। अनुकूलता होने के बावजूद अपने देश में काली मिर्च प्रति हेक्टेयर 290 किलो पैदा होती है, जबकि छोटा सा मलेशिया प्रयत्नपूर्वक प्रति हेक्टेयर उत्पादन 2900 किलो तक बढ़ा चुका है। छोटी इलायची के उत्पादन में भारत का एकाधिकार था। लेकिन अब ग्वाटेमाला जैसा देश छोटी इलायची के उत्पादन में हमारा प्रतिस्पर्धी बनने की दिशा में अग्रसर हो रहा है।

मसालों के उत्पादन को महत्त्व देकर हमने प्रयास किया तो यह नकद फसल (कैश क्रॉप) के नाते ग्रामीण अंचल की गरीबी एवं बेकारी मिटाने में काफी मात्रा में सहायक हो सकता है। कृषि विज्ञान-केंद्रों को इस दिशा में काम करने की बहुत गुंजाइश है।

फलोद्यान

भारत में कश्मीर से लेकर केरल तक तथा मणिपुर से लेकर कच्छ तक अनेक प्रकार के फलों का उत्पादन होता है। इन फलों में से बहुत से तो जंगली हैं तथा अनेक फल फसल के रूप में बागों

में उगाए जाते हैं। भारत की यह विशेषता है कि हर मौसम में कोई न कोई फल उपलब्ध होते हैं। भारत की इन प्राकृतिक विशेषता को आवश्यक मात्रा में विकसित करने के प्रयास बहुत कम हुए हैं। फलों के परिरक्षण की दृष्टि से भी उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। इसके कारण भारत में उपलब्ध फलों की बहुतायत का देश की समृद्धि बढ़ाने की दृष्टि से संभाव्य लाभ उठाया नहीं गया है। इस दिशा में कृषि विज्ञान-केंद्रों के लिए काफी कार्य करने के लिए मैदान खाली पड़ा है।

फलोत्पादन की विधियों की दृष्टि से भी अनेक प्रयोग करने की आवश्यकता है। नारियल या काजू के पेड़ समुद्र के किनारों पर ही उगाए जा सकते हैं, यह धारणा समाप्त हो गई है। उसी प्रकार नाशपाती आदि हिमालय की ऊंचाई पर ही होती हैं, यह धारणा भी बदल गई है। नारियल, काजू, नाशपाती अब देश के अनेक भागों में सफलता के साथ उगाए जा रहे हैं। जैसे-जैसे आबादी बढ़ रही है, भूमि का उत्पादन कम पड़ रहा है। कारण, आबादी के समान भूमि का विस्तार नहीं होता। भूमि जितनी है, उतनी ही बनी रहती है। आवश्यक ध्यान न दिया तो उसका क्षरण अवश्य होता है। अतः फलोत्पादन की परंपरागत पद्धति में परिवर्तन करना आवश्यक है। फलों के बगीचे लगाने के बाद उनसे बिना परिश्रम के फल प्राप्ति की अपेक्षा रहती थी। हमें इस दिशा में अभिनव प्रयोग करने की आवश्यकता है।

अभिनव फलोद्यान

कृषि विज्ञान-केंद्र अपनी भूमि पर पांच या तीन एकड़ की भूमि फलोद्यान के लिए निश्चित कर ले। फलों के वृक्षों का रोपण करने के पूर्व इस बात को समझ लें कि साल में किस-किस मौसम में कौन-कौन से फल उपलब्ध होते हैं। इसके बाद तीन एकड़ या पांच एकड़ निश्चित की गई भूमि में हर मौसम में फल देनेवाले वृक्ष लगाने की योजना बना लें। इस योजना में यह भी निश्चित कर लें कि हर मौसम में फल देनेवाले वृक्ष कितनी-कितनी संख्या में लगाने हैं। उसके बाद बढ़िया ढंग से चयनित किए हुए पौधों का तीन एकड़ या पांच एकड़ भूमि में रोपण कर लें। इस फलोद्यान की देखभाल के लिए एक व्यक्ति पर्याप्त हो सकता है। हर मौसम में फल प्राप्ति के कारण उस व्यक्ति की आजीविका पर होनेवाला व्यय परेशानी का कारण नहीं बनता। चार-पांच वर्ष में यह फलोद्यान साल भर फल प्रदान करता रहेगा और साल भर इस फलोद्यान से आमदनी होती रहेगी। खाद-पानी की दृष्टि से पौधों या वृक्षों को अभाव का शिकार होना नहीं पड़ेगा। अभी फलोद्यान की यह पद्धति लोकप्रिय नहीं हुई है। फलोद्यान का अर्थ बन गया है अलग-अलग फलों के अलग-अलग उद्यानों का। इस कारण देखभाल की दृष्टि से पेड़ों और पौधों की उपेक्षा हो जाती है। हर बगीचे के लिए अलग-अलग व्यक्ति रखना आज की आर्थिक तंगी के दिनों में संभव नहीं होता।

प्रसंस्करण

फल एक नाजुक वस्तु है। पकने के बाद उसका टिकना एक समस्या हो जाती है। इसके कारण फलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना भी काफी कठिन व खर्चीला काम है। अतः

प्रसंस्करण की पर्याप्त व्यवस्था आवश्यक है। प्रसंस्करण की व्यवस्था के कारण जहां फलों का स्वाद और लाभ साल में जब चाहें तब प्राप्त किया जा सकता है। वहां उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने में भी सुविधा होती है। जिन देशों में फलों के प्रसंस्करण की व्यवस्था है, उन्हें बहुत बड़ा आर्थिक लाभ हो रहा है। हर एक कृषि विज्ञान-केंद्र में गृह विज्ञान की व्यवस्था की गई है। अत: प्रत्येक कृषि विज्ञान-केंद्रों में फलों के परिरक्षण के प्रशिक्षण का कार्य लोकप्रिय बनाया गया तो ग्रामीण अंचल में महिलाओं के लिए अच्छी आय का साधन सहज में ही उपलब्ध कराया जा सकेगा।

गृह विज्ञान

प्रत्येक कृषि विज्ञान-केंद्र में गृह विज्ञान प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। गृह विज्ञान कार्य के लिए वैज्ञानिक के नियुक्ति का भी प्रबंध है। गृह विज्ञान स्वयं में बहुत ही महत्त्वपूर्ण विषय है। समाज में विशेषत: ग्रामीण समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत सुखद नहीं है। यद्यपि ग्रामीण अंचल में अधिकांश महिलाएं पुरुषों की बराबरी से खेती में व अन्य उद्योगों में परिश्रम करती हैं, फिर भी रोजी या वेतन की दृष्टि से उनका स्तर पुरुषों से कम माना जाता है। जहां तक परिश्रम और मनोयोग का प्रश्न है, वे पुरुषों की बराबरी नहीं करती, यह धारणा गलत है। पुरुषों की बराबरी से कार्य में संलग्न होने के कारण इनके नन्हे-नन्हे बच्चों का पालन-पोषण तथा विकास की उपेक्षा होती है। बोआई-कटाई आदि के काम साल भर उपलब्ध नहीं होते। इस कारण इन महिलाओं को साल के 365 दिनों में से केवल 86 दिनों से अधिक काम उपलब्ध नहीं होता। अत: उनका बाकी समय बेकार चला जाता है। इस काल में उन्हें काम उपलब्ध कराना यह दायित्व गृह-विज्ञान में संलग्न वैज्ञानिक का है। इस दिशा में अभी तक विशेष कार्य न होने के कारण गृह-विज्ञान में कार्यरत वैज्ञानिकों को बहुत सोच समझकर नए-नए कार्य प्रारंभ करने की दिशा में पहल करनी होगी। यह पहल करते समय महिलाओं के द्वारा कुटीर उद्योगों को महत्त्व दिया जाना चाहिए। कुटीर उद्योग एवं ग्रामोद्योगों का चयन करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कृषि विज्ञान-केंद्र के क्षेत्र में कौन-कौन सा कच्चा माल उपलब्ध है और उस माल को तैयार माल के रूप में ग्रामीण महिलाओं के द्वारा परिवर्तित कराया जा सकता है। इस आधार पर परंपरागत और आधुनिक तकनीकी का मेल बिठाने का भी प्रयास करना होगा। कारण, उत्पादित तैयार माल बाजार की प्रतिस्पर्धा में टिक सके। गृह-विज्ञान विभाग के द्वारा कौटुंबिक जीवन में सुखानंद का वातावरण एवं बच्चों पर सुसंस्कार की व्यवस्था विकसित करने की दिशा में भी प्रयास करना होगा। तभी कृषि विज्ञान-केंद्र में गृह विज्ञान का महत्त्व सिद्ध हो सकेगा।

वन संवर्धन

भारत वन-संपदा की दृष्टि से बहुत समृद्धशाली देश था। अपने देश का राजस्थान का बालूकामय भू-खंड छोड़कर अन्य सभी अंचलों में बहुविध प्रकार की वन-संपदा थी। हमारे वनों

में निम्नांकित विभिन्न प्रकार की वृक्ष एवं लताएं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थीं–

- फलों के वृक्ष।
- इमारती लकड़ी प्रदान करनेवाले वृक्ष।
- सभी प्रकार के बांस।
- सुगंध प्रदान करनेवाले वृक्ष एवं लताएं (फूल नहीं)।
- लकड़ी की उपयोगी वस्तुएं निर्माण करने लायक विभिन्न प्रकार के और विभिन्न रंगों की लकड़ी उपलब्ध कराने वाले वृक्ष।
- ईंधन के लिए जलाऊ लकड़ी तथा उच्च कोटि का कोयला प्रदान करनेवाले वृक्ष।
- विभिन्न प्रकार के मसाले के वृक्ष, लताएं तथा पौधे।
- अनेक प्रकार की औषधीय जड़ी-बूटियां।
- पशु खाद्य उपलब्ध करानेवाले घास के अनेक प्रकार।

बड़ी से बड़ी नाव बनाने के लिए उपयुक्त लकड़ी प्रदान करनेवाले वृक्ष भी उपलब्ध थे, किंतु दुर्भाग्यवश इस संपदा की महत्ता न समझकर बहुत बड़े पैमाने पर वन-विनाश हुआ है। परिणामस्वरूप कई समस्याएं उपस्थित हुई हैं। वृक्षों के अभाव में भूमि का क्षरण बड़ी तेजी से हो रहा है तथा नदियों की बाढ़ों का प्रकोप भयानक विनाश का कारण बन रहा है। भूगर्भ में उपलब्ध जलस्तर निरंतर अधिकाधिक नीचे जा रहा है और जल वृष्टि का परिमाण भी घट रहा है। बिना वन के मानव जीवन संकटग्रस्त होता है। प्राणवायु की उपलब्धि घटी है और अशुद्ध वायु बढ़ने के कारण प्रदूषण मानव के लिए खतरनाक सिद्ध होता जा रहा है। अतः वन-संवर्धन एक नितांत आवश्यक कार्य है। इस ओर कृषि विज्ञान-केंद्रों को विशेष ध्यान देना होगा।

फूलोद्यान

फूलों के प्रति आकर्षण मानव की सहज प्रवृत्ति है। उसने अंतरराष्ट्रीय व्यापार का रूप ग्रहण किया है। परिणामस्वरूप फूलों का उत्पादन आर्थिक आय का साधन बना है। भारत भी कुछ मात्रा में इस उद्योग में सक्रिय है।

फूलों के विषय में भारत अपनी विशेषता रखता है। यहां के फूल केवल दर्शनीय ही नहीं हैं। उनमें विभिन्न प्रकार के सुगंध युक्त फूल हैं। इन सुगंधित फूलों ने अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपना स्थान बनाया नहीं है। साधारणतः सुगंधित फूल अधिक नाजुक होते हैं। वे पेड़, लता या पौधे से अलग करने पर थोड़ी ही देर में मुरझाने लगते हैं। सुगंधित फूलों की इस कमी को दूर करने के प्रयास नहीं हुए हैं। फूलोत्पादन विशेषज्ञों को इस दिशा में काम करने की बहुत गुंजाइश है।

इन खुशबूदार फूलों का अर्क निकालने का काम भारत में बहुत पुराना है। किंतु यह उद्योग उपेक्षित हो गया है। कारण कृत्रिम सुगंधी का चलन बढ़ गया है। फिर भी इसे पुनर्जीवित किया जा सकता है। खुशबू वाले अर्कों की अभी भी विदेशों में बहुत बड़ी मांग है। इस कार्य से किसानों की

आय में पर्याप्त वृद्धि की जा सकती है। कृषि विज्ञान-केंद्रों को इस ओर आवश्यक ध्यान देना चाहिए।

पौधशाला

भारत में अनेक प्रकार के सुगंधित पौधे उपलब्ध हैं, किंतु उनसे धनार्जन की विद्या किसानों को ज्ञात नहीं है। इन सुगंधित पौधों में से अनेकों में औषधीय गुण विद्यमान हैं। उदाहरण के रूप में हम पुदीने को लें। पुदीना जहां कहीं नमी होगी, आसानी से उगाया जा सकता है। पुदीने की पुदीने के रूप में गांवों में खपत नहीं है। उनकी शहरों में और विदेशों में मांग है। ऐसे ही अनेक सुगंधित घास और पौधे हैं। उनका अर्क निकालने का प्रबंध पांच दस गांवों के मध्य में किया गया तो छोटे से छोटे किसानों की आय पर्याप्त मात्रा में बढ़ाना संभव है। इसके लिए किसानों को प्रशिक्षित करना होगा। यह ग्रामीण अंचल का नया तथा अच्छी कमाई का उद्योग बन सकता है।

ग्रामीण अंचलों में अच्छी पौधशाला निर्माण करना शहरों की अपेक्षा अधिक सरल, आवश्यक एवं कम खर्चीला काम है। ग्रामीण अंचल में ही वन संवर्धन, फलोद्यान व फूलोद्यान का बड़े पैमाने पर विस्तार तथा साग-सब्जियों का उत्पादन संभव है, किंतु अच्छी पौधशाला के अभाव में यह कार्य उपेक्षित पड़ा हुआ है। हर एक कृषि विज्ञान-केंद्र अपनी भूमि पर नमूने के रूप में एक अच्छी पौधशाला का निर्माण करे। उसी से प्रेरणा पाकर अच्छे किसान अपने-अपने यहां पौधशाला निर्माण करना चाहेंगे। तभी देश में वन संवर्धन एवं फलों व फूलोद्यान के कार्य व्यापक स्तर पर बढ़ाए जा सकते हैं। ये धनार्जन के स्थायी साधन बन सकते हैं। □

गोपालन
स्वावलंबन की धुरी

गाय को गोमाता की प्रतिष्ठा भावावेश में नहीं मिली और न यह अंधश्रद्धा की देन है। यह हिंदू संस्कृति की अखंड अनुभव परंपरा का मौलिक निचोड़ है। शरीर मानव के अस्तित्व का दृश्य स्वरूप है। उसका अस्तित्व उपभोग पर निर्भर है। भोग-प्रवण शरीर अस्थायी होते हुए भी अमर आत्मा की अभिव्यक्ति का एकमेव साधन है। अतः उसे आजीवन स्वस्थ एवं सक्रिय बनाए रखना नितांत आवश्यक है।

शरीर के अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संपदा का उपयोग मानव की आवश्यकता है। सुसभ्य मानव प्रकृति प्रदत्त सभी उपकारक तत्त्वों के प्रति कृतज्ञता अनुभव करता है। वह प्रकृति के लिए हानिकारक नहीं बनता। जिस प्रकार शिशु स्तनपान करते हुए मां को सुखद अनुभूति कराता है, उसी प्रकार व्यक्ति द्वारा उपभोग्य वस्तुओं का कृतज्ञतापूर्वक दोहन करना चाहिए, न कि शोषण, तभी निरंतर उपभोग के बावजूद प्राकृतिक संतुलन बना रहेगा। उपभोग्य तत्त्वों के प्रति कृतज्ञता की भावना ही मानव को उपभोग्य वस्तुओं की पुनर्पूर्ति के लिए प्रेरित करती है। हिंदू संस्कृति की इसी विशेषता ने गाय के प्रति मातृत्व की भावना विकसित की है। यही मानव संस्कृति है, जो हिंदू संस्कृति के नाम से अस्तित्व में आई और मानव मात्र के चिरंतन अस्तित्व का आधार बनी है।

दुर्भाग्य है कि नव स्वतंत्र भारत में अपनी इस मानवीय संस्कृति की विशेषताओं को जानने और समझने का प्रयास नहीं हुआ। जिस कारण प्राकृतिक संसाधनों का ह्रास एवं प्रदूषण का प्रकोप निरंतर बढ़ता रहा। फलस्वरूप, मानव-मानव के पारस्परिक स्नेहपूर्ण संबंधों की आवश्यकता की अनुभूति लगातार घट रही है।

विश्व भर के प्राकृतिक संसाधनों का शोषण कर तथा विभिन्न देशों की धन-दौलत हड़प कर हम अपने सुख उपभोग के लिए समृद्ध बने। अमानवीय राष्ट्रों की नकल करते हुए हम भी अपनी परंपरागत मानवीयता से ही वंचित हो रहे हैं। परिणामस्वरूप, आजादी की अर्ध शताब्दी का समय बीत जाने पर भी स्वातंत्र्य संग्राम के काल के सपने साकार नहीं हो पाए। अभावग्रस्तों की बढ़ती संख्या एवं उनकी दयनीय दशा की चिंता सत्ताप्रेमियों में नदारद है। स्वतंत्रता काल के

नानाजी के ग्राम विकास के अनेक प्रयोगों में एक गोवंश विकास भी था। मानवीय जरूरत के इस अभिन्न पहलू को दृष्टिगत रखते हुए चित्रकूट में हनुमान प्रसाद पोद्दार (भाईजी) की स्मृति में गोवंश अनुसंधान एवं विकास केंद्र प्रारंभ किया गया। उसी की अवधारणा, अप्रैल1996

नेतृत्व ने राजसत्ता को व्यक्तिगत एवं दलगत स्वार्थ सिद्धि का साधन बना रखा है। इसी कारण जनजीवन निराशा एवं हताशा से ग्रस्त है।

कृषि उत्पादन के लिए जितनी भूमि की आवश्यकता है। गोमाता की आवश्यकता उससे कम नहीं है। बैलों द्वारा कृषि कार्य करना हमारी चिर पुरातन एवं दोषमुक्त परंपरा है। गाय मानव के लिए केवल सर्वोत्कृष्ट पोषक तत्त्व अर्थात् दूध की ही पूर्ति नहीं करती, वह खेती के लिए बैल तथा जैविक खाद के लिए गोबर भी उपलब्ध कराती है। इसी कारण भारत में कृषि, किसान और गाय का त्रिवेणी संगम मानव जीवन का आधार माना गया था। कृषि से उत्पादित खाद्य पदार्थ मानव का उदर-भरण करते हैं और अखाद्य कृषि उपज पर गोवंश पलता है। वस्तुतः गोवंश जनजीवन का पूरक तत्त्व है। गोवंश का गोबर कृषि भूमि की उर्वरा शक्ति को सदैव बनाए रखने की क्षमता रखता है। वह फसल की जैविक प्रक्रिया को पुष्ट एवं संवर्धित करता है। गाय दूध दे या न दे, वह प्रतिदिन तेरह से पंद्रह किलो तक गोबर अवश्य देती है। इस गोबर की कीमत निष्क्रिय गोवंश द्वारा खाए जानेवाले चारे एवं पानी से कई गुना अधिक होती है। वास्तव में गोवंश किसान का घरेलू खाद का कारखाना भी है। उसके लिए अलग से पूंजी नहीं लगानी पड़ती। इसके अतिरिक्त गाय द्वारा प्राप्त बछड़ियों तथा बछड़ों के दाम अलग से मिलते हैं। फलस्वरूप, गाय किसान की समृद्धि का स्थायी साधन है। इसके अलावा गाय के गोबर एवं गोमूत्र के अनेक गुण हैं। ग्रामीण अंचल में अधिकांश मकान सीमेंट और पक्के फर्श के नहीं होते। वहां फर्श और दीवारों की लिपाई-पुताई गोबर से ही की जाती है। इस कारण घरों में कीटाणुओं का प्रकोप संभव नहीं होता। यदि घर में किसी प्रकार की दुर्गंध अनुभव हुई तो वह गोबर की पुताई से मिट जाती है। इन तथ्यों से आधुनिक शिक्षा विभूषित वैज्ञानिक अनभिज्ञ हैं।

खेती की उर्वरा शक्ति बढ़ाने एवं फसल के लिए पोषक तत्त्व उपलब्ध कराने में गोबर की खाद से अच्छा दूसरा कोई अन्य पदार्थ नहीं है। खेत में गोबर की खाद का प्रयोग किया गया तो उसमें उगनेवाली फसलों पर साधारणतः कीटाणुओं का आक्रमण नहीं होता। इसके बावजूद यदि किसी कारण से कीटाणुओं का प्रकोप हुआ तो दो या तीन प्रतिशत गोमूत्र पानी में मिलाकर फसल पर छिड़काव करने से कीटाणुओं की समस्या का निवारण हो जाता है। गोमूत्र के मिश्रण प्रयोग से फसलों को केवल कीटाणुओं के आक्रमण से होनेवाले रोगों से ही मुक्ति नहीं मिलती, बल्कि फसल पनपाने में सहायता मिलती है और उत्पादन भी बढ़ता है।

गाय की सहभागिता

गोमाता पुरातन काल से ही अपने राष्ट्र जीवन की आधारशिला रही है। इस वस्तुस्थिति को समझे बिना ही दुर्भाग्य से हमारे नेताओं ने गाय का मूल्यांकन पश्चिम की धारणा के अनुसार केवल दूध देनेवाला प्राणी मात्र माना है। गाय का दूध अमृत तुल्य है, यह सत्य है, लेकिन गोमाता की महत्ता इसी एक बात तक सीमित समझना बहुत बड़ी भूल है।

'अन्नमय प्राण' के रहस्य को अपने पूर्वजों ने हजारों साल पहले अनुभव कर लिया था।

कृषि भूमि अन्न प्रदाता है। इस तथ्य को समझा था। गोवंश के बिना कृषि सदा सर्वदा अन्नदाता नहीं बनी रह सकती। इस वास्तविकता को युग–युगों के प्रयोगों के माध्यम से खोज लिया था, लेकिन वर्तमान समय में समृद्धि के शिखर पर दिखाई देने वाले देशों को गाय की सर्वांगीण उपादेयता की जानकारी न थी और न है। औद्योगिक क्रांति के पूर्व उन देशों में कृषि घोड़ों द्वारा हुआ करती थी। औद्योगिक क्रांति के बाद घोड़ों का स्थान मशीनों ने ले लिया है। खाद के लिए उन्होंने रासायनिक तत्त्वों का उपयोग करना आरंभ किया है।

कृषि कार्य के अतिरिक्त बैल यातायात का भी बहुत ही सस्ता साधन है। कुछ दशकों से बोझा ढोने एवं प्रवास के लिए रेलगाड़ियों एवं मोटरों का उपयोग बढ़ा है। इसके बावजूद अभी भी पचास प्रतिशत से अधिक बोझा ढोने एवं प्रवास के लिए बैलगाड़ियां ही काम में आ रही हैं। गो–पालन खेती की सभी आवश्यकताएं पूरी कर किसानों को हर प्रकार से आत्मनिर्भर बनाता है। उन्हें ट्रैक्टर या रासायनिक खादों के लिए अतिरिक्त व्यय कर उद्योगपतियों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं रहती। खेतों को तैयार करने के महत्त्वपूर्ण दिनों में डीजल पंपों पर दस–दस दिन तक लाइन लगाकर समय बरबाद नहीं करना पड़ता। धन व्यय करने की मुसीबत से जान बचती है। फलस्वरूप, किसानों के लिए खुशहाली का मार्ग प्रशस्त होता है। साथ ही इससे बेकारी पर काबू पाया जा सकता है।

उपर्युक्त विवेचन अन्न उत्पादन की पद्धति एवं गोमाता की महत्ता समझने के लिए पर्याप्त है। इस विवेचन में नवीनता नहीं है। इस विषय की चर्चा होती रहती है, लेकिन चर्चा मात्र से आवश्यकता की पूर्ति नहीं हुआ करती। उपर्युक्त तथ्य का लाभ तभी संभव है, जब वह व्यावहारिक धरातल पर अपनाया जाए। दीनदयाल शोध संस्थान केवल वैचारिक गतिविधियों तक सीमित संस्था नहीं है। वह जीवन की समस्याओं के निराकरण एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयोगात्मक प्रयासों द्वारा व्यावहारिक नमूने प्रस्तुत करनेवाली कार्यशाला है।

दिशाहीन नीति

पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित नेतृत्व अपनी संस्कृति की मौलिकता से अनभिज्ञ है। पश्चिम की अर्थात् ठंडी जलवायु वाले देशों में अधिक दूध देनेवाली गायों का आकर्षण बढ़ा है। पश्चिमी देशों के सांड़ों का वीर्य आयात कर भारत की बढ़िया नस्ल की अच्छी गायें छांटकर उन्हें कृत्रिम तरीके से गर्भधारण कराने का अभियान चला रखा है। ऐसी संकरित गायों के लिए सब प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध कराने में मुक्तहस्त से धन खर्च कर श्वेत क्रांति की डींग हांकी जा रही है। उससे शहरी आबादी को दूध की दृष्टि से तात्कालिक लाभ हो रहा होगा, लेकिन ग्रामीण अंचल में रह रही तीन चौथाई आबादी और संपूर्ण राष्ट्र की आबादी को अन्न उपलब्ध करानेवाली खेती पर कितने दुष्परिणाम हो रहे हैं, इस ओर नेतृत्व का कोई ध्यान नहीं है। तथाकथित औद्योगिक क्रांति के बाद पश्चिमी देशों में विशालकाय कारखानों का युग चल पड़ा है। बड़े–बड़े शहर अस्तित्व में आए हैं। उन शहरी आबादियों की दूध और गोमांस की पूर्ति उन देशों की आवश्यकता है।

इन्हीं दो बातों के आधार पर वहां गो-पालन की पद्धति विकसित हुई है। कृषि, किसान और गाय की परस्पर पूरकता से वे पूरी तरह से अनभिज्ञ हैं। इसके दुष्परिणाम उन्हें भोगने पड़ रहे हैं। दुर्भाग्य है कि नव स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने भी बिना सोचे-समझे उन्हीं की नकल कर अपने देश की आवश्यकताओं के प्रतिकूल नीति अपनाई है।

अपने देश के अधिकांश भागों में साल में आठ माह से अधिक समय तक गरमी रहती है। इन्हीं दिनों में खेती में सर्वाधिक महत्त्व एवं कठोर परिश्रम का काम होता है। अपने देश में तीन चौथाई से अधिक खेत ढाई एकड़ या इससे भी कम आकार के हैं। इन छोटी-छोटी जोतवाले किसान अपने खेतों को मशीनों से नहीं जोत सकते। ऐसे में उन्हें बैलों की ही आवश्यकता है। संकर गायों के बैल गरमी के दिनों में काम नहीं कर पाते। शासकीय नेतृत्व इस स्थिति को नहीं समझ रहा। वह केवल शहरी आबादी की आवश्यकता पूर्ति को वरीयता देकर अधिक दूध के लालच में संकर गायों के विस्तार पर बल दे रहा है। परिणामस्वरूप, देशी बैलों का अभाव बढ़ रहा है। उनकी कीमतें आसमान छू रही हैं। देश की सत्तर फीसदी से अधिक कृषि-भूमि का विकास देशी बैलों के अभाव में अवरुद्ध हुआ है। इसी कारण देश की अधिकांश ग्रामीण आबादी विपन्न अवस्था में जी रही है। वह न अपनी कृषि-भूमि छोड़ सकती और न उससे लाभान्वित हो पाती है।

गोवंश और लोकशक्ति से ग्राम विकास

राजशक्ति अस्थिर एवं सतत परिवर्तनशील है, जबकि लोकशक्ति चिरंतन, सक्रिय, लोकोपयोगी एवं स्थायी रूप से कारगर शक्ति है। प्रभु राम ने अपने वनवास काल में इस तथ्य को सिद्ध कर दिखाया था। राम का जीवन-आदर्श दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य का आधार है। लोकशक्ति के बल पर ही गोवंश के द्वारा चित्रकूट के चारों ओर पचास किलोमीटर की परिधि में बसा ग्रामीण जीवन सुसंस्कारक्षम, समुन्नत एवं सुसंपन्न बनाकर दिखाने का संस्थान का लक्ष्य है। इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए शोध संस्थान ने चित्रकूट में श्रद्धेय भाईजी की स्मृति में गोवंश अनुसंधान एवं विकास प्रकल्प की प्रस्थापना की है।

अपने देश में अनेक नस्लों की गायें हैं। उनमें से निम्न 10 प्रकार की गायें विशेष गुणकारी हैं—(1) गीर (2) कांकरेज (3) साहीवाल (4) थारपारकर (5) राठी (6) हरियाणवी (7) ओंगोल (8) नागौरी (9) खिलार (10) वेचूर।

इन सब गायों की अपनी-अपनी विशेषताएं हैं। इन गायों की शुद्ध नस्लों के विकास के साथ इन नस्लों के सांड़ द्वारा अविकसित देशी गायों का विकास करना कृषि एवं मानव विकास के लिए आवश्यक है। इनमें से गीर, कांकरेज, साहीवाल, थारपारकर और हरियाणवी गायों का समुचित विकास एवं ठीक से रखरखाव किया गया तो ये गायें बढ़िया बैल देने के साथ-साथ दूध देने में भी विदेशी गायों की बराबरी कर सकती हैं। दुर्भाग्य है कि अपनी सर्वगुण-संपन्न गायों का विकास सदियों से नहीं हो पाया है। आजादी के बाद भी नेतृत्व ने इनके विकास की दिशा में

आवश्यक कदम नहीं उठाए। अन्यथा पुरातन काल के समान ही अपनी देशी गायें वर्तमान काल में भी कामधेनु सिद्ध हो सकती थीं।

अपने देश में गोवंश की विशेष मान्यता रही है। भगवान् शंकर के साथ नंदी की प्रतिष्ठा सर्वविदित है। बिना नंदी के महादेव का मंदिर मिलना संभव नहीं है। गोवंश के प्रति अपनी कृतज्ञता पूर्ण परंपरा की अर्थपूर्ण प्रथा है। भारतीय गोवंश का विकास राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति का माध्यम बनेगा। इसी विश्वास के आधार पर दीनदयाल शोध संस्थान ने इस पुनीत कार्य का शुभारंभ किया है। उसके लिए चित्रकूट में मंदाकिनी के सुरम्य तट पर पर्याप्त भूखंड प्राप्त है।

गोंडा प्रकल्प में प्रयोग

इस मौलिक कार्य का शुभारंभ करने से पूर्व दीनदयाल शोध संस्थान ने इस दिशा में गोंडा जिले में आरंभिक प्रयोग किए थे। गोंडा में जिला स्तर पर 'गोंडा ग्रामोदय प्रकल्प' 1978 में प्रारंभ किया था। त्यागमूर्ति लोकनायक जयप्रकाशजी और उनकी पत्नी प्रभादेवी के प्रति श्रद्धा के रूप में इस प्रकल्प के केंद्र को 'जयप्रभा ग्राम' नाम से गौरवान्वित किया गया है। इस जिले में गायों की हालत बहुत ही दयनीय थी। ये गायें प्रतिदिन आधे से पौन लीटर तक ही दूध दे पाती थीं। उनमें से कुछ गिनी-चुनीं गायें ही एक से दो लीटर दूध देने में सक्षम थीं। इनके द्वारा प्राप्त बैल भी कमजोर और कद में छोटे होते थे। इन गायों के विकास का शुभारंभ शोध संस्थान ने 1978 में महामहिम राष्ट्रपति स्व. श्री नीलम संजीव रेड्डी के कर-कमलों द्वारा कराया था। साहीवाल जाति का एक सांड़ कंजरिया फार्म से और एक साल बाद सौराष्ट्र (गुजरात) से गीर जाति का एक सांड़ प्राप्त किया था। इन सांड़ों द्वारा जयप्रभा ग्राम के चारों ओर के किसानों की गायों के विकास का कार्य हाथ में लिया गया। इस प्रयोग की बढ़ती लोकप्रियता अनुभव कर इन्हीं जाति के कुछ और सांड़ मंगाए गए। करीब 10 साल के लगातार प्रयोगों के बाद इस प्रयास के अच्छे परिणाम सामने आने लगे। कम दूध देनेवाली गायों की तीसरी पीढ़ी की गायें आठ से दस लीटर दूध देने लगीं। बैल भी शक्तिशाली और अच्छे कद के उपलब्ध होने लगे। बैलों द्वारा कृषि कार्य की पद्धति पुनर्प्रचलित होने लगी। यह प्रयोग 10 हजार से अधिक (कम दूध देनेवाली) गायों पर किया गया। बिना अपवाद सभी गायों का विकास आश्चर्यजनक रूप में सफल सिद्ध हुआ।

इस सफल अनुभव के आधार पर ही दीनदयाल शोध संस्थान ने अधिक व्यापक क्षेत्र में देश की 10 नस्ल की 10-10 गायों एवं 1-1 सांड़ के द्वारा गोवंश अनुसंधान एवं विकास की प्रयोगशाला चित्रकूट में आरंभ की है। चित्रकूट को केंद्र मानकर चारों ओर के 50 किलोमीटर के क्षेत्र में गोवंश के माध्यम से सर्वांगीण विकास का आवश्यक नमूना प्रस्तुत करना दीनदयाल शोध संस्थान का लक्ष्य है। औद्योगिक विकास में भी गोवंश सहायक सिद्ध होता है, यह शोध संस्थान का अनुभव है। गोवंश विकास तथा उस पर आधारित कृषि विकास के साथ-साथ इस क्षेत्र से अशिक्षा, बेकारी, गरीबी और कलह दूर कर परस्पर-पूरकता के

सहारे सामाजिक जीवन का सामंजस्यपूर्ण एवं अनुकरणीय नमूना खड़ा करने का शोध संस्थान का संकल्प है।

चित्रकूट में वृहद योजना

चित्रकूट असंख्य रामभक्तों का अनोखा श्रद्धा केंद्र है। प्रचलित भौतिक युग में तथाकथित शिक्षित लोगों को राजसत्ता तथा धन-देवता के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं देता। लेकिन चित्रकूट की महिमा और ही है। सत्ता निर्लिप्त राम के प्रति अविचल भक्ति से भाव विभोर होकर लाखों की संख्या में देशवासी अनंत काल से, अखंड रूप से प्रभु राम के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करने चित्रकूट आते हैं।

गोवंश संवर्धन जैसे पुण्य कार्य के लिए इससे अधिक उपयुक्त अन्य स्थान और नहीं हो सकता। इसी तथ्य की अनुभूति कर दीनदयाल शोध संस्थान ने गोवंश अनुसंधान एवं विकास के पुण्य कार्य का केंद्र चित्रकूट को ही बनाया है।

यह कार्य चार दीवारों के घेरे में सीमित रखकर अनुकरणीय नहीं बन सकता। इसलिए दीनदयाल शोध संस्थान ने इस प्रयोग के लिए चित्रकूट को केंद्र बनाकर उसके चारों ओर की पचास किलोमीटर परिधि को अपनी प्रयोगशाला मानकर कार्य का शुभारंभ किया है। इस पचास किलोमीटर की परिधि में सौ ग्राम-समूहों को स्थापित किया गया है। इन ग्राम-समूहों में उपलब्ध गायों का समुचित विकास करने का कार्यक्रम हाथ में लिया गया है। इसके लिए प्रत्येक ग्राम-समूह में साहीवाल, हरियाणवी, गीर या थारपारकर के उत्तम किस्म के चयनित सांड़ों को रखा जाएगा। उनके पालन-पोषण का समुचित प्रबंध स्थानीय निवासी करेंगे। इन सांड़ों के माध्यम से ही स्थानीय गायों का समुचित विकास करने का संकल्प है। चुने गए इन ग्राम-समूहों में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना का दायित्व निभाने के लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने 'समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवार' योजना आरंभ की है। इस योजना में प्रत्येक ग्राम-समूह में एक-एक नवविवाहित दंपती (पति-पत्नी का जोड़ा) को इस पुनीत कार्य में लगाया जा रहा है। पति और पत्नी दोनों स्नातक उपाधि से विभूषित और हिंदू संस्कृति के उपासक एवं गोभक्ति से अभिभूत होकर लगन से काम करनेवाले हों। यह उनकी नियुक्ति के लिए आवश्यक गुण-निधि निर्धारित की गई है। अभी तक ऐसे इक्कीस समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवारों का चयन एवं प्रशिक्षण हो चुका है। उन्हें कार्यभार सौंपकर निर्धारित क्षेत्र में पहुंचा दिया गया है। उनके द्वारा हो रहे कार्यों के सुपरिणाम उत्साहवर्धक हैं। शेष दंपतियों के चयन की प्रक्रिया तथा उनके लिए एवं गोवंश विकास के लिए आर्थिक व्यवस्था का प्रबंध किया जा रहा है। शोध संस्थान का प्रयास है कि यह समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवार (नवविवाहित दंपती) देश के सभी प्रदेशों से प्राप्त हों। इस तथ्य पर बल दिया जा रहा है, ताकि यह अभियान कुछ समय बाद सार्वदेशिक रूप ग्रहण कर सके।

कृतज्ञता सभ्य मानव का सहज स्वभाव है। हमारे यहां धरती माता, गोमाता जैसे शब्दों का प्रयोग इसी उदात्त भावना के प्रतीक हैं। अति प्राचीन काल से हमारे पूर्वजों ने इस सत्य का

साक्षात्कार कर लिया था कि प्राण अन्नमय है। इसलिए उन्होंने अन्न उत्पादन के लिए कृषि-शास्त्र का विकास किया। धरती से अन्न एवं अन्न से जीवन। इसलिए अपने यहां धरती मातृवत् बनी। उसी प्रकार मानव केवल शैशवावस्था में मां के दूध पर पलता है। उसका शेष जीवन गो दुग्ध और अन्न पर निर्भर करता है। इस कारण अपने समाज में धरती के समान ही गाय को भी मां का श्रद्धायुक्त पद प्राप्त हुआ। गाय का योगदान केवल दूध तक ही सीमित नहीं है, बल्कि गाय हमारे आर्थिक जीवन का भी आधार है। कृषिकार्य में बैलों का उपयोग भारत का वैशिष्ट्य है। गाय व बैलों के गोबर की प्राकृतिक खाद जमीन की उर्वरा-शक्ति को कायम रखने एवं पुष्ट करने की दृष्टि से अद्वितीय है। अतः गांव, गाय व कृषि की त्रिगुणात्मक शक्ति भारतीय जीवन में सुख-समृद्धि का आधार बनी।

पश्चिम में जनमी औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप शहरीकरण एवं खेती के मशीनीकरण की प्रक्रियाएं आरंभ हुईं। वहां यंत्रशक्ति द्वारा जमीन की जुताई की जाने लगी। अधिक-से-अधिक अन्न उत्पादन की लालसा से कृत्रिम खाद का आविष्कार हुआ। कृत्रिम खाद के उपयोग से कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई। इसलिए उसका उपयोग बढ़ता गया। पश्चिम का जीवन शहरी प्रधान होने के कारण नगरों की आवश्यकता पूर्ति को ही प्राथमिकता दी जाने लगी। पश्चिम में गो-विकास का इतना अर्थ रह गया कि नगरवासियों के लिए अधिकाधिक दूध एवं गोमांस कैसे उपलब्ध कराया जाए। गो-विकास के आधुनिक पश्चिमी उपायों का इन्हीं दो बातों पर आग्रह है। फलस्वरूप वहां की गायें साधारणतः प्रति दिन 25 से 30 लीटर या इससे भी अधिक दूध देती हैं। कृषि या यातायात का पूर्ण मशीनीकरण हो जाने के कारण बैलों का उपयोग गोमांस देने के अलावा कुछ नहीं है। यह बात तब किसी ने नहीं सोची कि फसलों के विकास की प्रक्रिया जैविक है। कृषि उत्पादन के लिए काम आई हुई भूमि की उपजाऊ शक्ति की क्षतिपूर्ति जैविक खाद द्वारा ही संभव है। रासायनिक उर्वरक भूमि की उर्वरा-शक्ति नहीं बढ़ा पाते। वह भूमि में उत्तेजना निर्माण करते हैं। उससे कृषि उत्पादन में कुछ समय के लिए बढ़ोतरी अवश्य होती है, लेकिन ये प्राकृतिक उपजाऊ शक्ति को पुष्ट नहीं करते। रासायनिक खाद के लगातार प्रयोग से तथाकथित उन्नत देशों में लाखों एकड़ उपजाऊ भूमि बंजर बनी है। इसलिए अब वही पश्चिमी देश रासायनिक खाद का विकल्प खोजने में जुटे हैं। रासायनिक खाद के प्रयोग से फसलों पर रोगों का भी प्रकोप बढ़ता है। उससे बचने के लिए जहरीली दवाओं के छिड़काव की विधि अपनानी पड़ती है, लेकिन ये विषैली दवाएं केवल फसलों पर होनेवाले कीटकों को ही नष्ट नहीं करतीं, बल्कि उनसे उत्पादित खाद्य पदार्थों का सेवन करनेवाले लोगों को भी अपनी चपेट में ले लेती हैं। फलस्वरूप, जिन देशों में रासायनिक खादों एवं कीटनाशक दवाओं का आविष्कार हुआ है, वहां के निवासी अब जैविक खादों से उत्पादित खाद्य पदार्थ ही खाना पसंद करने लगे हैं। आधुनिक कृषि वैज्ञानिकों को भी महसूस होने लगा है कि भारत में जैविक खाद पर आधारित परंपरागत कृषि-पद्धति ही अधिक वैज्ञानिक है।

वास्तव में कृत्रिम खाद के पक्षधर पश्चिम के कृषि विशेषज्ञ यह देखकर हतप्रभ हैं कि कृत्रिम खाद के उपयोग के कारण उनके यहां धरती की उर्वरा-शक्ति का तेजी से ह्रास हो रहा है। जबकि

विराट् पुरुष

भारत एवं चीन जैसे प्राचीन देशों में एक ही खेत में हजारों साल से खेती होने के बाद भी उर्वरा शक्ति कम नहीं हुई है। कई देशों के कृषि-विशेषज्ञों ने भारत की परंपरागत कृषि पद्धति का सूक्ष्म अध्ययन किया है। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इसका श्रेय गोबर की प्राकृतिक खाद एवं जुताई के लिए बैलों के उपयोग को जाता है। आज पश्चिम के सामने ईंधन की समस्या भी भयंकर रूप धारण करके खड़ी है। खेती में काम आनेवाले यंत्र पेट्रोल या डीजल पर निर्भर हैं। लेकिन इन दोनों वस्तुओं की उपलब्धि निरंतर कठिन होती जा रही है। ऊर्जा संकट के कारण समूची पाश्चात्य सभ्यता का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है। अतः वह ऊर्जा के वर्तमान साधनों का कोई दूसरा विकल्प खोजने में लगे हुए हैं। इस बारे में हमें समय रहते सतर्क होने की आवश्यकता है।

गांवों में ईंधन समस्या

ईंधन की समस्या ने भारत में पश्चिम जैसा विकट रूप तो अभी धारण नहीं किया है, लेकिन उसके लक्षण दिखाई देने लगे हैं। आए दिन जंगल काटने की खबरें पढ़ने को मिलती हैं। धीरे-धीरे गांवों में खाना पकाने के लिए ईंधन का अभाव होता जा रहा है। गत अनेक दशकों से ग्रामीण क्षेत्र में लोग ईंधन की लकड़ी के अभाव में गोबर के उपले बनाकर जला रहे हैं। गोबर की खाद के अभाव में खेती भूखी रह जाती है; किंतु पशुधन में हो रही लगातार कमी के कारण गोबर भी पर्याप्त मात्रा में मिलना कठिन हो रहा है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि आगामी 20-25 वर्ष के बाद गांवों में खाना पकाने की समस्या बहुत विकट रूप धारण करेगी। अतः इसका उपाय अभी से खोजना होगा।

संकरित नस्ल के विनाशकारी गुण

अखिल भारतीय कृषि एवं गो-विकास संघ ने इस समस्या का अध्ययन करने के लिए सन् 1979 में डॉ. मंगरूलकर की अध्यक्षता में पशु विशेषज्ञों की एक समिति गठित की थी। समिति ने देश भर में इस समस्या का सभी पहुलओं को ध्यान में रखते हुए गंभीर अध्ययन किया। अध्ययन के बाद जो निष्कर्ष प्राप्त हुए, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं—

- संकरित गायों के बछड़े खेती करने, सामान ढोने या परिवहन के उपयोग में लाना लोग पसंद नहीं करते। कारण, वे तीनों दृष्टियों से अनुपयोगी हैं।
- मिलिटरी डेयरियों में भी, जहां संकरित गायें हैं। ऐसी गायों के बछड़ों को साल भर के अंदर ही सौ-पचास रुपयों में बेच दिया जाता है और वे अपने काम के लिए देशी बैल खरीदते हैं।
- संकरित गायों के 75 प्रतिशत से अधिक बछड़े कसाइयों के हाथ बेचे जाते हैं। अर्थात् वे बूचड़खाने में पहुंचकर गोमांस का उत्पादन बढ़ाने में ही सहायक बनते हैं।
- जिन संकरित गायों में पचास प्रतिशत भी विदेशी नस्ल का अंश रहता है। उनकी हर पंद्रह दिन में पशु चिकित्सकों की ओर से देखभाल करनी पड़ती है। फलस्वरूप ये गायें

बड़ी–बड़ी डेयरियों के लिए तथा धनी लोगों के लिए ही उपयोगी हो सकती हैं।

- संकरित गायों के खानपान का स्तर इतना ऊंचा रखना पड़ता है कि उनका पालन–पोषण साधारण किसानों के लिए असंभव है। यदि उनके लिए चिकित्सा, हरा चारा, खली एवं दाने आदि की समुचित व्यवस्था न हो पाई तो इन गायों का दूध एकदम घट जाता है और वे मरणासन्न हो जाती हैं।
- संकरित गायों में विदेशी सांड़ों के वीर्य के साथ ही अनेक रोग भी यहां फैल रहे हैं, जो सामान्यतया अपने देश के लिए अपरिचित थे।
- संकरण अभियान के कारण अपने देश की अच्छी नस्लों की गायें दुर्लभ होती जा रही हैं। परिणामस्वरूप देश का विशाल ग्रामीण क्षेत्र दूध से दिन–प्रतिदिन अधिकाधिक वंचित हो रहा है। ग्रामीण बच्चे दूध के अभाव में पोषक तत्त्वों से वंचित होने के कारण रोगग्रस्त होते जा रहे हैं। इसी कारण गांवों में रतौंधी का रोग बढ़ता जा रहा है। साथ ही खेतों का विकास भी अवरुद्ध हो रहा है।
- गरीब किसानों के लिए बैलों का मिलना बहुत कठिन हो रहा है। बैलों की कीमतें इतनी बढ़ रही हैं कि गरीब किसान उनको नहीं खरीद पा रहे हैं। इस कारण छोटे एवं सीमांत किसान अपनी खेती की उपज बढ़ाने में लगातार असमर्थ हो रहे हैं।
- जितनी चिंता और व्यवस्था संकरित गायों की करनी पड़ती है, यदि उतनी देशी नस्ल की गायों की की जाए तो हमारी गायें संकरित गायों के बराबर और कुछ–कुछ नस्लें तो उनसे भी अधिक दूध दे सकती हैं। देशी गायों के लिए अपने देश की जलवायु अनुकूल रहती है, इसलिए उन्हें चिकित्सा की भी अपेक्षाकृत कम आवश्यकता पड़ती है।
- देशी गायों के बछड़े शत–प्रतिशत अच्छे बैलों के रूप में विकसित होते हैं।

गोवंश प्रयोग के सार्थक परिणाम

इस चिंताजनक स्थिति से बाहर निकलने का उपाय एक ही है—भारत गो–विकास के क्षेत्र में पश्चिम का अंधानुकरण छोड़ अपनी परंपरागत पद्धति को युगानुकूल बनाने का प्रयास करे। दीनदयाल शोध संस्थान ने इस दिशा में प्रयोग आरंभ किए हैं। उनसे अच्छे परिणामों के संकेत प्राप्त हो रहे हैं। दीनदयाल शोध संस्थान का लक्ष्य है कि वह हर किसान को ऐसी गायें उपलब्ध कराए, जो प्रतिदिन साधारणतः 10 लीटर दूध देती हों और वर्ष में कम–से–कम तीन सौ दिन दूध दें। ऐसी गायों से किसानों को आर्थिक लाभ होगा, अच्छे बैल मिलेंगे, पर्याप्त प्राकृतिक खाद मिलेगा, खाना पकाने के लिए तथा रोशनी के लिए गोबर गैस उपलब्ध होगी। साथ ही बच्चों के लिए दूध उपलब्ध हो सकेगा, उन्हें बीमारियां कम होंगी, रतौंधी का रोग मिट जाएगा, ग्रामीण बंधु–बहनों का स्वास्थ्य अच्छा होगा तथा लोग समृद्धि की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

□

उद्यमिता विद्यापीठ
स्वरोजगार की नूतन प्रयोगशाला

वैकल्पिक औद्योगिक विधि की खोज के लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट को केंद्र बनाया है। चित्रकूट की नन्ही सी आबादी मध्य प्रदेश के सतना जिले में उत्तर प्रदेश की सीमा से सटी हुई है। वनवास काल में प्रभु राम की यह कर्मभूमि रही है। वर्तमान में इसके चारों ओर का क्षेत्र अत्यंत पिछड़ा और अभाव-ग्रस्त है। इसमें पहाड़ों और जंगलों की बहुलता है। इस क्षेत्र की आबादी में वनवासियों की संख्या भी काफी है।

प्रभु राम की कर्मभूमि होने के कारण चित्रकूट विशेष लोकप्रिय तीर्थ है। हजारों यात्री नित्य-प्रति यहां आते हैं। प्रति माह अमावस्या के दिन डेढ़ से दो लाख यात्री मां मंदाकिनी में स्नान एवं कामदगिरी (वनवास काल में जिस पहाड़ी पर प्रभु राम रहा करते थे) की परिक्रमा करने आते हैं। सोमवती अमावस्या के दिन यात्रियों की संख्या दस लाख से भी अधिक हो जाती है। दीपावली के दिन यहां मां मंदाकिनी के मंद प्रवाह में दीपदान का पर्व मनाया जाता है। उस दिन पच्चीस लाख से भी अधिक यात्री इस पर्व में शामिल होने के लिए अनेक प्रदेशों से आते हैं। विभिन्न प्रकार के रंग-बिरंगे परिधानों से विभूषित महिला-पुरुषों का यह सचल समूह चित्ताकर्षक दृश्य प्रस्तुत करता है। इसी लोकप्रिय तीर्थ चित्रकूट को केंद्र बनाकर इसके चारों ओर की पचास किलोमीटर की परिधि में आनेवाले क्षेत्र को दीनदयाल शोध संस्थान ने औद्योगिक विकास की नूतन प्रयोगशाला के रूप में अपनाया है। इस पचास कि.मी. की परिधि में सौ ग्राम समूहों को औद्योगिक केंद्र के रूप में चयनित किया है। प्रत्येक ग्राम समूह की आबादी साधारणतः पांच हजार है। इस आबादी के ऐसे सक्षम शरीर के युवक-युवतियों को, जिनकी आयु चालीस वर्ष या इससे कम है तथा जिनकी आय का स्रोत नगण्य है, उन्हें औद्योगिक प्रशिक्षण के माध्यम से स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर आत्मनिर्भर बनाने का अभियान आरंभ किया है।

औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए चित्रकूट में 'उद्यमिता विद्यापीठ' प्रस्थापित किया गया है। इसमें चार माह, छह माह तथा एक साल के औद्योगिक प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रमों की व्यवस्था

उद्यमिता विद्यापीठ प्रकल्प की रूपरेखा, जून 1996 में तैयार की गई, जिसका उद्देश्य था ग्रामीण क्षेत्र के युवक-युवतियों को स्व-रोजगार के लिए प्रोत्साहित करने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना। बाद में उनके उत्पादन की खपत के लिए बाजार भी स्थानीय स्तर पर ही उपलब्ध कराना, ताकि उनका समुचित आर्थिक विकास हो सके। प्रकल्प की संकल्पना में नानाजी ने इस बात का खास खयाल रखा कि इसमें निरक्षरता आड़े नहीं आए।

है। इसमें पढ़े-लिखे या अनपढ़ सभी महिला एवं पुरुष प्रवेश पा सकेंगे। प्रशिक्षणार्थियों के लिए शैक्षणिक प्रमाण-पत्रों की कोई अनिवार्यता नहीं है।

उद्योग आरंभ करने के लिए प्रशिक्षित युवक-युवतियों का समुचित मार्गदर्शन करने की व्यवस्था उद्यमिता विद्यापीठ करता है। उसके लिए आवश्यक पूंजी की व्यवस्था विभिन्न बैंकों द्वारा संभव है। इन प्रशिक्षित ग्रामीणों को औद्योगिक इकाई आरंभ करने के लिए सरकार की ओर से सब्सिडी की सुविधा भी उपलब्ध है। स्थानीय आवश्यकता पूर्ति के बाद उत्पादित शेष माल अन्यत्र बेचने के लिए विपणन की व्यवस्था उद्यमिता विद्यापीठ खड़ी कर रहा है।

चित्रकूट के पचास कि.मी. की परिधि में कृषिजन्य पदार्थों को संस्कारित कर शहरी आबादी की आवश्यकता पूर्ति की प्रथा प्रचलित नहीं है। न ही देश के अन्य ग्रामीण इलाकों में यह प्रथा प्रचलित है। इसका लाभ बहुराष्ट्रीय कंपनियां उठा रही हैं। इस दिशा में शोध संस्थान ने कदम बढ़ाया है। यहां के जंगलों में अनेक स्वास्थ्यवर्धक फलों की उपलब्धि निसर्ग की देन है। किंतु उन फलों के औषधीय पदार्थ तथा अचार, मुरब्बे जैसे उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाने का कार्य पूर्ण रूप से उपेक्षित है। इस दिशा में विकास की पर्याप्त संभावनाएं हैं। इस क्षेत्र में औषधीय वनस्पतियां भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, किंतु स्थानीय आधार पर इन पदार्थों को जनोपयोगी बनाने की ओर अब तक किसी का भी ध्यान नहीं गया। परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का भंडार उपलब्ध होते हुए भी स्थानीय आबादी विपन्नता में जिंदगी काट रही है।

इस क्षेत्र में मानव उपयोगी पशुओं की संख्या भी काफी है, किंतु इन पशुओं के विकास का कार्य सदियों से उपेक्षित है, इसीलिए पशुधन काफी होते हुए भी यहां के निवासियों को संभव लाभ प्राप्त नहीं होता। इन पशुओं के समुचित विकास का प्रबंध किया जाए तो क्षेत्र की समृद्धि में पशुधन भी प्रभावी साधन बन सकता है। दीनदयाल शोध संस्थान ने इस दिशा में भी कदम बढ़ाया है।

कार्य योजना

■ चित्रकूट की पचास कि.मी. की परिधि में एक सौ ग्राम-समूहों का चयन किया गया है। हर एक समूह में पांच-छह ग्राम आते हैं। उनमें से अभी इक्कीस ग्राम-समूहों में विशेष गति से कार्य प्रारंभ हुआ है। खेती के अतिरिक्त औद्योगिक गतिविधियों में महिलाएं एवं पुरुष शामिल हो सकते हैं। समाज में दोनों की संख्या साधारणतः समान है, किंतु कार्य संलग्नता में महिला-पुरुषों में समानता नहीं है। औद्योगिक दृष्टि से महिलाओं को भी प्रेरित एवं प्रशिक्षित करना आवश्यक है। इसके लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने अभिनव पद्धति अपनाई है। नवविवाहित पति-पत्नी अर्थात् दोनों को एक साथ ग्राम-समूह में पूर्णकालिक कार्यरत दंपती के रूप में रखने की योजना आरंभ की गई है। सर्वांगीण विकास की दृष्टि से इसका लाभ हो रहा है। जिन इक्कीस नवदंपतियों का चयन किया गया है, उनमें से दोनों पति-पत्नी स्नातक हैं। ऐसे एक सौ स्नातक पति-पत्नी के जोड़ों का चयन कर सौ ग्राम-समूहों में नियुक्त किया जाएगा। इन्हें 'समाज

स्वास्थ्य शिल्पी दंपती' नाम दिया गया है। कारण वे समाज की युगानुकूल पुनर्रचना करने में संलग्न हैं।

■ चयनित ग्रामों में परंपरागत उद्योगों की निम्न जानकारी एकत्रित की जा रही है–

(क) कौन–कौन से परंपरागत उद्योग चयनित ग्राम समूह में चला करते थे?

(ख) उनके लिए आवश्यक कच्चा माल कहां से प्राप्त होता था?

(ग) उत्पादित माल बेचने की व्यवस्था क्या थी?

(घ) उद्योग पारिवारिक होते थे या सामूहिक?

(ङ) उनमें महिला–पुरुषों का अनुपात क्या था?

(च) ये उद्योग कब और क्यों बंद हुए?

(छ) इन उद्योगों में लगे लोगों की संतान अब अपनी आजीविका चलाने के लिए क्या कर रही है?

■ ग्राम समूह के क्षेत्र में तथा उसके चारों ओर के इलाके में कौन सा कृषिजन्य, वनजन्य, भू–गर्भजन्य तथा पशुजन्य कच्चा माल कितनी–कितनी मात्रा में उपलब्ध हो सकता है। इसका विस्तृत विवरण एकत्रित किया जा रहा है। वर्तमान में इस माल का उपयोग कहां और कैसे हो रहा है? इसकी जानकारी भी हासिल की जा रही है।

■ जो–जो कच्चा माल उपलब्ध है, उसकी पैदावार बढ़ाने के लिए क्या उपाय किए जा सकते हैं। इस बात पर चौपाल में सामूहिक विचार–विमर्श होने लगा है। अपने क्षेत्र में कच्चा माल जितनी अधिक मात्रा में पैदा होगा, उतनी ही क्षेत्र की समृद्धि बढ़ाई जा सकेगी। इसकी जानकारी लोगों को मिलने से कच्चे माल के उत्पादन में वृद्धि की संभावना बढ़ी है।

■ ग्राम समूह में कितने परिवार हैं। इसका सर्वेक्षण किया जा रहा है। इन सब परिवारों की आर्थिक स्थिति की जानकारी जुटाई जा रही है। सुख–सुविधापूर्ण पारिवारिक जीवन के लिए ग्रामीण अंचल में वर्तमान में कितनी मासिक आय की आवश्यकता है? इसका अनुमान लगाते हुए इन लोगों की आवश्यक मात्रा में आय बढ़ाने के लिए क्या करना संभव है। इस पर भी सामूहिक चिंतन कर सबके सहयोग से कार्य योजना बनाई जा रही है।

■ संभवतः स्थानीय आधार पर उपलब्ध कच्चे माल को तैयार माल में बदलने मात्र से स्थानीय लोगों की आवश्यक मात्रा में आय बढ़ाना संभव नहीं होगा। वैसे भी स्थानीय कच्चे माल द्वारा उत्पादित वस्तुओं से स्थानीय आबादी की सभी आवश्यकताएं पूरी नहीं होतीं। अतः अपने ग्राम समूहों की आबादी के लिए कौन–कौन सी वस्तुएं साल भर में कितनी मात्रा में अन्य क्षेत्रों से आयात की जा रही हैं। इसका विस्तृत विवरण तैयार किया जा रहा है।

■ इन आयातित वस्तुओं में से कौन–कौन सी वस्तुएं हैं, जिनका कच्चा माल बाहर से मंगाकर स्थानीय आधार पर उत्पादित की जा सकती हैं। इसका आकलन किया जा रहा है। वे वस्तुएं गुणवत्ता में आयातित वस्तुओं की तुलना में अधिक अच्छी एवं आकर्षक हों तथा इनकी लागत भी आयातित वस्तुओं से कम हो। इसकी संभावनाओं का अध्ययन किया जा रहा है। इसी

आधार पर स्थानीय औद्योगिक रचना विकसित करना संभव है।

■ स्थानीय कच्चे माल या बाहर से कच्चा माल मंगाकर स्थानीय आधार पर निर्मित की जानेवाली वस्तुओं के उत्पादन के लिए काम में लाई जानेवाली तकनीकी केवल परंपरागत ही हो, यह आग्रह व्यावहारिक नहीं है। कौन सी नई तकनीकी अपनाना अधिक उपयोगी होगा। इस पर भी सामूहिक विचार किया जा रहा है। नई–से–नई तकनीकी अपनाने में आपत्ति नहीं होगी। यदि वह स्थानीय आधार पर सबको लाभदायी रोजगार देने में सक्षम हो तथा प्रदूषण का कारण न बने।

■ स्थानीय आबादी के लिए कुछ आवश्यक वस्तुएं ऐसी होती हैं, जो स्थानीय आधार पर न कभी बनती थीं और न बन पाएंगी। जनजीवन की आवश्यकता पूर्ति के लिए उनका आयात करना अनिवार्य है। ऐसी वस्तुओं का साल भर में कितनी मात्रा में और कितना धन लगाकर आयात होता है। इसका ठीक से सर्वेक्षण किया जा रहा है। साल भर में आयातित वस्तुओं के लिए जितनी धनराशि आजकल क्षेत्र से बाहर जा रही है, कम–से–कम उतनी तो अन्यत्र से कमा लाना क्षेत्रीय आबादी का दायित्व है। अन्यथा क्षेत्र अर्थात् आबादी पर कर्ज बढ़ता चला जाएगा। गरीबी बढ़ती जाएगी। सार्थक जीवन जीना असंभव होगा। अतः उपलब्ध कच्चे माल से या कच्चा माल मंगाकर स्थानीय लोगों के परिश्रम तथा कला–कौशल से तैयार माल इतना अधिक पैदा करना पड़ेगा, जिससे अपनी आबादी की आवश्यकताएं पूर्ण कर उसे पर्याप्त मात्रा में निर्यात किया जा सके। इसी से आयात की हुई वस्तुओं पर हुए व्यय की पूर्ति संभव होगी। यही ग्राम स्वराज्य का मार्ग है। इसकी समुचित एवं व्यावहारिक योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करने की व्यवस्था ग्राम समूह के निवासियों की राय से बनाने की गतिविधि आरंभ हुई है।

■ उपर्युक्त कार्यों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक तकनीकी के प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था चित्रकूट में स्थापित उद्यमिता विद्यापीठ में की गई है।

अधिकाधिक सुख–सुविधाओं की चाह मानव का स्वभाव है। इसी स्वभाव के कारण मानव में आवश्यकता से अधिक संग्रह करने की लालसा काम करती है। सभी की क्षमताएं समान नहीं होतीं। अतः अधिक क्षमतावान लोग अधिकाधिक सुख–सुविधाएं बटोर लेते हैं। इस कारण कम क्षमतावालों को अभाव की विभीषिका का शिकार होना पड़ता है। अनावश्यक संग्रह की लालसा के दोष से बचने के लिए आर्थिक विकास के कार्यक्रमों के साथ–साथ समाज के सदस्यों में सद्भावना तथा परस्पर–पूरकता के मानवीय व्यवहार को प्रचलित करना जरूरी है। उसके लिए सुरुचिपूर्ण एवं संस्कारक्षम कार्यक्रमों की नियमित व्यवस्था आवश्यक है। समाज स्वास्थ्य शिल्पी दंपती इस दिशा में क्रियाशील हैं। इस कार्य में श्रव्य–दृश्य माध्यम का उपयोग अधिक परिणामजनक होता है। शोध संस्थान इसकी भी व्यवस्था कर रहा है।

□

लोकशक्ति जागरण
ग्राम विकास का उपक्रम

प्रचलित औद्योगीकरण की तकनीक का विकास एवं विस्तार नई पीढ़ी में अधिकाधिक बेकारी बढ़ा रहा है। विकसित कहे जानेवाले देशों में भी बेकारी पैर पसार रही है। मानव जीवन के आधारभूत तत्त्वों का अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का ग्रामीण अंचल में अथाह भंडार भरा पड़ा है। उसकी उपेक्षा कर नूतन संतान रोजी-रोटी की खोज में शहरों की ओर पलायन कर रही है। यद्यपि शहर उपभोग के केंद्र हैं, उत्पादन के नहीं। अतः गांवों से शहरों की ओर बढ़ रहा मानव प्रवाह अनेक समस्याओं को जन्म दे रहा है।

प्रचलित औद्योगीकरण अत्यधिक विषमता बढ़ा रहा है। फलस्वरूप, सामाजिक जीवन में अशांति, असुरक्षा तथा अपराधीकरण को बढ़ावा मिल रहा है। इस औद्योगीकरण से सतत बढ़ रहा प्रदूषण जन-स्वास्थ्य के लिए अभिशाप सिद्ध होकर प्राकृतिक संतुलन बिगाड़ रहा है।

इस अप्राकृतिक तकनीक का मानवीय विकल्प तथाकथित विकसित देश नहीं खोज सकते। उनकी जीवन-दृष्टि मानवीय न होकर अविकसित एवं विकासशील देशों का शोषण करने की है। अतः यह आवश्यक कार्य मानवता के शिखरपुरुष महात्मा गांधी एवं लोकनायक जयप्रकाशजी के देश को ही करना होगा।

प्राकृतिक संसाधनों में दो प्रकार के पदार्थ उपलब्ध हैं—रिन्यूएबल (नवीनीकृत) और नॉन-रिन्यूएबल (अनवीनीकृत)। जो पदार्थ नॉन-रिन्यूएबल हैं, उनका उपयोग सुखद भविष्य की दृष्टि से संयम के साथ सुनियोजित तरीके से करना अनिवार्य है, लेकिन इसकी परवाह विकसित कहे जानेवाले शोषक देशों को बिलकुल नहीं है। परिणामस्वरूप, अविकसित एवं विकासशील देशों का भविष्य खतरे में पड़ा है। यदि वर्तमान औद्योगीकरण की तकनीकी-प्रक्रिया यथावत् चलती रही, तो अविकसित एवं विकासशील देशों का भविष्य सुधर पाना असंभव होगा।

भारत एवं भारत जैसे अन्य विकासशील देशों में प्राकृतिक संसाधनों के अनेक स्रोत विद्यमान हैं। मानव जीवन के लिए वे स्वास्थ्यकर एवं उपयोगी हो सकते हैं। अतः ग्रामीण तकनीकी अनुसंधान के लिए बहुत बड़ा नया क्षेत्र भी उपलब्ध है। इस मानव कल्याण के कार्य की अधिक

जे.पी. फाउंडेशन की रूपरेखा। गांवों में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों से रोजगार पैदा करने के इस प्रकल्प का प्रारूप अक्तूबर 2003 में तैयार किया गया।

उपेक्षा न हो। इसीलिए दीनदयाल शोध संस्थान ने जे.पी. जन्म शताब्दी समारोह के वर्ष में 'जे. पी. ग्रामीण तकनीकी अनुसंधान एवं विस्तार प्रतिष्ठान' की चित्रकूट में स्थापना की है।

प्रतिष्ठान के कार्य

- गांव के सभी निवासी एक परिवार के रूप में परस्पर-पूरक बनकर ग्रामीण जीवन को खुशहाल एवं आकर्षक बनाएं, इसका प्रयास किया जा रहा है।
- सभी कार्यक्षम महिला-पुरुषों को लाभदायक रोजगार उपलब्ध हो, इसके लिए नए-नए प्रयोग किए जा रहे हैं।
- उत्पादन की विधियां प्रदूषण मुक्त रखने का लक्ष्य सामने रखकर काम हो रहा है।
- स्थानीय उपलब्ध कच्चे माल के आधार पर ही उत्पादन केंद्र प्रस्थापित किए जा रहे हैं।
- यातायात की सुविधा की दृष्टि से हर एक आबादी को पक्की सड़कों से जोड़ने में लोग प्रयासरत हैं।
- हमारे गांव बाबा आदम के जमाने में बसे हुए हैं। प्रकृति की गोद में होते हुए भी गांवों के परिसर एवं आवास स्वास्थ्यवर्धक नहीं हैं। सुविधानुसार उनकी नवरचना कर उन्हें स्वास्थ्यवर्धक एवं प्राकृतिक सौंदर्य से सजाने के लिए ग्रामवासियों को प्रेरित किया जा रहा है।
- हर साल वर्षा के जल का भू-गर्भ जल से मिलन की विधियां प्रचलित की जा रही हैं। भू-गर्भ जल का स्तर नहीं घटने पाए, यह प्रयास हो रहा है।
- हर एक आबादी के लिए शुद्ध पेयजल का प्रबंध करने की योजना बनाई जा रही है।
- पशु-पालन एवं गो-संवर्धन को लोकप्रिय बनाया जा रहा है। जैविक कृषि उत्पादन एवं कुपोषण निवारण के लिए यह कार्य वरदान सिद्ध हो सकता है।
- कृषि भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रखने एवं जन स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिए जैविक कृषि पद्धति को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाया जा रहा है। इससे जहां कृषि लागत घट रही है, तो उत्पादन भी बढ़ रहा है।
- खाद्य पदार्थों का परिरक्षण करना आरंभ किया है। महिलाओं को लाभदायक स्वरोजगार उपलब्ध कराने में यह कार्य सहायक सिद्ध हो रहा है।
- सब प्रकार की प्रगति के लिए बिजली का माध्यम सर्वाधिक प्रभावी है। अतः वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोतों का भी उपयोग बढ़ाने पर बल दिया जा रहा है।
- गांव की नूतन संतान शिक्षित एवं गुणवान बने, इसलिए गांव के सभी अभिभावक, प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक एवं आबादी के प्रभावी लोगों की सम्मिलित विचार-गोष्ठियां आयोजित की जा रही हैं। परिणामस्वरूप गांवों में नूतन संतान के लिए संस्कारक्षम वातावरण निर्माण होने लगा है।
- हर गांव में नन्हे-नन्हे बच्चों के खेलने के लिए आकर्षक बालोद्यान निर्माण कराया जा

रहा है। इसमें बच्चों द्वारा खेल-खेल में फूलों के पौधे लगवाने का काम भी हो रहा है। परिणामस्वरूप सहज में ही बच्चों में रचनात्मक भाव पैदा हो रहा है।

- उपर्युक्त कार्यों के लिए चित्रकूट के चारों ओर के पांच सौ गांवों का चयन किया है। ये पांच सौ ग्राम 'जे.पी. फाउंडेशन फॉर रूरल टेक्नॉलोजिकल रिसर्च' की प्रयोगशाला के रूप में काम आ रहे हैं।

लोक जागरण की आवश्यकता

आजकल ग्राम विकास पर बहुत बल दिया जा रहा है। यह अभिनंदनीय है। आए दिन सरकारी तथा गैर-सरकारी स्तर पर ग्राम विकास को लेकर विचार-गोष्ठियों का तांता लगा हुआ है। इसी विषय पर बड़े पैमाने पर साहित्य भी प्रकाशित हो रहा है, लेकिन आश्चर्य एवं दु:ख की बात है कि इन विचार-गोष्ठियों और प्रकाशनों का माध्यम अंग्रेजी भाषा है। इन गोष्ठियों में बढ़-चढ़कर भाग लेनेवाले वे लोग हैं, जो बड़ी-बड़ी डिग्रियों से विभूषित हैं। उन्हें ग्राम जीवन का प्रत्यक्ष ज्ञान एवं अनुभव कम है। वह स्वयं को सर्वज्ञ समझते हैं। वैचारिक स्तर पर ग्रामीण बंधु-बहनों के योगदान की वह आवश्यकता अनुभव नहीं करते। अत: इन अंग्रेजी माध्यम से पढ़े-लिखे लोगों द्वारा बनी योजनाएं ग्रामीणों की भावनाओं, धारणाओं, आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं से वंचित रहती हैं। इन योजनाओं को ग्रामीण जन अपनी योजनाएं नहीं मानता। अत: इनके कार्यान्वयन में उनकी पहल या योगदान नगण्य सा रहता है। इन योजनाओं को सरकारी योजनाएं समझकर ग्रामीण उनसे आर्थिक एवं व्यक्तिगत लाभ कैसे उठा सकता है, इतना भर सोचना और करना है। इनके कारण ग्रामीण विकास की भावना जाग्रत् नहीं होती। परिणामस्वरूप देश भर में आज तक सर्वांग्रीण ग्राम विकास का नमूना खड़ा नहीं हो पाया। अत: हमें निम्नलिखित बातों को आधार बनाकर विकास की दिशा प्रस्तुत करनी होगी—

- अनंत काल से अखंड रूप से चले आ रहे ग्रामीण जीवन में ऐसी मौलिकताएं अवश्य होंगी, जो वर्तमान काल में भी संपूर्ण समाज के लिए (ग्रामीण और शहर) उपयोगी हो सकती हैं। उनकी खोज करना तथा उनका राष्ट्र की नवरचना में समुचित उपयोग करना होगा।
- ग्रामीण परिसर में रहने वाले लोग निरक्षर हो सकते हैं, लेकिन उन्हें सर्वथा अशिक्षित मानना गलत होगा। उनमें से अनेक में विचारशक्ति, योजकवृत्ति तथा प्रतिभा है। उनके उपयोग की समुचित विधि अपनाए बिना ग्रामीण जीवन आत्मनिर्भर नहीं बनेगा।
- ग्राम विकास में स्थानीय महिलाओं एवं पुरुषों के सक्रिय सहकार का रूप विकसित करना होगा।
- ग्रामों के विकास का अर्थ ग्रामों का शहरीकरण करना नहीं हो सकता। वर्तमान शहर पाश्चिमात्य औद्योगिक सभ्यता के प्रतिबिंब मात्र हैं। उनमें भी भारतीय जीवन-मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा करने का काम ग्राम विकास के माध्यम से ही संभव होगा।

- केवल आर्थिक विकास या भौतिक समृद्धि में ही ग्राम विकास की इतिश्री नहीं है। मानव एकात्म प्राणी है। उसमें शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक शक्तियां विद्यमान हैं। इन चारों का संतुलित विकास ग्राम विकास का लक्ष्य होना चाहिए। संसार में जहां कहीं वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार हुए हैं या होंगे, उन्हें अपने मानवीय जीवन-मूल्यों के सांचे में ढालकर अपनाना होगा।
- व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन में परस्पर-पूरकता निर्माण करना अनिवार्य है। सामाजिक अस्तित्व एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन की यह प्राथमिकता है। इस संतुलित जीवन को विकसित करना ग्राम विकास की विशेषता होगी।
- पुरातन एवं नूतन पीढ़ी में परस्पर सद्भावना एवं सामंजस्य बनाएं रखना अति आवश्यक है। उसके बिना परंपरागत जीवन के स्थायी मूल्यों को कायम रखना संभव नहीं होगा।

□

स्वतःस्फूर्त युवाशक्ति
सर्वांगीण विकास का संकल्प

मराठवाड़ा का विशाल भूभाग लगभग हर साल अकाल की चपेट में आ जाता है। प्रशासकीय दृष्टि से इसमें सात जिले तथा 97 लाख की आबादी है। यह हिस्सा पूर्व में निजाम के शासन में था, अब महाराष्ट्र के अंतर्गत आता है। महाराष्ट्र औद्योगिक, शैक्षणिक और प्रशासकीय दृष्टि से देश के सर्वोत्तम राज्यों में से एक है, किंतु उसी का अभिन्न अंग मराठवाड़ा अति पिछड़ा क्षेत्र है। सरकारी सर्वेक्षण के अनुसार इस क्षेत्र में 73 लाख लोग इस वर्ष भी अकालग्रस्त हैं। जलाभाव की भीषण समस्या से यहां का जनजीवन असह्य है। आज के कंप्यूटर युग में भी यहां ऐसे जिले हैं, जहां लोगों ने रेलगाड़ी तक नहीं देखी।

पथरीली जमीन व छोटे-बड़े पहाड़ों से पूरा जिला भरा पड़ा है। हरियाली बहुत कम नजर आती है। प्रतिवर्ष 7 इंच से 12 इंच तक वर्षा होती है। पीने का पानी तो साल भर में केवल जुलाई, अगस्त, सितंबर और अक्तूबर के महीने में ही उपलब्ध होता है। शेष समय सरकार टैंकरों से पीने का पानी पहुंचाने का प्रयास करती है। यह समस्या का स्थायी निराकरण नहीं। भूगर्भ जलस्तर निरंतर घट रहा है।

बीड़ जिले की पाटोदा व आष्टी तहसील जलाभाव की दृष्टि से अधिक त्रस्त हैं। इसी कारण दीनदयाल शोध संस्थान ने पाटोदा तहसील के सुदूर ग्राम 'डोमरी' को अपने प्रयोग का केंद्र बनाया। यहां जलाभाव निराकरण के व्यावहारिक प्रयोगों से शुरुआत कर सोनदरा क्षेत्र को संस्थान ने अपने प्रयोगों का केंद्र बनाया। संस्थान इस क्षेत्र में शिक्षा, रोजगार और स्वास्थ्य संबंधी परियोजनाएं चलाने में कार्यरत है। कार्यदृष्टि से बीड़ जिले में तीन केंद्र हैं—

- बीड़ शहर
- डोमरी, ता. पाटोदा
- अंबाजोगाई

खेती का प्रशिक्षण

दुर्भाग्य है कि सरकारी योजनाओं को कार्यान्वित करनेवाले तंत्र ने विकास कार्यों में आम

बीड़ प्रकल्प की रूपरेखा। महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र में स्थित बीड़ जिला 1987 में दीनदयाल शोध संस्थान के ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का केंद्र बना। साल भर में 15-20 से.मी. वर्षा देखनेवाला यह सूखाग्रस्त भूभाग संस्थान के प्रयासों से शस्यश्यामला हो उठा है। स्रोत: डीआरआइ दस्तावेज।

लोगों की सहभागिता प्राप्त करने की दिशा में कुछ नहीं किया। यदि विकास कार्यों में सर्वसाधारण विशेषतः युवा वर्ग का स्वयंस्फूर्त सहकार लिया गया होता तो बहुत कम लागत में देश का आज से कई गुना विकास हो गया होता। इस क्षेत्र के किसानों के पास सैकड़ों एकड़ खेती योग्य भूमि तो है परंतु जमीन पहाड़ी ढलानों पर होने के कारण खेती के लिए आवश्यक उचित प्रशिक्षण इन लोगों के पास नहीं है। दुर्भाग्यवश सीढ़ीदार खेती आज तक किसी ने इन्हें नहीं सिखाई। शोध संस्थान इस दिशा में युवाशक्ति के सहयोग से यह कार्य करके दिखाएगा। इस उद्देश्य से अंबाजोगाई में 'कृषि विज्ञान केंद्र' की स्थापना हुई है।

खेती की उत्पादकता बढ़ाने के लिए किसानों को नए-नए प्रयोगों का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था इस केंद्र के अंतर्गत होती है। केंचुआ खाद निर्माण, बकरी पालन, वराह पालन, मुरगी पालन, कंपोस्ट खाद और कीटनाशक, मिट्टी परीक्षण, पानी परीक्षण आदि प्रशिक्षण दिए जाते हैं। ग्रामीण युवकों का संघ बनाकर खेती के विकास की दृष्टि से उनको अन्य स्थानों का भ्रमण कराकर प्रत्यक्ष ज्ञान देने का कार्य होता है। गोपालन का उपयोग और संकेंद्रीय खेती की उपयुक्तता बताने का कार्य भी कृषि विज्ञान केंद्र के तहत होता है।

युवा शक्ति का उपयोग

तीन शक्तियों के त्रिवेणी संगम को आधार बनाकर विकास कार्य करने का संकल्प दीनदयाल शोध संस्थान ने किया है। प्रथम शक्ति, बीड़ जिले का युवा वर्ग। पढ़े या बेपढ़े युवक युवतियां जो 15 से 40 साल की आयु के बीच के हैं, इस वर्ग में आते हैं। दूसरी शक्ति है प्रशासन तंत्र की। तीसरी शक्ति है धनिक वर्ग की जिनसे वित्तीय सहायता लेकर शिविरों की व्यवस्था की जा सकती है। इन शिविरों में युवा वर्ग के श्रम से स्थानीय विकास कार्यों को सफल बनाने के प्रयोग होंगे। युवाशक्ति स्वयं सोचे—'समाज मेरा है, उनकी समस्याएं मेरी समस्याएं हैं, उन समस्याओं का निराकरण करना मेरा अपना काम है जो मैं अपनी खुशी व स्वप्रेरणा से करूंगा।'

ग्राम स्वावलंबन

गांव का विकास, देश का विकास—इस विचार से बीड़ जिले में 100 गांवों को स्वावलंबी बनाने का लक्ष्य रखा है। कोई भी गरीब न रहे, कोई भी बेकार न रहे, कोई निरक्षर तथा बीमार न रहे। इस उद्देश्य से गांवों में कार्य हो रहा है। यह कार्य युवा पति-पत्नी के द्वारा होता है, जिन्हें 'समाज शिल्पी दंपती' कहा जाता है।

गुरुकुल शिक्षा पद्धति

प्राचीन काल के गुरुकुलम् पद्धति में युगानुकूल परिवर्तन करके विद्यार्थियों के शरीर, मन, बुद्धि का पूर्ण विकास तथा समाज के दायित्व को निभाने का कर्तृत्व संपन्न कराना, स्वाभिमानी, स्वावलंबी नागरिक बनाने का प्रकल्प है गुरुकुलम्। ग्रामीण विद्यार्थियों को भारतीय संस्कृति

तथा परंपरा, साहित्य तथा व्यावहारिक जीवन की शिक्षा देकर आदर्श व्यक्तित्व बनाने के उद्देश्य से गुरुकुलम् का प्रारंभ हुआ है। यहां 24 घंटे की दिनचर्या होती है। यहां उपासना, खेल, गौसेवा, खेती, संगीत, कला के माध्यम से सहजीवन की अनुभूति देकर विकास का कार्य होता है। यह विद्यालय नहीं एक बड़े परिवार की तरह काम करता है। कोई बड़ा नहीं, कोई छोटा नहीं परंतु परिवार पद्धति से अपने दायित्व का निर्वाह होता है। परस्पर-पूरकता, परस्पर-सहकार्य इस गुरुकुलम् का आधार है। यहां विद्यार्थियों को रोजगार के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी है।

गुरुकुलम् के परिसर में आनेवाले ग्रामों में कार्यकर्ता तथा बच्चों के सहभाग से ग्राम स्वावलंबन का कार्य हो रहा है। शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वावलंबन, सदाचार इन पहलुओं के माध्यम से गांवों में परिवर्तन का कार्य हो रहा है। अपने देश में आनेवाली नैसर्गिक आपदा से पीड़ित लोगों के लिए गांव से सहकार्य लेकर इस गुरुकुलम् ने महान् योगदान किया है। गुरुकुलम् की पढ़ाई पूरी करने के बाद जो विद्यार्थी आगे की पढ़ाई करते हैं, किसी व्यवसाय का प्रारंभ करते है, नौकरी करते हैं, ऐसे सभी विद्यार्थियों से संस्थान जुड़ा रहता है और विद्यार्थी भी अपना अंशतः योगदान देते हैं।

स्वरोजगार को बढ़ावा

आज के परिवेश में उद्योग के बिना युवा वर्ग आगे नहीं बढ़ पाएगा। नौकरियां सबको मिलना असंभव है। शिक्षित बेरोजगारी की संख्या बढ़ती जा रही है। स्वावलंबन से पुरुषार्थमय जीवन जीने के विचार को साकार रूप देने का प्रयत्न 'उद्यमिता विद्यापीठ' द्वारा किया जाता है। वेल्डिंग, चॉक बनाना, सिलाई, अचार-मुरब्बा, स्क्रीन प्रिंटिंग आदि प्रशिक्षणों की उद्यमिता द्वारा व्यवस्था की जाती है। गुरुकुलम् के विद्यार्थियों को कक्षा 5 से 10 तक 'पढ़ाई के साथ कमाई' के उद्देश्य से अनेक उद्योगों का प्रशिक्षण दिया जाता है। भविष्य में इन बालकों को नौकरी हेतु कहीं लाचार न होना पड़े, यही उद्देश्य उद्यमिता विद्यापीठ का है। इसके साथ-साथ गांव के युवक-युवतियों को भी व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता है। महिलाओं को प्रशिक्षण देकर उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, ऐसा भी प्रयास किया जाता है।

अर्धशिक्षित अथवा जो बिलकुल पढ़े ही नहीं, ऐसे युवक-युवतियों को व्यवसायिक प्रशिक्षण देकर उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने का प्रयास इस 'जन शिक्षण संस्थान' के माध्यम से होता है।

ढेरों हैं प्रकल्प

- **गोकुल** : जो पति-पत्नी नौकरी करते हैं, केवल उनके बच्चों का संस्कारक्षम लालन-पालन हेतु इसका प्रारंभ किया गया है। गीता के श्लोकों, खेल आदि के माध्यम से 'हम सब एक हैं' यह भाविक संस्कार डालने के लिए गोकुल की स्थापना हुई है। इसमें एक वर्ष से लेकर 5-6 वर्ष तक के बाल-बालिकाओं के आत्मीयता के साथ लालन-पालन की व्यवस्था है।
- **स्वच्छंद** : दो से साढ़े तीन वर्ष की आयु तक के बच्चों पर सामाजिकता का संस्कार करने के

उद्देश्य से यह चलता है। स्वच्छंद में शिशु मुक्त व्यवहार करता है, परंतु उसमें भी सामूहिकता का संस्कार पाता है।

- **संस्कार वर्ग**—5 से 15 वर्ष की आयु के बाल-बालिकाओं का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं वैचारिक दृष्टि से गुणात्मक एवं कलात्मक विकास करने के साथ-साथ उन पर समता-ममता-समरसता के संस्कार करना इसका उद्देश्य है। शहर की बस्तियों में ये वर्ग चलाए जाते हैं। श्लोक, गीता पाठ, गीत तथा खेलों के माध्यम से बालकों को सुसंस्कारित करने का यह प्रयास है।
- **बाल जगत्**—यह बाल-बालिकाओं के विकास का ही केंद्र है। नृत्य, संगीत, चित्रकला, हस्तकला तथा विभिन्न खेलों के माध्यम से उनका शारीरिक और मानसिक विकास करना केंद्र का उद्देश्य है।
- **मेरी बचत योजना**—बचपन से ही बचत का संस्कार करने हेतु यह बच्चों का एक बैंक है। इसका उद्देश्य है बच्चों द्वारा वर्ष भर पैसे इकट्ठे करना और वर्षारंभ में साहित्य लेने हेतु उस राशि का उपयोग करना।
- **दीनदयाल संस्कार केंद्र**—10वीं पास बच्चों की 12वीं तक पढ़ाई के लिए निवास व्यवस्था तथा उनकी क्षमताओं को विकसित करने का यह एक प्रयास है। साथ-साथ व्यावहारिक जीवन का संस्कार करने का उद्देश्य भी इस केंद्र का है।
- **महिला उद्योग प्रशिक्षण प्रतिष्ठान**—महिला शक्ति को जागृत करना तथा परिवार के लिए उपयुक्त और परिवार के सदस्यों का सहयोग लेकर लघु उद्योग करने की आज की आवश्यकताओं का महिलाओं को ज्ञान उपलब्ध कराने का कार्य यह प्रतिष्ठान करता है। अपने गृहकार्य से जो समय बचता है उसका कला प्रशिक्षण लेकर अर्थार्जन हेतु महिलाएं उपयोग कर सकती हैं।
- **दीनदयाल वाचनालय**—आज की स्थिति में किताबें पढ़ना कम होता जा रहा है। पढ़ने से ज्ञान बढ़ता है, परंतु टी.वी. के कारण यह काम नहीं के बराबर हो रहा है। घर में यदि माता कुछ पढ़ेगी तो बालक भी पढ़ेंगे, इस उद्देश्य से वाचनालय प्रारंभ हुआ है। इस वाचनालय में महापुरुषों की जीवनी पढ़ने के लिए विशेष तौर पर उत्साहित किया जाता है।
- **शिशु वाटिका**—खेल-खेल में पढ़ाई कैसे हो, बस्ते के बोझ से लादने की परंपरा कैसे दूर हो, इसके लिए शिशु वाटिका में एक सहज स्वाभाविक वातावरण तैयार किया जाता है। पढ़ाई के साथ-साथ बचपन से ही समाज और देश के प्रति आदर की भावना जगाई जाती है। स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन और बौद्धिक विकास के लिए तरह-तरह की योजनाएं चलाई जाती हैं।

□

चित्रकूट प्रकल्प
चतुष्पुरुषार्थ का प्रकटीकरण

हम जिस ग्राम विकास का कार्य प्रारंभ करने जा रहे हैं, उसमें हम यदि सर्वेक्षण कार्य में दो-तीन माह लगे रहे और काम सर्वेक्षण के बाद प्रारंभ करने का विचार किया तो काम के प्रति लोगों की रुचि बढ़ाना तथा उनका सहयोग पाना कठिन हो जाता है। अतः सर्वेक्षण के साथ-साथ हमें प्रत्यक्ष विकास कार्य के कुछ ऐसे कार्यक्रम भी प्रारंभ करने होंगे, जिनके माध्यम से आम लोगों में अपने काम के प्रति रुचि उत्पन्न हो। इस दृष्टि से हमें ग्राम्य जीवन के विभिन्न पहलुओं को ध्यान में रखते हुए निम्न प्रश्नों संबंधी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए।

परिवार

ग्राम कितने भागों व पुरवों में बसा है? प्रत्येक भाग व पुरवे में कितने परिवार रह रहे हैं? हर परिवार में छोटे-बड़े कितने व्यक्ति हैं? उनमें महिला, पुरुष एवं बालक-बालिकाएं किस-किस आयु के हैं? परिवार की आर्थिक स्थिति कैसी है? परिवार की आजीविका का प्रमुख माध्यम क्या है? परिवार में कितने लोग (महिला-पुरुष) कमाई के काम में संलग्न हैं? उनकी कमाई के माध्यम क्या-क्या हैं? अपनी आय बढ़ाने के लिए परिवार की क्या कोई आकांक्षा है? उस आकांक्षापूर्ति की दिशा में वे क्या सोच रहे हैं? क्या परिवार का कोई व्यक्ति अपना ग्राम छोड़कर कमाई करने अन्यत्र गया है? कहां गया और किस मौसम में? कितने काल से? साल में कितने दिन अपने परिवार में रहने आता है? कौन से मौसम में? अकेला ही गया है या पत्नी एवं बच्चों सहित गया है?

आर्थिक विकास

परिवार में कमाने लायक आयु के कितने व्यक्ति बेकार हैं? वे क्या करने की सोच रहे हैं?

चित्रकूट प्रकल्प की कार्य योजना। गोंडा एवं बीड़ प्रकल्प से प्राप्त अनुभवों और चुनौतियों को दृष्टि में रखकर चित्रकूट प्रकल्प सन् 1991 में आरंभ हुआ। चित्रकूट मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की सीमा पर स्थित है। इस प्रदेश में अधिकतर पिछड़ी एवं वनवासी जातियां रहती हैं। प्राकृतिक संसाधनों से युक्त होते हुए भी इस क्षेत्र का समुचित विकास नहीं हुआ था। अब संस्थान के प्रयासों से यहां के ग्रामीणों की जिंदगी ही बदल गई है।

क्या वे कमाई का नया माध्यम अपनाने एवं उसके लिए प्रशिक्षण लेने की मन:स्थिति में हैं? परिवार में खेती योग्य कितनी जमीन है? किस विधि से खेती की जाती है? कौन-कौन सी फसलें ली जा रही हैं? प्रति एकड़ उत्पादन कितना है? ग्राम की खेती में जितना खाद्यान्न पैदा होता है, क्या वह सब निवासियों के उदर-भरण के लिए (साल भर को) पर्याप्त है? कितना अधिक या कम है? क्या खेती से जुड़ा कोई अन्य धंधा किया जा रहा है? क्या करने की अभिलाषा है? ग्राम में कौन-कौन से ग्रामीण उद्योग चल रहे हैं? हर एक में कितने परिवार लगे हैं? उन उद्योगों की स्थिति कैसी है? उन उद्योगों में आधुनिक तकनीकी का उपयोग कर उत्पादन का स्तर तथा मात्रा बढ़ाना संभव है? उस ग्राम में कौन-कौन से पुरातन उद्योग बंद पड़े हैं? क्यों बंद पड़े हैं? उस ग्राम में तथा आस-पड़ोस के गांवों में कच्चे माल के रूप में क्या-क्या उपलब्ध है? क्या उपलब्ध कच्चे माल को स्थानीय स्तर पर तैयार माल के रूप में परिवर्तित कर उसके बेचने का काम किया जा सकता है? इसके लिए उस ग्राम में प्रशिक्षण लेने के लिए क्या युवक-युवतियों की मानसिक अनुकूलता है? ग्राम में अलाभकर जोत वाले किसान परिवार कितने हैं? उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए कौन से उपाय संभव हैं?

भूमिहीन परिवार कितने हैं? उनके जीवन-निर्वाह के साधन क्या हैं? उन्हें साल में कितने दिन काम मिलता है? उन्हें प्रतिदिन मजदूरी कितनी मिलती है? इन परिवारों के युवक-युवतियों को प्रशिक्षित कर किन उद्योगों में लगाना संभव है?

ग्राम या ग्राम के परिसर में कौन-कौन से वृक्ष उपलब्ध हैं? वे क्या आय के माध्यम हैं? उनमें फलों के, इमारती लकड़ी के तथा ईंधन के लिए उपयोगी वृक्ष कितने-कितने हैं? उनमें से कितने निजी संपत्ति के रूप में हैं, कितने पंचायत के अधिकार में हैं तथा कितने प्रादेशिक या केंद्रीय सरकारी भूमि पर हैं? सबकी व्यवस्था क्या है? वर्तमान व्यवस्था के संबंध में ग्राम निवासियों की राय क्या है? क्या नया वृक्षारोपण कार्य प्रचलित है? ग्राम या ग्राम परिसर में और अधिक वृक्ष प्रति वर्ष लगाने की संभावना हो सकती है? ग्राम में चारागाह के रूप में कितनी भूमि (एकड़ों में) उपलब्ध है? इसका उपयोग किस रूप में हो रहा है?

ग्राम में पशुधन के रूप में कौन-कौन से जानवर हैं? बैलों से खेती कितनी मात्रा में की जाती है? खेतों को जोतने का काम ट्रैक्टरों के द्वारा कितनी मात्रा में हो रहा है? ग्राम में दूध देनेवाले पशु—गाय, भैंस, बकरियां—कितनी संख्या में हैं? साधारणत: प्रति गाय, प्रति भैंस तथा प्रति बकरी से रोज कितना दूध प्राप्त होता है? पशु नस्ल सुधार की व्यवस्था क्या है? वह कितनी लोकप्रिय एवं परिणामजनक है? उसके परिणाम क्या हैं? क्या पशुपालन, पशुसंवर्धन व दूध उत्पादन का कार्य बढ़ाया जा सकता है? क्या गोबर गैस का उपयोग लोकप्रिय बनाया जा सकता है?

खेती के लिए आवश्यक उपकरणों का उत्पादन जिले में होता है या उन्हें जिले के बाहर से मंगाना पड़ता है? क्या आधुनिक तकनीक के कारण खेती उपकरणों में सुधार हुआ है या पुरातन उपकरणों का ही उपयोग हो रहा है? नए उपकरणों में कौन-कौन से उपकरण लाभकारी सिद्ध हो रहे हैं? कौन-कौन से उपकरण हानिकर सिद्ध हो रहे हैं?

विराट् पुरुष

खेतों में रासायनिक खाद का उपयोग कितनी मात्रा में हो रहा है? रासायनिक खाद के लाभ और हानि की दृष्टि से किसानों के क्या अनुभव हैं? क्या खेती की उर्वरा-शक्ति घट रही है? उसके कारण क्या हैं? उर्वरा-शक्ति कायम रखने तथा बढ़ाने के लिए कौन से उपाय करने चाहिए? इसकी चर्चा ग्राम के किसानों में होती है क्या? उनका मत क्या है? ग्राम में सिंचाई का प्रबंध क्या पर्याप्त है? सिंचाई के साधन क्या हैं? उन्हें बढ़ाना क्या संभव है?

आवास

ग्राम के निवासियों के घर कैसे हैं? कितने परिवारों के घर या झोंपड़ियां उनकी अपनी जमीन पर नहीं हैं—इसके बदले में उन्हें जमीन मालिक को क्या देना पड़ता है? कितने परिवारों के रहने की जगह मानवीय आवास के योग्य नहीं है? ग्राम में कितने वृद्ध लोग हैं, जो असहाय अवस्था में दिन काट रहे हैं? उनके लिए क्या कोई प्रबंध करना संभव है?

ग्राम के अंदर रास्ते और गलियों की हालत कैसी है? ग्राम के निवासियों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था कैसी है? क्या शुद्ध पेयजल उपलब्ध है?

क्या नन्हे-नन्हे बच्चे एवं बालक-बालिकाओं को नित्य-प्रति दूध उपलब्ध होता है? उनके भोजन में नित्य-प्रति कौन-कौन सी खाद्य सामग्री होती है? उनके लिए अधिक पौष्टिक आहार उपलब्ध कराना क्या संभव है? किस प्रकार से? ग्राम में आर्थिक एवं सामाजिक विषमता का रूप क्या है? इस विषमता को घटाने के संबंध में क्या ग्राम में कोई चिंता कर रहा है? इस दिशा में क्या करना संभव है? ग्राम में क्या दलबंदी है? उसके कौन-कौन से दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं? दलबंदी के कारण आपसी तनाव घट रहा है या बढ़ रहा है? क्या ग्राम में निष्पक्ष एवं सर्वमान्य व्यक्ति हैं? ऐसे सर्वमान्य व्यक्तियों की संख्या पूरी आबादी में कितनी है?

महिलाओं में पारिवारिक जीवन के साथ ही क्या सामाजिक या धार्मिक जीवन किसी रूप में प्रचलित है? इस दृष्टि से क्या करना आवश्यक है? क्या ग्राम के सभी परिवारों में सामूहिक कार्यक्रमों की विधियां प्रचलित हैं? इस दृष्टि से कौन से कार्यक्रम अपनाना संभव है? ग्रामीण जनता में प्रामाणिकता, नैतिकता एवं सदाचारी जीवन विकास की दृष्टि से कोई प्रयास होता है? नहीं होता तो इस दिशा में क्या करना संभव है? ग्राम में पूजा-स्थल कितने हैं? उनकी दशा क्या है? वहां नियमित पूजा-पाठ की क्या कोई व्यवस्था है? इस संबंध में ग्रामवासियों का क्या विचार है? ग्राम में कथा-कीर्तन आदि की प्रथा क्या प्रचलित है? इस विषय में ग्रामीणों का क्या विचार है?

शिक्षा

ग्राम में कितने महिला-पुरुष पढ़े-लिखे हैं? कितने लोग औपचारिक शिक्षा की दृष्टि से ग्रेजुएट, बारहवीं, मैट्रिक या मिडिल पास हैं? इन शिक्षितों का ग्राम के अशिक्षित नागरिकों की दृष्टि से क्या कोई उपयोग हो रहा है? क्या ग्राम में विद्यालय है? किस कक्षा तक है? नहीं है तो

ग्राम से कितनी दूरी पर प्राथमिक या सेकेंडरी विद्यालय चल रहे हैं? ग्राम के पढ़ने योग्य आयु के कितने बालक एवं बालिकाएं स्कूल में पढ़ने नहीं जाते? क्या इन्हें स्कूल जाने के लिए प्रेरित किया जा सकता है? पारिवारिक विवशता के कारण स्कूल न जा पानेवाले बालक-बालिकाओं को उन्हें उपलब्ध अवकाश के काल में पढ़ाने की कोई व्यवस्था करना संभव है? क्या विद्यालयों में पढ़ाने वाले महिला-पुरुष विद्यालय के समय के अतिरिक्त समय को अपनी रुचि के अनुसार किसी सामाजिक कार्य में लगाते हैं? क्या इस दृष्टि से कोई नए एवं लाभकारी कार्यक्रम अपनाए जा सकते हैं?

क्या ग्रामीण विद्यालय के सुधार एवं विकास में ग्रामीण महिला-पुरुषों का योगदान संभव है? किस प्रकार एवं किस रूप में? क्या ग्राम के नागरिकों में एवं विद्यालयों में पढ़ानेवाले अध्यापक-अध्यापिकाओं में आपसी विचार-विनिमय की विधि विकसित करना संभव है? विद्यालयीन विषयों के अतिरिक्त विद्यार्थियों के लिए जीवनावश्यक ज्ञान की प्राप्ति, मानवीय गुणों के विकास एवं सामाजिक जीवन का अभ्यास कराने की दृष्टि से अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुष एवं अभिभावक मिलकर कौन-कौन से कार्यक्रम अपना सकते हैं?

साधारणतः ग्रामीण विद्यालय में विद्यार्थियों के लिए उपयोगी पुस्तकालयों का अभाव रहता है। ग्रामों में भी सार्वजनिक वाचनालय तथा पुस्तकालय नहीं होते। इस अभाव को दूर करने के लिए सहयोग से क्या किया जा सकता है? विद्यालयों की संख्या में वृद्धि के साथ-साथ विद्यालयों में खेलों के कार्यक्रमों की उपेक्षा बढ़ रही है। इस कारण नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास अवरुद्ध हो रहा है। ग्रामीण अंचल के विद्यालयों से इस कमी को दूर करने की दिशा में क्या किया जाना संभव है? क्या योगासनों का अभ्यास तथा व्यायामशालाओं का प्रबंध करना संभव है? संभव है तो उसे किस प्रकार से व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाए? पुरातन काल में ग्रामीण अंचल में भी ललित कलाओं का बहुत महत्त्व था, किंतु शतकों से उनकी उपेक्षा हो रही है। जीवन रुक्ष बनता जा रहा है, अतः इस दिशा में क्या-क्या किया जाना संभव है?

हर ग्राम में शिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हैं। उनकी सहायता से ग्राम से निरक्षरता का उन्मूलन संभव हो सकता है। तभी वाचनालय एवं पुस्तकालयों का पूरा उपयोग होगा। स्वाध्याय में रुचि बढ़ेगी। ज्ञान एवं समझदारी का स्तर ऊंचा उठेगा, अतः इस दिशा में बढ़ने की प्रक्रिया कैसे प्रारंभ की जाए? शिक्षित व्यक्तियों की सहायता से ग्राम में दो या तीन विशेष स्थानों पर स्थायी रूप से ब्लैक बोर्ड लगाकर उन पर समाचार-पत्रों में प्रकाशित विशेष समाचार लिखना ग्रामीण लोगों के लिए उपयोगी संभव हो सकेगा क्या?

स्वास्थ्य

ग्राम निवासियों में (बच्चों में, महिला-पुरुषों में एवं वृद्धजनों में) सामान्यतः कौन-कौन सी बीमारियां पाई जाती हैं? उन बीमारियों के उपचार की प्रचलित विधियां क्या हैं? परंपरागत प्रचलित उपचारों के परिणाम क्या हैं? क्या वे अभी भी लोकप्रिय हैं? घातक बीमारियों से मुक्ति पाने की

दृष्टि से शैशवावस्था में ही अनेक टीके लगाने का कार्य सरकार की ओर से चलाया जा रहा है। क्या उसका लाभ ग्राम के निवासियों के लिए उपलब्ध है? उसे अधिक उपयोगी कैसे बनाया जा सकता है? सरकार द्वारा प्रस्थापित प्राथमिक स्वास्थ्य-केंद्र इस ग्राम से कितनी दूरी पर है? उस केंद्र में कार्यरत डॉक्टर इस ग्राम में कितने दिनों में आते हैं? ग्रामीण स्वास्थ्य की दृष्टि से प्राथमिक स्वास्थ्य-केंद्र का ग्रामीणों को कितना लाभ हो रहा है? प्रस्थापित स्वास्थ्य-केंद्र से ग्राम निवासियों की अपेक्षाएं क्या हैं? उन अपेक्षाओं को पूर्ण करना क्या संभव है?

शुद्ध पेयजल के अभाव में अनेक बीमारियां होने की संभावना रहती है, अतः ग्राम में क्या शुद्ध पेयजल उपलब्ध है? नहीं है तो विकास प्रखंड के निर्वाचित एवं सरकारी अधिकारी इस दिशा में क्या करने जा रहे हैं? ग्राम निवासी स्वयं इस दृष्टि से क्या कोई सामूहिक कदम उठाने की सोच रहे हैं? शुद्ध पेयजल की व्यवस्था कैसे संभव होगी? हर घर में बरतन मांजने, नहाने तथा कपड़ा धोने के काम में उपयोग हुए पानी की निकासी का सुप्रबंध पारिवारिक एवं सामूहिक प्रयास के द्वारा किया जाना क्या संभव है? इस दिशा में क्या किया जाए? गांव में पेयजल के लिए कुएं व हैंडपंप के चारों ओर पानी जमा न हो, इसके लिए क्या उपाय किया जा रहा है? व्यक्तिगत स्वास्थ्य, पारिवारिक स्वास्थ्य एवं सामूहिक या जन स्वास्थ्य की दृष्टि से क्या ग्रामवासी सजग हैं? इस दृष्टि से कौन-कौन से कार्यक्रम अपनाए जाएं?

पुरातन काल में हर घर में तुलसी का पौधा रहा करता था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस पौधे को स्वास्थ्योपयोगी माना है। क्या यह पुरातन प्रथा घर-घर में प्रचलित है? क्या इसे पुनः प्रचलित करना संभव है? क्या वनौषधियों के पौधे उगाने के लिए ग्राम निवासियों को प्रेरित किया जाना संभव है? इन प्रश्नों के उत्तर एकत्र करके ही हम ग्राम विकास के कार्य में आत्मविश्वास के साथ कदम बढ़ा सकते हैं।

वानप्रस्थ एक सामाजिक उत्तरदायित्व

अपनी परंपरा में आश्रम व्यवस्था के अंतर्गत 'वानप्रस्थ' आश्रम का अनोखा स्थान था। युवा पीढ़ी पर परिवार का संपूर्ण दायित्व सौंपकर माता-पिता निस्स्वार्थ भाव से पूर्णतः सामाजिक कार्य में संलग्न होते थे। जीवन के अंतिम चरण में मन को समाधान देनेवाला, जीवन को सार्थकता प्रदान करनेवाला व नई पीढ़ी के सम्मुख समाज के प्रति दायित्व का नमूना प्रस्तुत करनेवाला इससे अधिक उदात्त व सामयिक रास्ता अन्य हो भी क्या सकता है? देश और समाज के ऋण से मुक्त होने का व स्वाधीनता संग्राम के हुतात्माओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का यही सर्वोत्तम माध्यम है। अपनी रुचि व क्षमता के अनुरूप कार्य व क्षेत्र का चयन कर सामाजिक नवरचना के काम में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जा सकता है। समाज को चैतन्यपूर्ण, स्वस्थ एवं गतिशील बनानेवाला, स्वातंत्र्य संग्राम के हुतात्माओं के सपनों को साकार करनेवाला तथा नई पीढ़ी के लिए वरदान सिद्ध होनेवाला यही सुयोग्य मार्ग है।

कुछ लोग स्वप्रेरणा से पहले से ही ऐसे किसी-न-किसी काम में जुटे हुए हैं, किंतु अधिकांश

की मानसिकता है कि 'अब हम कर ही क्या सकते हैं?' ऐसा चिंतन जीवन को नीरस एवं निरुद्देश्य बना देता है। सीमित परिवार के दायरे में बंधी-बंधाई निराशापूर्ण जिंदगी जीने के लिए मजबूर करता है। इस मानसिकता से मुक्त होकर हम विचार करें तो दिखाई देगा कि हम बहुत कुछ कर सकते हैं। लोकोपयोगी बन सकते हैं, सामाजिक जीवन का नया अध्याय प्रारंभ कर सकते हैं, समाज की बहुत बड़ी आवश्यकता पूर्ण कर सकते हैं। सामाजिक पुनर्रचना व सेवा का इतना विशाल क्षेत्र, जो पूर्णतः उपेक्षित पड़ा है, हमारे कर्तव्य को निमंत्रण दे रहा है।

आह्वान

असंख्य देशभक्तों के त्याग और बलिदान के फलस्वरूप हम दासता की बेड़ियां तोड़कर स्वाधीनता का दर्शन कर पाए। जिनके हृदय में उन हुतात्माओं के प्रति कृतज्ञता की भावना है, वे इस बात को कभी भूल नहीं सकते कि उन दिनों उन बलिदानियों की आंखों में आजाद भारत के कैसे-कैसे सपने तैरा करते थे। अंग्रेजी हुकूमत समाप्त होगी, देश आजाद होगा, हम स्वयं अपने देश के भाग्यविधाता बनेंगे, नए भारत का निर्माण करेंगे, जिसमें दुःख नहीं होगा, दीनता नहीं रहेगी, शोषण व उत्पीड़न से मानव मुक्त होगा, अशिक्षा व अज्ञान का नामोनिशान नहीं रहेगा, हर नागरिक स्वाभिमान के साथ विकास की राह पर गतिमान होगा। समाज के घटकों में परस्पर स्नेह, विश्वास व सहयोग का सुखद वातावरण पनपेगा। प्रामाणिकता व नैतिकता सबका स्वभाव बनेगी। जनजीवन सुखानंद से उल्लसित होगा। नई पीढ़ी स्वयं ही राष्ट्र जीवन के हर क्षेत्र में नए-नए कीर्तिमान प्रस्थापित करेगी। देश परम वैभव के शिखर पर पहुंचेगा। वह मानव मात्र के लिए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का संदेश देगा। ऐसे स्वतंत्र भारत के निर्माण की सब कल्पना करते थे।

परंतु स्वाधीनता के चार दशकों के बाद भी हमें कौन सा चित्र देखने को मिल रहा है? आधी से अधिक आबादी गरीबी रेखा के नीचे दीनहीनता का जीवन बिताने के लिए मजबूर है। निरक्षरता व अशिक्षा कलंक बने हुए हैं। बीमारी घर-घर की कहानी है। कुरीतियां, अंधविश्वास और कालबाह्य रूढ़ियां सामाजिक जीवन को जर्जर कर रही हैं। परस्पर स्नेह व विश्वास मिट रहा है। बेकारी युवा पीढ़ी के कर्तृत्व एवं आकांक्षाओं पर पानी फेर रही है। जीवन-मूल्य गिरते जा रहे हैं। संकुचित स्वार्थ आदर्शों का मखौल उड़ा रहा है। चारों ओर घोर निराशा फैली हुई है। निश्चय ही यह वस्तुस्थिति संवेदनशील अंतःकरण को झकझोरती है। कुछ लोग सोचते थे, सत्ता और प्रशासन के द्वारा ही बदलाव लाया जा सकता है, किंतु चालीस साल का अनुभव इस सोच की निरर्थकता को सिद्ध कर रहा है।

क्या यही जिंदगी जीना हमारे देश की नियति है? यदि नहीं तो कौन बदलेगा इस तसवीर को? निराशा एवं किंकर्तव्यविमूढ़ता के घने अंधकार में कौन जलाएगा आशा का दीप? इस प्रश्न का उत्तर हमारे सिवाय और कौन देगा? अन्यथा भावी पीढ़ियां हमें क्षमा नहीं करेंगी। देश का युवा-वर्ग निश्चय ही इसमें अहम भूमिका निभा सकता है, पर आज वह भी दिग्भ्रमित है। उसे नई प्रेरणा चाहिए, नई दिशा चाहिए, अनुभवी मार्गदर्शन चाहिए। कोरे भाषणों या उपदेशों से यह

काम नहीं होगा। इसके लिए चाहिए जगह-जगह पर अनुकरणीय उदाहरण। स्वाभाविक ही यह दायित्व उस प्रौढ़ पीढ़ी को निभाना होगा, जिसने आज भी स्वातंत्र्य संग्राम-कालीन बलिदानियों की आकांक्षाओं व उनके प्रति अपनी कृतज्ञता को अपने हृदय में संजोए रखा है, व्यावहारिक जीवन का अनुभव पाया है, जिनकी संतान परिवार का दायित्व निभाने योग्य बनी है, उन्हें वर्तमान परिस्थिति सामाजिक दायित्व निभाने को आह्वान कर रही है। यह आह्वान स्वीकार करने से ही वर्तमान दुर्दशा का अंत होगा।

आवश्यकता इस बात की है कि पुनः एक बार 'वानप्रस्थ' प्रवृत्ति को जगाया जाए। सेवा-निवृत्त लोगों का जगह-जगह सक्रिय समूह खड़ा किया जाए। यह संभव भी है और जरूरी भी। आवश्यकता व क्षमतानुसार कुछ लोग अन्यत्र जाकर वहां का दायित्व संभाल सकते हैं। कुछ अपने पास-पड़ोस में ही कार्य में जुट सकते हैं। ऐसे लोगों की राष्ट्र नव-निर्माण में अहम भूमिका होगी। उनके जीवन भर के अनुभव, क्षमता व प्रतिभा का देश के लिए उपयोग होगा।

ऐसे सुनियोजित प्रयासों की आज नितांत आवश्यकता है। समय की यही मांग भी है। ऐसा देशव्यापी अभियान ही वर्तमान निराशामय वातावरण में आशा का संचार करने में समर्थ हो सकता है।

कार्य रचना

इसके लिए प्रारंभिक रूप में हर स्थान पर एक संयोजक और उसके कुछ सहयोगियों की समिति गठित की जाए। वह समिति सेवा-निवृत्त लोगों से संपर्क स्थापित करेगी। विचार-विमर्श द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की रुचि, अनुभव व क्षमता के अनुसार उसके कार्य का रूप तथा क्षेत्र तय करेगी। प्रति माह एक या दो बार एकत्रित होकर किए गए कार्य की एक-दूसरे को जानकारी मिलेगी। काम में आनेवाली कठिनाइयों के निराकरण खोजे जाएंगे। आगे के काम की योजना बन सकेगी। इससे काम की गति बढ़ेगी।

सामाजिक नवरचना

अपना समाज अति पुरातन है। उसमें जीवन-मूल्यों की स्थायी निधि है, किंतु काल के प्रवाह में उसमें अनेक कुरीतियां व गलत परंपराएं घुस आई हैं। नागरिकों में सामाजिक भाव का अभाव हो गया है। जानते सभी हैं कि व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता। वह परिवार में जन्म पाता है। उसी में पलता, बढ़ता व बड़ा होता है। परिवार भी अकेला नहीं रहता। किसी-न-किसी आबादी का अंग बनकर जीता है। इसी से स्पष्ट है कि व्यक्ति, परिवार व समाज की परस्पर-पूरकता में ही सबके जीवन की सार्थकता है। उसी को हम भूल बैठे हैं। व्यक्ति अपने परिवार तक और परिवार अपनी संतान तक सीमित हो गया है। परिवार, संस्था, जो समाज की आधारभूत इकाई के रूप में विकसित हुई थी, इस अनुभूति को खो बैठी है। सामाजिक अव्यवस्था व वर्तमान समस्याओं की यही जड़ है, अतएव परिवार को समाज की आधारभूत इकाई के रूप में

पुनर्प्रतिष्ठित किए बिना न समाज में सुस्थिति निर्माण होगी, न समस्याओं का निराकरण होगा, न ही शासन लोकोपयोगी बनेगा।

कार्ययोजना

- परिवार संस्था को समाज की आधारभूत इकाई के रूप में पुनर्प्रतिष्ठित करने के लिए महिलाओं व पुरुषों की छोटी-छोटी विचार-गोष्ठियां आयोजित कर इस दिशा में सबकी मानसिकता विकसित करना।
- सर्वांगपूर्ण मातृत्व व पितृत्व के विकास हेतु हर आबादी में 'परिवार परामर्श-केंद्र' प्रस्थापित करना।
- भावी पीढ़ी भारत के उज्ज्वल भविष्य की प्रत्याभूति है, अतः आबादी के सभी परिवारों में रहन-सहन, खान-पान, बोलचाल आदि नूतन संतान के सर्वांगीण विकास में सहायक बने, इस दिशा में प्रयास करना।
- नौकरी-पेशा या किसी अन्य प्रकार के अर्थार्जन में संलग्न दंपतियों के छोटे बच्चों की देखभाल के लिए शिशु पालन-केंद्र चलाना। इन्हीं केंद्रों से, विशेषतः नूतन माताओं को शिशुपालन व संवर्धन की उपयुक्त विधियों की जानकारी उपलब्ध होगी।
- सादगी, स्वच्छता, सुंदरता व सुव्यवस्थितता केवल किसी व्यक्ति या परिवार की विशेषता न रहे, अपितु आबादी के सभी परिवारों का स्वभाव बने, इस दिशा में कार्य करना।
- माता, पिता व परिवारजन बच्चों के साथ अनौपचारिक रूप से नित्य कम-से-कम एक-डेढ़ घंटा बिताएं, इस पर बल देना।
- समाज के विभिन्न स्तरों के व्यक्ति व परिवारों में परस्पर आत्मीयता व पूरकता विकसित हो, इस हेतु विभिन्न उपयुक्त कार्यक्रम आयोजित करना। आबादी में एकता व एकात्मता की दिशा में प्रगति की यही सुगमतम विधि है।
- मानवीयता, नैतिकता व आध्यात्मिकता का मूल है—हृदय की संवेदनशीलता। इसी से व्यक्ति के हृदय में समाज के प्रति आत्मीयता पनप सकती है। आबादी के सभी निवासियों में परस्पर आत्मीयता की अनुभूति ही सामाजिकता का स्रोत है, अतः सामाजिकता के विकास के लिए ईश्वर प्रदत्त संवेदनशीलता की भावना वृद्धिंगत व व्यापक बनाने हेतु विशेष प्रयास करना।
- नागरिकों में समाज के प्रति कर्तव्य की भावना विकसित करना। तभी व्यक्ति के अधिकार सुरक्षित होंगे।
- दलीय लोकतंत्र, राष्ट्रीय या सामाजिक लोकतंत्र का माध्यम नहीं, विघटन का कारण बन रहा है। वह अन्यों के प्रति सद्भाव मिटा रहा है। कारण दलीय लोकतंत्र का माध्यम है—आत्मस्तुति व परनिंदा। परिणामतः एकता के लिए घातक वातावरण पनप रहा है। समाज में सर्वमान्य व्यक्तियों का अभाव हो रहा है। हर आबादी में सर्वमान्य व्यक्तियों के बिना समाज में एकता व एकात्मता विकसित नहीं हो सकती, अतः हर आबादी में दलीय भावना से मुक्त

सर्वमान्य व्यक्तियों के विकास हेतु विशेष प्रयास करना।

- ग्रामों तथा मोहल्लों में उपस्थित विवाद अदालतों में पहुंचने के स्थान पर स्थानीय स्तर पर ही सुलझाने की वृत्ति व विधि विकसित करना।
- सामाजिक जीवन को जर्जर करनेवाली कुरीतियों तथा धर्म या मजहब के नाम पर पलनेवाली कुप्रथाओं एवं अंधविश्वासों को निर्मूल करने की दिशा में प्रयास करना।
- अपनी आबादी में जितने उपासना स्थल हैं, उन सबको स्वच्छ, स्वास्थ्यपूर्ण, सुंदर एवं मानवीय संस्कारों से संपन्न केंद्रों के रूप में विकसित करना। इसी से आबादी में सांप्रदायिक सद्भाव व सहयोग की भावना बढ़ेगी।
- पास-पड़ोस में अर्थात् मोहल्ले या ग्राम में कोई भी व्यक्ति असहाय व उपेक्षित न रहे। ऐसे व्यक्ति के जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं आबादी के आम लोगों द्वारा ही पूर्ण कराने का प्रबंध करना।
- युवा पीढ़ी को देश के नव-निर्माण में सहभागी बनाने के लिए उपर्युक्त कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में सहयोगी बनाना। स्वयं का आदर्श प्रस्तुत कर देश के प्रति दायित्वपूर्ण जीवन जीने की उनमें रुचि बढ़ाना।

आर्थिक नवरचना

विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति ने विस्मयकारी गति प्राप्त की है। इसे मानव का अभूतपूर्व भूषण माना जा सकता था, किंतु गलत दिशा के कारण मानवीयता ही लुप्त हो रही है। सृजनात्मकता की तुलना में विनाशकारी साधन बढ़ रहे हैं। तनाव की सृष्टि हो रही है। शहरीकरण बेहिसाब बढ़ रहा है। लाखों की आबादीवाले नए-नए महानगर अस्तित्व में आ रहे हैं। एक-एक इमारत में रहनेवालों की संख्या सैकड़ों में गिनी जा सकती है, किंतु उनमें परस्पर संपर्क, सुसंवाद, स्नेह, विश्वास एवं सहयोग की भावना खोजने पर भी नहीं मिलती। इस प्रकार मानव मानवीयता से ही वंचित हो रहा है।

विशाल औद्योगीकरण की यह पाशविक तकनीक पश्चिम तक ही सीमित नहीं रही। विकेंद्रित उत्पादन पद्धति का अनुगामी जापान भी प्रतिस्पर्धा के वशीभूत होकर विशालकाय कारखानों का देश बन रहा है। मानव जीवन पर तकनीकी का इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि उस समाज की सभ्यता व संस्कृति स्वीकृत तकनीकी के ढांचे में ही ढलने लगती है। भारत उसी प्रवाह में प्रवाह पतित बन बह रहा है।

इस वास्तविकता का अनुमान लगाकर ही स्वाधीनता संग्राम के दार्शनिकों तथा अग्रणियों ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—''भारत पश्चिमी औद्योगिक सभ्यता की बाढ़ में प्रवाह पतित के समान कदापि नहीं बहेगा। अपने पूर्वजों द्वारा प्रदत्त श्रेष्ठ जीवन-दर्शन, वैज्ञानिक समाज रचना तथा अखंड अनुभव परंपरा के प्रकाश में अपनी मौलिक प्रतिभा से, श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों पर आधारित तथा विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों को ध्यान में रखकर ऐसी युगानुकूल सामाजिक व आर्थिक

पुनर्रचना करेगा, जो शेष विश्व के लिए भी अनुकरणीय बन सके। स्वामी विवेकानंद, महर्षि दयानंद, अरविंद, लोकमान्य तिलक एवं महात्मा गांधी आदि मनीषियों ने बार-बार दोहराया था कि नियति द्वारा निर्धारित अपने इस जीवन लक्ष्य की पूर्ति हेतु ही भारत स्वाधीनता के लिए संघर्ष कर रहा है, अतः भारत की स्वाधीनता केवल उसके अपने हित में ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए आवश्यक है।'' स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने इस मानवीय दिशा की उपेक्षा की। पश्चिम में उपजी भोगप्रवण औद्योगिक सभ्यता का आंख मूंदकर वरण किया। उसके दुष्परिणाम देश को भुगतने पड़ रहे हैं।

आवश्यकता है स्वाधीनता संग्राम के दार्शनिकों व अग्रणियों के दरशाए मार्ग को अपनाने की। अपनी विशेषता के साथ भारत को भारत के नाते विकसित करने की। मानव को मानवीयता की दिशा प्रदान करने की। यह कार्य केवल सत्ता के भरोसे संभव नहीं है। आम लोगों की असीम कार्य-शक्ति के आधार पर संपन्न करना होगा। सत्ता उसकी अनुगामिनी बनेगी, तभी अनुकरणीय लोकतंत्र का शुभारंभ होगा।

भारतीय अर्थतंत्र की दिशा

उत्पादन में गति, वितरण में न्याय, प्रबंध में कुशलता व उपभोग में संयम—यह है भारतीय आर्थिक दृष्टि। भारत हमारी केवल मातृभूमि ही नहीं, कर्मभूमि भी है। यह संकेत है—देश के उत्पादन, वितरण एवं प्रबंध में सभी सक्षम नागरिकों की संपूर्ण कर्मशक्ति के उपयोग की विधि का। वैज्ञानिक आविष्कार व तकनीकी प्रगति का इस दिशा में उपयोग करना ही भारत की विशेषता होगी। अर्थार्जन ही जीवन का ध्येय नहीं है। ध्येय है जनसेवा। जीवन-निर्वाह उसका सहज एवं स्वाभाविक परिणाम है। वस्तुस्थिति का हम अवलोकन करें तो सहज में ही ध्यान में आएगा कि समाज की हर आवश्यकता पूर्ण किए बिना अर्थार्जन संभव नहीं होता, किंतु अर्थार्जन ही जीवन का ध्येय बना तो मानव संकुचित वृत्ति का बनकर स्वार्थ साधन में ही रत रहेगा। आम लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति व उनका सुख-समाधान मानव का ध्येय बना तो सहज में ही उसके उपभोग में संयम, आचरण में प्रामाणिकता व जीवन में नैतिकता पनपेगी। परिश्रम उसका स्वभाव बनेगा। अंतर काम के रूप में नहीं, जीवन के दृष्टिकोण में है। आर्थिक क्षेत्र में भारतीय दृष्टि की यह विशेषता है।

कार्ययोजना

- उपलब्ध कच्चा माल व लोगों की आवश्यकता पूर्ति को आधार बनाकर कुटीर व लघु उद्योग चलाने के लिए नई पीढ़ी को प्रोत्साहित करना। उसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना। नई पीढ़ी नौकरी के पीछे दौड़ने के स्थान पर स्वरोजगार में अधिक रुचि ले, इस दिशा में सतत प्रयत्न करना। उसके बिना बेकारी की समस्या का निराकरण व लोकतंत्र का विकास संभव नहीं हो सकता।

विराट् पुरुष

- साधारणतः प्रत्येक आबादी आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बने, इस दिशा में प्रयास करना।
    - उपलब्ध कच्चे माल को स्थानीय आधार पर पक्के माल के रूप में परिणित करने वाले लघु उद्योग प्रारंभ कराना।
    - स्थानीय निवासियों के लिए नितांत आवश्यक, किंतु स्थानीय आधार पर उपलब्ध न होने वाली वस्तुओं की सूची बनवाना।
    - उनमें से जो वस्तुएं बाहर से कच्चा माल मंगाकर स्थानीय आधार पर बनाना संभव हों, उन्हें स्थानीय आधार पर बनवाने की व्यवस्था कराना।
    - स्थानीय निवासियों की अधिकतम आवश्यकताएं स्थानीय आधार पर ही पूर्ण करने की दिशा में स्थानीय युवा पीढ़ी की मानसिकता विकसित करना।
    - जो वस्तुएं स्थानीय आधार पर निर्माण नहीं की जा सकतीं, किंतु लोगों के लिए अनिवार्य हैं, उन्हें बाहर से मंगाने की उचित व्यवस्था करना।
    - आवश्यक हो तो स्थानीय आधार पर उपभोक्ता सहकारी भंडार प्रस्थापित करना। उन्हें प्रामाणिकता से चलवाने का ध्यान रखना।
    - इस कार्य में संलग्न लोगों के लाभ की उचित मात्रा निश्चित कराना, जिससे उनका जीवन निर्वाह हो सके तथा आम लोगों को उचित दाम पर उत्तम वस्तुएं उपलब्ध हो सकें ।
    - पूरे साल में जितने रुपयों का कच्चा माल तथा बनी बनाई वस्तुएं बाहर से लानी पड़ती हैं, कम-से-कम उतने कीमत की वस्तुएं, जो स्थानीय आधार पर उत्पादित की जा सकती हैं—अन्यत्र रहनेवालों के लिए उचित दाम पर निर्यात करना। इस प्रकार प्रत्येक आबादी आत्मनिर्भर बनाई जा सकती है। इस दिशा में सतत प्रगति होती रहे, इसका ध्यान रखना। संतुलित व समतापूर्ण आर्थिक जीवन के लिए यह आवश्यक है।
- हर एक आबादी में उपलब्ध कच्चे माल को पक्के माल में रूपांतरित करने के लिए स्थानीय आधार पर तकनीकी का विकास करने की दिशा में लोगों को प्रेरित करना। इसी से स्थानीय प्रतिभा का विकास होगा। ऐसे प्रयासों में अन्यत्र उपलब्ध आधुनिक तकनीकी की आवश्यक जानकारी उन तक पहुंचाना, जिससे स्थानीय प्रतिभा को नूतन तकनीकी के विकास की जानकारी उपलब्ध होगी व वे उससे लाभ उठा सकेंगे।
- कृषि कार्य में संलग्न किसानों को विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों में सफल सिद्ध प्रयोगों की जानकारी उपलब्ध कराना। सीमांत या छोटे किसानों को, जो अलाभकर जोत के मालिक हैं, साल भर का अनाज पैदा करने में साथ-साथ कम-से-कम चौथाई या आधे एकड़ में ऐसी फसल उगाने की कला सिखाना, जिससे वे प्रति वर्ष कम-से-कम आठ-दस हजार रुपए अर्जित कर सकें। ऐसे माध्यम भारत में उपलब्ध हैं।
- देश की तीन चौथाई आबादी आजीविका के लिए पूर्णतः कृषि पर निर्भर है। उपलब्ध कृषि भूमि इतना बोझ सहने में असमर्थ है, अतः नई पीढ़ी को ग्राम उद्योगों की दिशा में प्रोत्साहित कर भूमि पर से असह्य भार घटाना। इसके लिए आवश्यक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

- देश में फलोद्यानों व पुष्पोद्यानों की दृष्टि से प्रगति करने की बहुत गुंजाइश है। कुपोषण व प्रदूषण के निराकरण में भी इनका बहुत बड़ा योगदान हो सकता है। समृद्धि का यह सबल साधन बनेगा, अतः इसके प्रोत्साहन व प्रशिक्षण का प्रबंध करना।
- भूगर्भ, वर्षा से उपलब्ध जल का उचित व पूर्ण उपयोग करने की दृष्टि से ग्रामीण जन सजग व जानकार नहीं हैं। परिणामस्वरूप अधिकांश कृषि भूमि प्यासी बनी रहती है। उसका उत्पादन पर विपरीत परिणाम हो रहा है। राष्ट्रीय हानि का यह बहुत बड़ा कारण है, अतः इस दिशा में आवश्यक कदम उठाना।
- लाखों की संख्या में पुरुष वर्ग कमाई के लिए दूर-दूर जाते हैं। उनकी पत्नियां व बाल-बच्चे घर पर ही रहने के लिए मजबूर हैं। यह पुरुष वर्ग बड़ी कठिनाई से साल में एक बार केवल पंद्रह-बीस दिन अपने बाल-बच्चों के साथ रहने के लिए आ पाता है। इस अनर्थ की ओर किसी का ध्यान नहीं है, अतः इस पुरुष वर्ग के लिए कुटीर उद्योग या लघु उद्योगों के प्रशिक्षण का प्रबंध कर उन्हें स्थानीय आधार पर पर्याप्त कमाई के साधन उपलब्ध कराना।
- प्रत्येक जिले में काफी संख्या में जानवर मरते हैं। उनकी चमड़े की, हड्डियों का चूर्ण बनाने की, सींग, खुर, मांस आदि का आधुनिक दृष्टि से उपयोग करने की व्यवस्था बहुत कम जिलों में है। यह सब कच्चे माल के रूप में अन्यत्र जाता है। परिणामतः अनजाने में ही जिले को बहुत बड़ी आर्थिक हानि होती है। जिले की समृद्धि बढ़ाने की दृष्टि से इस दिशा में कदम बढ़ाना।
- ग्रामीण अंचल की आबादियां पक्की सड़क से जुड़ी न होने के कारण यातायात की समस्या विकास में बाधा पहुंचाती है, अतः छोटी-बड़ी आबादियों को पक्की सड़क से जोड़ने के लिए बारहों मास यातायात योग्य रास्तों का स्थानीय आधार पर निर्माण करना।

शिक्षा नवरचना का आधार

शिक्षा केवल अर्थार्जन की क्षमता अर्जित करने का ही साधन नहीं, मानवीय व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का माध्यम है। नव-स्वतंत्र देश के लिए उपयुक्त शिक्षा पद्धति विकासात्मक प्रक्रियाओं में से ही उपलब्ध हो सकती है। परंपरागत संस्कृति, वर्तमान परिस्थिति व भविष्यकालीन संभावनाओं के एकात्म चिंतन के आधार पर प्रयोगात्मक प्रयास उसके उदय की रीति है। इस विधि का नियामक वर्ग वही हो सकता है, जो प्रत्यक्ष रूप में अध्यापन कार्य में संलग्न है। इस प्रक्रिया को अपनाए बिना चिरप्रतीक्षित शिक्षा पद्धति की उपलब्धि असंभव है। गत चालीस सालों के प्रयासों के परिणाम उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि करते हैं।

मानव जन्म पाने के लिए जब गर्भ में अवतरित होता है, तभी से उसकी ज्ञानार्जन प्रक्रिया प्रारंभ होती है। नई पीढ़ी का दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि उनके माता-पिता इस वास्तविकता से अनभिज्ञ हैं। परिणामतः जन्म पाने वाले शिशु का नौ माह का गर्भकाल विकास की दृष्टि से व्यर्थ चला जाता है।

जन्म पाने के उपरांत वह अपनी आंखों व कानों के सहारे स्वभाववश ज्ञानार्जन के कार्य में

जुट जाता है। जो भी बातें उसके दृष्टिपथ में आती हैं व कानों में पड़ती हैं, उन्हीं के सहारे उसका व्यक्तित्व विकसित होता है। इसकी भी आवश्यक जानकारी माता-पिता या शिशु के संपर्क में आने वाले ज्येष्ठ व श्रेष्ठजनों को नहीं होती। परिणामतः नई पीढ़ी केवल आहार, निद्रा, भय और मैथुन की पशुवत् दिशा में गतिमान होती है। मानवीय मूल्यों के उदात्त संस्कारों से वह वंचित रहती है।

शैशवावस्था से शिशु जब बाल्यावस्था में प्रवेश करता है, ईश्वर प्रदत्त जिज्ञासावृत्ति उसे उठा-पटक, तोड़-फोड़ व दौड़-भाग के लिए प्रवृत्त करती है। इन बाल लीलाओं से मां खुशी से फूली नहीं समाती, किंतु बालक की इन बढ़ती लीलाओं को संभाल पाना उसके लिए कठिन हो जाता है। विशेषतः लघु परिवार के लिए यह एक समस्या बन जाती है, अतः अपने ही बच्चों के पालन का दायित्व अन्य को सौंपने की इच्छा प्रबल होती है। पूर्व प्राथमिक बाल केंद्र या बच्चों की पौधशालाएं (नर्सरी स्कूल) इसी चाह से अस्तित्व में आई हैं। जिस कोमल आयु में सुविज्ञ मां का ममतापूर्ण मार्गदर्शन ही बच्चों का सार-सर्वस्व है, उसी से उन्हें वंचित होना पड़ता है। इसके दूरगामी दुष्परिणामों से माता-पिता अनभिज्ञ हैं। कारण, परिवार पद्धति के उदय के मर्म को वे नहीं जानते। जिस अखंड अनुभव परंपरा में से परिवार सामाजिकता व गुणवत्ता के सुसंस्कारों का अद्वितीय विद्यामंदिर बना हुआ था, काल के प्रवाह में उसका यह रूप विस्मृति की गहराई में लुप्त हो चुका है। अब वह संकुचितता, असामाजिकता, उपभोग एवं संतानोत्पत्ति मात्र का केंद्र बनकर रह गया है। इसमें समयानुकूल परिवर्तन करना होगा।

क्लास रूम एजूकेशन भारतीय परंपरा की देन नहीं है। भारत में मानव की मानसिकता के आधार पर शिक्षा पद्धति का विकास हुआ था। उसमें संस्कारों का सर्वाधिक महत्त्व था। कथनी व करनी में एकरूपता विकसित करना उसकी विशेषता थी। संस्कार न उपदेश का विषय है, न रटने का। यह विषय है उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराने का। ऐसा वातावरण केवल निम्नांकित त्रिवेणी संगम के माध्यम से संभव है।

- माता-पिता व परिवारजनों की स्वस्थ मानसिकता, वाणी व व्यवहार।
- समाज के ज्येष्ठ व गण्यमान्य व्यक्तियों की स्वस्थ मानसिकता, वाणी व व्यवहार तथा
- विद्यालयीन गुरुजनों की स्वस्थ मानसिकता, वाणी व व्यवहार।

बच्चे सहज एवं स्वाभाविक रूप से मानसिकता, वाणी व व्यवहार, इन तीनों बातों से प्रभावित होते हैं। यही उनके विकास का व्यावहारिक माध्यम है। व्यक्तित्व विकास में आप औपचारिक रूप से क्या पढ़ाते हैं, इसका अधिक महत्त्व नहीं होता। वे क्या देखते व सुनते हैं, इसी का विशेष महत्त्व होता है। नैतिक शिक्षा का यही स्रोत है। केवल गीता या नैतिक सिद्धांतों का पठन-पाठन पर्याप्त नहीं होता।

शिक्षा वही है, जो शिक्षार्थियों में आयु के अनुसार ज्ञान, गुण व कर्तृत्व का विकास करती है। जिनमें आत्मविश्वास, स्वावलंबन व स्वाभिमान की प्रखर भावना विद्यमान न हो, उन्हें शिक्षित

कहना शिक्षा की अवमानना है। समाज के प्रत्येक घटक को मानवीय गुणों से संपन्न करना ही सबके लिए शिक्षा का हेतु है।

कार्ययोजना

- अक्षर ज्ञान मानव का भूषण तथा सार्थक जीवन का साधन है, अतः हर आबादी के सभी निवासियों को साक्षर बनाने की दिशा में प्रयास करना।
- हर आबादी में सबके जानने योग्य समाचारों व सूचनाओं के भित्ति-पत्र नियमित रूप से लगाने की व्यवस्था करना।
- हर आबादी में वाचनालय व बच्चों के लिए चित्रालय की व्यवस्था करना। सप्ताह में एक बार आयु के अनुसार रुचिकर विचार-गोष्ठियां आयोजित करना। इससे नई पीढ़ी का बौद्धिक व आत्मिक स्तर उन्नत होता रहेगा।
- आयु के अनुसार सभी बालक-बालिकाओं के लिए खेल, व्यायाम, योगासन आदि की व्यवस्था करना। साल में कम-से-कम एक बार इनमें प्रतियोगिताओं के कार्यक्रम आयोजित करना।
- छोटे-बड़े नगरों में अच्छी शिक्षा के नाम पर अधिक शुल्क लेकर पढ़ानेवाले विशेष विद्यालय अस्तित्व में आते जा रहे हैं। नगरपालिका, महानगरपालिका तथा जिला परिषदों द्वारा संचालित विद्यालयों में निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था है। इन विद्यालयों में गरीब व पिछड़े वर्गों के बच्चे पढ़ते हैं। ये विद्यालय उपेक्षित से हैं। इन विद्यालयों का स्तर ऊंचा उठाने व विशेष विद्यालयों के समकक्ष लाने की दिशा में विशेष प्रयास करना। इसके बिना सामाजिक एकता, एकात्मता व उन्नति असंभव है।
- विद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं में कुछ कमजोर व कुछ प्रतिभाशाली छात्र-छात्राएं रहती हैं। दोनों प्रकार के छात्र व छात्राओं की संभाव्य प्रगति के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- किसी कारण विद्यालय न जा पाने वाले बालक एवं बालिकाओं की पढ़ाई की समुचित व्यवस्था करना।
- नई पीढ़ी में साहित्य, कला व रचनात्मक कार्यों के प्रति रुचि निर्माण करना। उस दिशा में उन्हें प्रोत्साहित कर आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- नई पीढ़ी के स्वस्थ मनोरंजन के लिए विविध कार्यक्रम आयोजित करना, जिससे उसमें सामाजिकता के साथ-साथ उत्साहपूर्ण रचनात्मक वृत्ति विकसित हो सके।
- छात्र-छात्राओं के सर्वांगीण विकास की समुचित व्यवस्था हो, इस हेतु उनके माता-पिता, क्षेत्र के गण्यमान्य महिला-पुरुष एवं पढ़ानेवाले अध्यापक-अध्यापिकाओं की समय-समय पर सम्मिलित विचार-गोष्ठियां आयोजित करना। समाज के इन तीनों वर्गों से ही नई पीढ़ी विशेष प्रभावित होती है।
- प्रत्येक विद्यालय को सामाजिक नवरचना का प्रेरणा-केंद्र बनाना आवश्यक है। छात्र-छात्राओं

के माता-पिता, अध्यापन में संलग्न व्यक्ति एवं क्षेत्रीय गण्यमान्य महिला-पुरुषों का इस दिशा में सक्रिय योगदान प्राप्त करना होगा। इससे पढ़ाई में संलग्न नई पीढ़ी को सामाजिक दायित्व के संस्कार मिल सकेंगे।

सबके लिए स्वास्थ्य

मानव जीवन में स्वास्थ्य का स्थान सर्वोपरि है। स्वस्थ शरीर में ही कुशाग्र बुद्धि और उन्नत आत्मा का वास्तव्य संभव है। इसी अनुभूति का सार है—'सर्वे सन्तु निरामया'।

सदा सर्वदा स्वस्थ बने रहने की मानव की प्रबल आकांक्षा ही आरोग्य का मर्म है। औषधोपचार की व्यवस्था मात्र स्वास्थ्य का आधार नहीं हो सकती। चारों ओर रोगों को आमंत्रित करने वाली स्थिति बनी रही तो अच्छी-से-अच्छी चिकित्सा भी निरर्थक सिद्ध होती है, अतः व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामूहिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सर्वसाधारण नागरिकों में जागरूकता व सक्रियता बढ़ाना नितांत आवश्यक है। हमें आयुर्वेद को स्वास्थ्य का आधार बनाना होगा। आयुर्वेद केवल उपचार विधि का शास्त्र नहीं है। वह सौ साल तक आरोग्यपूर्ण जीवन जीने की कला का प्राकृतिक शास्त्र है। यह उसकी विशेषता है। इस युग में भी वह उतना ही उपयोगी है, जितना कभी रहा है।

कार्यक्रम

आरोग्य संवर्धन—स्वस्थ व्यक्ति कितना सुखी व समर्थ होता है तथा आरोग्यपूर्ण बने रहने के लिए किन-किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है, उन बातों को लेकर सर्वसाधारण नागरिकों को शिक्षित करने के लिए उपयुक्त स्लाइड्स व चलचित्र (वी.डी.ओ. कैसेट्स) बनाकर उनके द्वारा सभी नागरिकों को शिक्षित करना। छोटी-छोटी विचार-गोष्ठियां आयोजित कर नागरिकों में सदा स्वस्थ रहने की मानसिकता विकसित करना।

स्वच्छता—महिला, पुरुष व बच्चों में स्वच्छ रहने की प्रवृत्ति विकसित करना। व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक स्वच्छता की उन्हें कल्पना देना। तदनुसार नियमित रूप से सामूहिक कार्यक्रम आयोजित करना। घर, पास-पड़ोस, रास्ते व संपूर्ण आबादी को स्वच्छ, सुंदर व व्यवस्थित बनाए रखने में सभी को सक्रिय बनाना।

पेयजल—शुद्ध तथा स्वास्थ्यवर्धक पेयजल के बिना स्वस्थ बने रहना असंभव है। पचास प्रतिशत से अधिक बीमारियां केवल अशुद्ध पेयजल के कारण होती हैं, अतः संपूर्ण आबादी के लिए शुद्ध पेयजल की व्यवस्था करना।

रोग प्रतिरक्षण—वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण ऐसे टीके उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग शैशवावस्था में समय से किया गया तो पोलियो, चेचक, टिटनेस, हैजा आदि संक्रामक रोगों से सहज में ही बचा जा सकता है, अतः रोग प्रतिरक्षण सुविधा का लाभ सबको उपलब्ध कराने की व्यवस्था करना।

पौष्टिक आहार—स्वास्थ्य संवर्धन का यह महत्त्वपूर्ण पहलू है। सबके लिए इसकी पर्याप्त

मात्रा में उपलब्धि मानव जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। पौष्टिकता का अर्थ महंगे और गरिष्ठ पदार्थ नहीं हैं। साधारण से साधारण एवं सस्ती वस्तुएं पौष्टिक और सुपाच्य होती हैं। संतुलित आहार की जानकारी का अभाव भी कुपोषण का एक कारण है। इसका सर्वाधिक दुष्परिणाम गर्भवती महिलाओं व बालक-बालिकाओं पर होता है। इस ओर विशेष ध्यान देकर अनभिज्ञ लोगों को उपयुक्त जानकारी देना तथा तदनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करना।

प्रसूति—प्रसूति में सहायता घर-घर की आवश्यकता है। सरकारी या किसी अन्य स्तर पर प्रसूति में सहायता की आधुनिक सुविधाएं ग्राम-ग्राम पहुंचाने का काम कब तक संभव हो पाएगा, कहा नहीं जा सकता, किंतु इसके अभाव में प्रसूति कार्य रुका नहीं रहता। ग्रामों में परंपरागत दाइयां इस दायित्व को निभाती आ रही हैं, किंतु वे स्वास्थ्य विज्ञान की आवश्यक जानकारी से अनभिज्ञ हैं। परिणामस्वरूप जच्चा व बच्चा का जीवन भगवान् के भरोसे ही रहता है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार देश भर में साल में बीस लाख बच्चे केवल टिटेनस के शिकार हो रहे हैं। प्रसव काल में मरनेवाली महिलाओं की संख्या भी चौंकाने वाली है। आवश्यकता है, इन ग्रामीण दाइयों को स्वास्थ्य विज्ञान का प्रशिक्षण देने की तथा उन्हें प्रसूति कार्य के लिए आवश्यक उपकरणों का उपयोग सिखाकर उन्हें उपकरण उपलब्ध कराने की।

दादी मां का बटुआ—रोगरहित रहने की प्रेरणा प्रदान करने के साथ-साथ उपचार प्रबंध करना भी आवश्यक है। सरकारी स्तर पर जिले में एक या दो स्थानों पर अस्पताल रहते हैं। जिले की आबादी व विशालता को देखते हुए यह व्यवस्था अपर्याप्त है। अधिक अंतर पर रहनेवाले पिछड़े व गरीब लोग इन अस्पतालों से लाभ उठाने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं। जिले में सरकार द्वारा स्थापित प्राथमिक उपचार केंद्र भी आम लोगों की स्वास्थ्य विषयक आवश्यकताएं पूरी नहीं कर पाते। पुराने जमाने में परंपरागत अनुभवों के आधार पर घर की दादी मां अपने बटुए की मदद से प्राथमिक उपचार बड़ी सहजता व आत्मविश्वास के साथ किया करती थीं। काल के प्रवाह में यह प्रथा लुप्त हो गई है, अतः हर ग्राम से एकाध समझदार व वयस्क महिला या पुरुष का इस कार्य के लिए चयन किया जाए। प्राथमिक उपचार की दृष्टि से 35-40 उपयुक्त दवाओं का बटुआ तैयार किया जाए। चयन किए व्यक्तियों को उन दवाओं के उपयोग की विधि समझाई जाए। यह प्रयोग बहुत सफल सिद्ध हो रहा है, अतः इस सुविधाजनक उपचार को गांव-गांव में उपलब्ध कराने की व्यवस्था अनुभवी वैद्य की सहायता से की जाए।

चल-चिकित्सालय—बिना विशेषज्ञों के विशेष रोगों का उपचार संभव नहीं है, किंतु ग्रामीण जनता इस सुविधा से वंचित है। उदार हृदय सेवाभावी विशेषज्ञों की सहायता से इस सुविधा को ग्रामीण अंचलों में भी उपलब्ध कराना असंभव नहीं है। ऐसे विशेषज्ञ प्रतिमाह दो दिन ग्रामीण अंचलों में पहुंचकर बिना शुल्क अपनी सेवाएं अर्पित करने के लिए राजी हो सकते हैं। जिला अस्पतालों के डॉक्टरों, निजी प्रैक्टिस करनेवाले डॉक्टरों, मेडिकल कॉलेज में पढ़ानेवाले डॉक्टरों व प्राथमिक उपचार केंद्रों के डॉक्टरों का इस सेवा के लिए योगदान मिल सकता है। एक जगह बहुत बड़ा अस्पताल खोलने के स्थान पर हर जिले में कुछ चल-चिकित्सालयों की व्यवस्था की

गई तो उपलब्ध डॉक्टरों की सहायता से सबके लिए स्वास्थ्य का सपना साकार किया जा सकता है। ऐसे प्रयोगों का अनुभव अधिक उत्साहवर्धक है।

विद्यार्थी स्वास्थ्य परीक्षण–विभिन्न विद्यालयों में पढ़नेवाले बालक-बालिकाओं का नियमित स्वास्थ्य परीक्षण नहीं होता। नई पीढ़ी का इस सुविधा से वंचित होना अपेक्षित भविष्य-निर्माण में बाधक है। चल-चिकित्सालयों के माध्यम से इस कमी की पूर्ति करना।

औषधि उद्यान–आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान भी जड़ी-बूटियों की महत्ता अनुभव करने लगा है। घरों में उपलब्ध तुलसी के पौधों को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ है। इस विस्मयकारी पौधे का सान्निध्य प्राणघाती कैंसर को आस-पास फटकने नहीं देता। यह आधुनिक खोज है। ऐसी जीवनोपयोगी व रोगनाशक अनेक जड़ी-बूटियां भारत भर में उपलब्ध हैं। हर जड़ी-बूटी के उपयोग की जानकारी के साथ हर ग्राम में जड़ी-बूटी उद्यान का निर्माण सहज संभव है। ध्यान देकर इस दिशा में सुनियोजित प्रयास सबके लिए स्वास्थ्य का आधार बन सकता है। उपेक्षितों के लिए तो यह वरदान सिद्ध होगा।

रोगी सेवा–मेडिकल कॉलेजों के अस्पताल, जिला अस्पताल आदि में ऐसे अनेक रोगी भर्ती होते हैं, जिनकी देखभाल करनेवाला उनका अपना कोई समझदार व्यक्ति नहीं होता। ऐसे रोगियों की दुर्दशा की सीमा नहीं रहती। वैसे भी रोगग्रस्त अवस्था में कुशल-मंगल की कामना के दो शब्द भी रोगी में कष्ट सहने की शक्ति बढ़ाते हैं। उसकी निराशा घटाते हैं। मरीज को संतोष प्रदान करते हैं। नगरों में प्रौढ़ महिला-पुरुषों की, जिनके पास पर्याप्त समय रहता है, कमी नहीं है। उन्हें इस कार्य के लिए प्रवृत्त करने से अस्पतालों में पड़े उपेक्षित रोगियों की, उनसे मिलने के समय में देखभाल करने की नियमित व्यवस्था खड़ी की जा सकती है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप जहां उपेक्षित रोगियों को बहुत बड़ी राहत मिलेगी, वहां इन प्रौढ़ महिला-पुरुषों को समय के सदुपयोग का समाधान व अपने जीवन की सार्थकता का साधन उपलब्ध होगा।

सहमति—सहमति पारिवारिक जीवन के सुखानंद का स्रोत है। सहयोग व सहकारिता का आधार है। सहजीवन के समाधान का सार सर्वस्व है। कठिन-से-कठिन कार्य सिद्धि का सुगम साधन है। जिस परिवार के घटकों के दैनंदिन व्यवहार में सहज में ही सहमति प्रतिबिंबित होती है, वह परिवार सभ्य व सुसंस्कृत माना जाता है। उसमें असमानता की अमानवीय वृत्ति का दानव कदापि प्रविष्ट नहीं होता। ऐसा परिवार ही सामाजिक जीवन का सशक्त आधार बनता है। ऐसे परिवार के हर व्यक्ति के जीवन का क्षण-क्षण उत्साह एवं उमंग से परिपूर्ण रहता है। उसमें हर व्यक्ति की क्षमता व प्रतिभा निरंतर विकास पाती है। उसमें जन्म पानेवाली कन्या-सुकन्या व पुत्र-सुपुत्र सिद्ध होता है। वह विनम्रता, स्पष्टता, प्रामाणिकता व सामाजिकता के सद्गुणों से विभूषित होता है। परस्पर सद्भावना उसका सहज स्वभाव बनता है, जो लोकतंत्र की सहजता का मर्म है, अतः हर परिवार में सहमति का जीवन विकसित करना परमावश्यक है।

सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक पुनर्रचना की दिशा में उपयुक्त कार्य जीवनोपयोगी दिशा के संकेत मात्र हैं। नव-स्वतंत्र समाज अपने सर्वांगीण विकास का कार्य सरकार के भरोसे नहीं

छोड़ सकता। सर्वथा सरकार पर निर्भरता लोकतांत्रिक जीवन व स्वपराक्रम के प्रतिकूल है। वैसे भी ये सब काम कर पाना शासन के बलबूते की बात नहीं है। यह गत चार दशकों का अनुभव है। स्वयं शासन भी इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है। परिणामस्वरूप इस दिशा में स्वयंसेवी संस्थाओं को प्रोत्साहित करने की उसने चर्चा चलाई है।

जिस प्रकार देश की स्वतंत्रता के लिए सर्वसाधारण समाज आतुर हो उठा था, उसमें से अनेक देशभक्तों ने स्वराज्य प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व दांव पर लगा दिया था, उसी प्रकार राष्ट्र नवनिर्माण तथा युगानुकूल सामाजिक व आर्थिक पुनर्रचना के अधिक कठिन कार्य में सभी को जुटना आवश्यक है। तभी घोर निराशा के बादल छंटेंगे। उज्ज्वल भविष्य की आभा नजर आएगी। स्वातंत्र्य संग्राम के निस्स्वार्थ बलिदानियों की आंखों में तैरने वाले स्वतंत्र भारत के सपने साकार होंगे, अतः आप में से प्रत्येक महिला-पुरुष से सविनय अनुरोध है कि आप आएं तथा अपनी अर्जित क्षमता राष्ट्र नव-निर्माण में लगाएं। अपनी बुद्धिमत्ता, कुशलता व पराक्रम की पराकाष्ठा से अपने राष्ट्र को परम वैभव के शिखर पर पहुंचाने के पुनीत कार्य में योगदान देने का श्रेय प्राप्त कर अपना जीवन सार्थक बनाएं।

आश्रमशाला

वनवासियों की नूतन संतान के सर्वांगीण विकास का कार्य दीनदयाल शोध संस्थान ने हाथ में लिया है। 15 अगस्त, 1992 को रामभक्तों के श्रद्धा केंद्र 'कामदगिरि' की तलहटी में आश्रमशाला का शुभारंभ किया गया है। इस आश्रमशाला का नामकरण स्वतंत्रता संग्राम के अनोखे योद्धा स्व. श्रीरामनाथजी गोयनका के नाम पर किया है। सदियों से उपेक्षित वनवासी बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए स्थापित इस आश्रमशाला से अधिक उपयुक्त अन्य स्मारक रामनाथजी जैसे सेवाव्रती के लिए नहीं हो सकता।

चित्रकूट बहुत पुरातन वनांचल है। इसका प्राकृतिक सौंदर्य अप्रतिम है। विंध्याचल की पर्वतमालाओं ने इसकी शोभा और भी निखारी है। इस क्षेत्र के मूल निवासी वनवासी हैं। प्रकृति की गोद में लिपटी, इनकी छोटी-छोटी बिखरी आबादियां वनांचल में व्याप्त एकांत में बाधक नहीं बनतीं। संभवतः इसी कारण पुरातन काल में ऋषि-मुनि अपनी तपस्या के लिए इस क्षेत्र को वरीयता देते थे। प्रभु राम ने भी अपने वनवास के लिए चित्रकूट का चयन किया था। वह एकांत साधना के लिए नहीं, वनांचल के जनजीवन में व्याप्त कष्टों के निवारण के लिए। वनवासी लोग प्रभु राम की सेवा करते रहे या राम वनवासियों की—यह कहना कठिन है, किंतु यह निर्विवाद सत्य है कि राम अपने सर्वस्व की बाजी लगाने हेतु सदैव तत्पर रहते थे। उनकी समर्पित-शक्ति ही श्रीराम की धरोहर थी।

स्व. रामनाथजी गोयनका बिहार के मुजफ्फरपुर में पढ़ते थे। सोलह वर्ष की आयु से ही वे गांधीजी के आंदोलनों में सक्रिय हुए थे। आगे चलकर गांधीजी ने उन्हें दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा का आजीवन ट्रस्टी बनाया। जब उनकी आयु केवल 20 वर्ष की थी, तब 1932 में गांधीजी

ने ही आजादी की लड़ाई के लिए उन्हें मद्रास से अखबार निकालने की सलाह दी। गांधीजी की प्रेरणा के अनुसार उन्होंने अपने पास जो कुछ भी था, उससे मद्रास में छपनेवाला एक अंग्रेजी अखबार खरीदा। वही अखबार 'इंडियन एक्सप्रेस' के नाम से देश-विदेश में मशहूर हुआ। कुछ ही दिनों बाद उन्होंने तमिल का प्रभावी पत्र 'दिनामणि' भी खरीद लिया था। आज अंग्रेजी सहित देश की अधिकांश भाषाओं में चलनेवाले अखबारों की एक्सप्रेस ही एकमेव देशव्यापी शृंखला है। स्व. रामनाथजी के अद्वितीय कर्तृत्व का यह अनुपम नमूना है।

देश की आजादी की लड़ाई में इंडियन एक्सप्रेस ही कांग्रेस का प्रमुख हथियार था। जब कभी कोई उन्हें सरकार के खिलाफ लड़ाई मोल लेने के खतरे से डराता था तो वे कहते थे, ''मैं तो एक लोटा लेकर घर से निकला था। जब दुनिया से जाऊंगा, तब वह लोटा भी मेरे साथ नहीं जाएगा, अतः डर किससे और किस बात के लिए?'' इसी साहसी वृत्ति से वे देश की आजादी के लिए अंग्रेजों से लड़ते रहे। आजादी के बाद भी वे राष्ट्रोन्नति एवं प्रेस की स्वतंत्रता के लिए सतत संघर्षशील रहे। संविधान सभा के वे सदस्य थे। अखबार के द्वारा देश और समाज की, विशेषतः पिछड़ों और उपेक्षितों की सेवा करना उनका प्रियतम कार्य था। वनवासी बालक/बालिकाएं उनके जीवन से प्रेरणा पा सकें, इसी उद्देश्य से इस शाला का नाम 'रामनाथ आश्रमशाला' रखा है।

श्रीराम के उन वनवासी साथी-संगियों की वर्तमान संतान अत्यंत दयनीय दशा में जी रही है। सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में कम-अधिक मात्रा में उन्नति का दौर दिखाई देता है, किंतु अधिकतर वनवासी आज भी पिछड़े, पीड़ित, निर्धन एवं उपेक्षित हैं। अपने परिवारों में पलते और बढ़ते वनवासी बच्चों को आधुनिक जीवन का साक्षात्कार करने या उन्नति के आयामों को देखने का अवसर ही नहीं मिलता। ऐसी अवस्था में उनमें उन्नतशील जीवन की आकांक्षाएं कैसे जगेंगी? उनका विकास कैसे होगा? उनकी शक्ति और बुद्धि उनकी प्रगति में कैसे काम आएगी?

'अपना घर' प्रकल्प—संस्कारक्षम परिवार का नमूना

मानव वासना व संवेदना का अनोखा संगम है। इन दो मूलभूत प्रवृत्तियों का मानव में सम्यक् संतुलन मानवीयता का प्राण तथा स्वस्थ सामाजिक जीवन का आधार है। संवेदनशीलता मानव को मानव से जोड़ती है। उनमें सहयोग की भावना अंकुरित करती है। परिणामस्वरूप सहज में ही सामाजिकता साकार होने लगती है। सामूहिक सुख-समृद्धि से जीवन खिल उठता है। कारण, संवेदना से ही मानवीयता पनपती है तथा सामाजिक जीवन में नैतिकता की बहार आती है।

मानव मानस पर केवल वासना ही हावी हो जाए तो मानव दानव हो जाता है। उसके हृदय की संवेदनशीलता घटने लगती है। उसमें व्यक्तिवाद बल पकड़ता है। वह मानवीयता से वंचित होकर असामाजिकता में उलझता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा अर्जित विद्वत्ता या बुद्धिमत्ता उसे और अधिक असामाजिक और अनैतिक बनाती है। ऐसे लोगों की बहुलता सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त कर डालती है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की वृत्ति व्यापक एवं प्रबल हो जाती है। गरीब,

अशिक्षित, असहाय एवं उपेक्षित दीन-हीन ही बने रहते हैं। उनके लिए न किसी के हृदय में करुणा जगती है, न उन्हें उबारने के लिए कोई आगे आता है। अपने समाज की वर्तमान अवस्था इसी तथ्य की परिचायक है।

इस अनिवार्य कार्य की पूर्ति समाज के घटकों में संवेदना व सामाजिकता की भावना के उदय से ही संभव है। इस भावना का उदय केवल वैचारिक मंथन मात्र से नहीं हो सकता। उसके लिए आवश्यकता है व्यावहारिक विधि का आविष्कार करने की। यह विधि मानव के जन्मकाल से ही कार्यरत होनी चाहिए, अतः इस विधि के विकास का सर्वोत्कृष्ट माध्यम हो सकता है जन्म पानेवाले शिशु का परिवार अर्थात् 'अपना घर'।

वैसे भी परिवार सामाजिक जीवन की प्राथमिक इकाई है। समाज का प्रत्येक घटक अपने परिवार में जन्म पाता है। उसी में वह पलता तथा बड़ा होता है। जीवन के प्रारंभिक काल में प्राप्त संस्कारों के अनुरूप ही उसका व्यक्तित्व विकास पाता है। यदि परिवार में सामाजिकता की भावना अंकुरित करने की क्षमता नहीं है तो नई पीढ़ी भी स्वस्थ समाज के विकास में सहायक नहीं बन पाएगी।

किंतु समाज की इस प्राथमिक इकाई में सामाजिक भावना के विकास की दिशा में आवश्यक कार्य होता दिखाई नहीं देता। प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालयों में भी सामाजिकता पनपाने की कोई व्यवस्था नहीं है। समाज के प्रौढ़ या प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्तियों के आचरण से भी सामाजिकता को प्रेरणा नहीं मिलती। बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करनेवाले ये तीनों माध्यम सामाजिकता से शून्य हैं। अनेक विचारक तथा अभिभावक नैतिक शिक्षा पर बल देने की चर्चा चलाते हैं। इस विषय पर साहित्य का भी निर्माण हो रहा है, किंतु नैतिकता चर्चाओं, भाषणों या किताबों के माध्यम से जीवन में नहीं उतारी जा सकती। इसके लिए आवश्यकता है बालक-बालिकाओं के चारों ओर का वातावरण संवेदना व सामाजिकता के व्यवहार से परिपूर्ण बनाने की, किंतु इस जीवनावश्यक कार्य की उपेक्षा होती आ रही है।

अपने समाज की यह दयनीय दशा निराशा का नहीं, चुनौती का विषय है। दीनदयाल शोध संस्थान ने विनम्रता के साथ इस चुनौती को स्वीकार किया है। 'अपना घर' प्रकल्प इसी का परिणाम है। इस प्रकल्प के माध्यम से आदर्श मां, सुसंस्कारक्षम परिवार, संवेदनशील समुदाय तथा सुव्यवस्थित, साफ-सुथरा, स्वावलंबी व सभी सुविधाओं से सुसज्जित ग्राम का निर्माण किया जाएगा। यह प्रयोग सामाजिक पुनर्रचना की दिशा एवं मार्ग प्रशस्त करेगा।

विशुद्ध वायु से भरपूर होने के बावजूद अपने ग्रामों की वर्तमान रचना एवं अवस्था न स्वास्थ्यवर्धक है, न सुसंस्कारक्षम। सदियों से उपेक्षित ग्राम जीवन सामान्य सुविधाओं से भी वंचित है, अतः प्रभावी व शिक्षित लोगों का झुकाव शहरों की ओर है। गरीब व अशिक्षित ग्रामीण भी रोजी-रोटी की आशा से शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। केवल उदर-भरण अर्थात् आर्थिकता की मानसिकता ने पाश्चिमात्य सभ्यता के प्रतीक विशालकाय कारखानों को ही आधुनिकता एवं प्रगति का माध्यम माना है। इस सभ्यता में गांवों के लिए कोई गुंजाइश नहीं है, किंतु गत ढाई-तीन सौ साल की इस

विराट् पुरुष

औद्योगिक सभ्यता के दुष्परिणामों के कारण विश्व में एक नई चेतना का उदय हो रहा है।

मानव समाज की मूलभूत समस्याओं की जड़ में बैठनेवाले विचारकों को इस सभ्यता की दिशा बदलने की आवश्यकता अनुभव हो रही है। महात्मा गांधी द्वारा प्रतिपादित विकेंद्रित व्यवस्था ही मानवीयता के विकास में सहायक हो सकती है, यह नूतन विचारकों की धारणा बन रही है। परिणामस्वरूप फिर से ग्रामोदय की चर्चा चल पड़ी है। ग्रामीण तकनीकी के विकास की दिशा में कहीं-कहीं प्रयास भी प्रारंभ हो रहे हैं। यह अभिनंदनीय नवोदित मानस केवल आर्थिकता तक ही सीमित न रहे, इसका विशेष ध्यान रखना अति आवश्यक है, अन्यथा न मानव का सर्वांगीण विकास संभव होगा, न विकेंद्रित व्यवस्था को सुमधुर फल प्राप्त हो सकेंगे।

आदर्श गांव-पुनर्रचना का माध्यम

'अपना घर' प्रकल्प इस दृष्टि से सतर्क एवं सजग है। यह प्रकल्प एकात्म मानव की साधना का माध्यम बनेगा। इसकी नींव चार आधार स्तंभों पर खड़ी रहेगी। अपना घर, अपना गांव, अपना समाज, मानव समाज। 'अपना घर' जहां आदर्श एवं सुसंस्कारक्षम परिवार का नमूना प्रस्तुत करेगा, वहां वह अपना गांव, अपना समाज एवं मानव समाज की आधारशिला सिद्ध होगा।

'अपना घर' के घटकों की संख्या कम-से-कम पांच और अधिकतम सात रहेगी। हर घर में एक मां तथा उसके साथ चार या छह बच्चे होंगे। यही होगा 'अपना घर'—एक नन्हा सा परिवार। परिवार की मां का स्वयं का कोई बच्चा इस प्रकल्प में नहीं रहेगा। 'अपना घर' में रहनेवाले बच्चों की आयु होगी तीन वर्ष से लेकर चौदह वर्ष तक की। 'अपना घर' में रहने के तीन कमरे होंगे। एक कमरा होगा मां का अपना तथा शेष दो कमरों में दो-दो या तीन-तीन बच्चे रहेंगे। इन तीनों कमरों के साथ एक-एक शौचालय तथा स्नानघर जुड़ा हुआ होगा। इन तीन कमरों के अतिरिक्त सबका मिला-जुला एक बड़ा कमरा तथा एक रसोईघर होगा, जिसमें आवश्यक सामान के भंडारण की व्यवस्था रहेगी। 'अपना घर' के आगे विविध फूलों के पौधों से युक्त छोटा सा आंगन तथा पिछवाड़े में होगी साग-सब्जी उगाने के लिए छोटी सी बगिया।

'अपना गांव' में ऐसे कम-से-कम तीस और अधिकतम पचास परिवार होंगे। हर दस परिवारों का एक समूह होगा, जिसे 'अपना गांव' का एक मोहल्ला माना जाएगा। हर मोहल्ले में एक दादी मां एवं बाबाजी का जोड़ा रहेगा। दादी मां एवं बाबाजी मिलकर इस मोहल्ले के पाठक व प्रबंधक का दायित्व निभाएंगे। इनके साथ न कोई बच्चा रहेगा, न कोई व्यक्ति। इनका एक बरामदे के साथ एक कमरे का आवास होगा। अपना गांव में पास का दायित्व निभानेवाले कम-से-कम तीन वानप्रस्थी परिवार होंगे, जिनमें से एक इंजीनियर, एक डॉक्टर एवं एक संगीतज्ञ होगा। घरों की संख्या तीस से अधिक होगी तो पाठक परिवारों की संख्या उसी अनुपात में बढ़ेगी। वे होंगे शिक्षा विशारद एवं पशु चिकित्सक वानप्रस्थ। आवश्यक त्योहारों, सामूहिक कार्यक्रमों आदि के लिए 'अपना गांव' में एक सभागार होगा। बच्चों के विभिन्न खेलों के लिए क्रीड़ांगण की भी व्यवस्था रहेगी। 'अपना गांव' का एक अतिथि-गृह होगा। 'अपना गांव' के घरों में अतिथियों के रहने की

न जगह होगी, न अनुमति। 'अपना गांव' की अपनी गौशाला होगी। ईंधन और प्रकाश की व्यवस्था गोबर गैस द्वारा की जाएगी। सूर्यशक्ति के द्वारा गरम पानी की सुविधा हर घर में रहेगी।

'अपना गांव' में पांच वर्ष तक के बच्चों के लिए बालवाड़ी का समुचित प्रबंध होगा, किंतु 'अपना गांव' का अपना प्राथमिक या माध्यमिक विद्यालय नहीं रहेगा। 'अपना गांव' के बच्चे पड़ोस में उपलब्ध साधारण पाठशालाओं में ही पढ़ा करेंगे। 'अपना गांव' के बच्चों का सर्वांगीण विकास साधारण समाज के बच्चों से अलग-थलग रखकर नहीं किया जाएगा, अन्यथा 'अपना घर' योजना सर्वसाधारण परिवारों के लिए अनुकरणीय सिद्ध नहीं हो पाएगी।

सामाजिक पुनर्रचना का महत्त्वपूर्ण माध्यम हो सकती है मां। मां संतान को केवल जन्म देनेवाली महिला ही नहीं, नवजात शिशु को अपने हृदय की असीम ममता के साथ सुसंस्कारित करनेवाली शिक्षिका भी है। शिशु अपने प्रारंभिक जीवन काल में अपनी ग्रहण शक्ति का अति तीव्र गति से उपयोग करता है। उसकी आंखें और कान इस कार्य में सदैव लगे रहते हैं। इसी काल में बिना सिखाए वह स्वयं ही सहज में ही अभिव्यक्ति की क्षमता अर्जित करता है। इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस अवस्था में शिशु की ग्रहणशक्ति कितनी तीव्र रहती है, अतः शैशवावस्था में उसके समुचित विकास का दायित्व मां ही निभा सकती है। यह कार्य एक कुशल शिशु मनोवैज्ञानिक का है, जिसे व्यक्ति द्वारा निभाए जानेवाले सामाजिक दायित्वों की स्पष्ट जानकारी हो, अतः इस हेतु माताओं व मां बनने की अवस्था प्राप्त युवतियों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबंध करना नितांत आवश्यक है। इसके अभाव में सामाजिक जीवन की नींव ही कमजोर पड़ रही है।

□

आजीवन आरोग्य
समाज-धर्म है कौटुंबिक स्वास्थ्य

शरीर अमर आत्मा का अस्थायी आवास है। आत्मा की अभिव्यक्ति का यही एकमात्र साधन है। इसे आजीवन स्वस्थ बनाए रखने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। इस तथ्य की अनुभूति से ही आयुर्वेद एवं योग-विज्ञान जैसे स्वास्थ्य परायण-शास्त्र अस्तित्व में आए। उपचार-विधियां इन शास्त्रों की आनुषंगिक उपलब्धियां हैं। मूल प्रेरणा है—'आजीवन स्वास्थ्य लाभ'।

शरीर प्राणी मात्र की प्राकृतिक उपलब्धि है। आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन शरीर के जन्मजात गुण-धर्म हैं। मानव के अतिरिक्त प्राणियों की ये प्रवृत्तियां प्रकृति द्वारा नियंत्रित हैं। उनका उल्लंघन जीव-जंतुओं की क्षमता से परे है, अतः प्राकृतिक वातावरण में विचरण करनेवाले प्राणियों को अपने स्वास्थ्य के लिए किसी से उपचार कराने की आवश्यकता नहीं होती।

मानव अन्य प्राणियों से भिन्न है। उसमें अन्य प्राणियों के समान आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन की प्रवृत्तियां विद्यमान हैं, परंतु मानव की प्रवृत्तियां अन्य प्राणियों के समान प्रकृति द्वारा नियंत्रित नहीं हैं। मानव अपनी इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति स्वेच्छा से करता है। अपनी सुख-सुविधाओं के लिए नवनिर्माण करने की उसमें क्षमता है। कारण, शरीर के साथ मानव में अन्य क्षमताएं उपलब्ध हैं। कल्पनाशक्ति का स्रोत 'मन', नव निर्माणशील 'बुद्धि' तथा चराचर के साथ एकात्मता अनुभव करनेवाली 'आत्मा' का उसे वरदान प्राप्त है। क्या करणीय और क्या अकरणीय है, इसकी अनुभूति करानेवाली विवेकशीलता से वह पुरस्कृत है। फलस्वरूप अन्य की सुख-सुविधाओं के लिए वह बाधक या घातक न बने, अपितु सहायक हो। इसके लिए मानव अपनी अंतर्निहित संवेदनशीलता के कारण अपनी वासनाओं पर संयम का अंकुश लगा सकता है। उसकी इस विशेषता को मानवीयता कहा जाता है।

आरोग्यधाम प्रकल्प की रूपरेखा। चित्रकूट में स्थापित आरोग्यधाम भारतरत्न श्री जे.आर.डी. टाटा की स्मृति को समर्पित एक कल्याणकारी प्रकल्प है। आयुर्वेद, योग व प्राकृतिक चिकित्सा के मिले-जुले प्रयोग से आजीवन स्वास्थ्य लाभ के सिद्धांत को व्यावहारिक धरातल पर उतारकर संस्थान ने लाखों लोगों को लाभ पहुंचाया है। मंथन, अक्तूबर-दिसंबर 1997।

जो मानव अपनी वासनाओं का शिकार बन अपनी विवेकशीलता की अवहेलना करता है, उसका स्वास्थ्य बिगड़ना अवश्यंभावी है। इसी कारण उसे उपचार की आवश्यकता पड़ती है। दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक प्रबल हो रही उपभोग लालसा तथा उसकी पूर्ति के लिए अपनाई जा रही अप्राकृतिक जीवनशैली मानव का बिना उपचार के जीना असंभव बना रही हैं। उपचार के क्षेत्र में नित्य-नूतन आविष्कार हो रहे हैं। शल्य-क्रिया के क्षेत्र में विस्मयकारी उपलब्धियों ने लोगों को चकित कर दिया है। इसके बावजूद रोगों और रोगियों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इस वस्तुस्थिति का निष्कर्ष है कि केवल उपचारों से न रोगों का उन्मूलन संभव है, न स्वास्थ्य लाभ। इस अनुभूति के कारण विश्व भर के संवेदनशील विचारक चिंतित हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू.एच.ओ.) ने इसी शताब्दी में सबके लिए स्वास्थ्य उपलब्ध कराने की घोषणा की है, किंतु केवल उपचार के माध्यम से इस अभिनंदनीय आकांक्षा के साकार होने की संभावना नजर नहीं आती।

मानव की सफलता का रहस्य है स्वास्थ्यपूर्ण जीवन। अस्वस्थ व्यक्ति न अपनी बुद्धिमत्ता का पूरा उपयोग कर पाता है, न ही समृद्धि का सुख भोग सकता है। आजीवन स्वस्थ बने रहना ही मानव जीवन की सार्थकता का आधार है। उपचार से तात्कालिक रोग निवारण तो संभव है, किंतु उससे स्थायी स्वास्थ्य लाभ नहीं होता। इस वास्तविकता की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। नित नई दवाओं एवं उपचारों के आविष्कारों के बावजूद नए-नए रोग सिर उठा रहे हैं और असाध्य बनते जा रहे हैं। अतः चित्रकूट प्रकल्प ने आजीवन स्वास्थ्य लाभ कराने की दिशा में कदम बढ़ाया है।

चित्रकूट को केंद्र मानकर पचास किलोमीटर की परिधि में आनेवाले पांच सौ गांवों में धीरे-धीरे आजीवन स्वास्थ्य प्राप्ति का वातावरण निर्मित किया जा रहा है। वर्तमान काल में आजीवन स्वास्थ्य की कल्पना लोगों को अविश्वसनीय प्रतीत होती है, यद्यपि भारत के आयुर्वेद या रोग विज्ञान का यह प्राथमिक सिद्धांत है। उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मनुष्य को सौ वर्ष बिना व्याधि के जीवन कार्य करने में समर्थ होना चाहिए, किंतु स्वतंत्र भारत में भी अन्य देशों के समान केवल उपचार विधियों पर ही बल दिया जा रहा है।

आयुर्वेद की व्यावहारिकता

दीनदयाल शोध संस्थान ने आयुर्वेद के इस सिद्धांत को वर्तमान युग में भी व्यावहारिक धरातल पर साकार करने का प्रयास प्रारंभ किया है। हम आजीवन स्वास्थ्य की अपनी धरोहर को समय की कसौटी पर सिद्ध करना चाहते हैं। हर एक माता-पिता को अपनी संतान सर्वाधिक प्रिय होती है। कोई नहीं चाहता कि उसकी संतान रोगग्रस्त हो। इस भावना के सहारे हर गांव में जन्म पानेवाली नूतन संतान के लिए आजीवन स्वास्थ्य लाभ के प्रयास प्रारंभ किए हैं। आज गांवों में गरीबी की सीमा नहीं रही। कुपोषण की विभीषिका से पीड़ित बच्चों की संख्या पचास प्रतिशत से कम नहीं है। आवश्यक मार्गदर्शन के अभाव में यह

दयनीय दशा अधिक भयावह बनती जा रही है। इस हालत के बावजूद समाज स्वास्थ्य शिल्पी नए-नए उपाय अपनाकर नूतन संतान को आजीवन स्वास्थ्य उपलब्ध कराने में जुटे हैं। उनके प्रयासों का परिणाम अल्पकाल में ही उत्साहवर्धक है।

सामान्य रूप से ग्रामीणों में रहन-सहन की आदतें स्वास्थ्यवर्धक नहीं होतीं तथापि अपने बच्चे के स्वास्थ्य की अभिलाषा उनमें आवश्यक सुधार कराने में सहायक बन रही है, परंतु नूतन संतान को आजीवन स्वास्थ्य लाभ कराने में केवल कौटुंबिक अनुकूलता ही पर्याप्त नहीं है।

ग्रामीण आबादियों में साफ-सफाई का प्रबंध नहीं होता। रास्ते कच्चे होते हैं। घरों व झोंपड़ियों में उपयोग में लाया हुआ जल बहकर रास्तों में गंदगी फैलाता है। बरसात में पानी रास्तों के गड्ढों में जमा होकर महीनों सड़ता है। आजीवन स्वास्थ्य की दृष्टि से यह अत्यधिक हानिकर है। शुद्ध पेयजल आजीवन स्वास्थ्य लाभ के लिए अनिवार्य है। इन सब बातों का प्रबंध किसी एक व्यक्ति या कुटुंब के लिए संभव नहीं है, किंतु अपने-अपने बच्चे के आजीवन स्वास्थ्य के लिए जाग्रत् सभी माता-पिता मिलकर उपर्युक्त आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। इसी संभावना को ध्यान में रखकर कार्य प्रारंभ किया है। खुशी इस बात की है कि अपनी संतान की स्वास्थ्य अभिलाषा के कारण सभी ग्रामवासी बिना भेदभाव के उपर्युक्त कार्यों को संपन्न कराने में योगदान देने लगे हैं। इस कार्य की सफलता की संभावना साफ दिखाई दे रही है। आजीवन स्वास्थ्य के लिए अन्य आवश्यक कदम भी उठाए जा रहे हैं।

उपर्युक्त तथ्य आजीवन स्वास्थ्य लाभ की खोज के लिए प्रेरित कर रहा है। इस लक्ष्य की सिद्धि मानव मात्र की आवश्यकता है। भारत के दो पुरातन शास्त्र-आयुर्वेद एवं योग-विज्ञान इस अनिवार्य शोध के आधार बन सकते हैं। इन्हीं दो शास्त्रों ने मानव को केवल शरीर मात्र नहीं माना, अपितु शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा की एकात्म इकाई के रूप में अनुभव किया है।

मानव व्यक्तित्व के इन चारों तत्त्वों में परस्पर-पूरकता एवं सामंजस्य बनाए रखना ही आजीवन स्वास्थ्य का मर्म है। इस मर्म को व्यावहारिक धरातल पर साकार करने के लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने मध्य प्रदेश के सतना जिले में स्थित प्रभु राम की तपोभूमि चित्रकूट में मां मंदाकिनी के पावन एवं सुरम्य तट पर 'जे.आर.डी. टाटा आयुर्वेद एवं योग विज्ञान शोध प्रतिष्ठान' स्थापित किया है। चित्रकूट धाम की महिमा के अनुसार इसे 'आरोग्यधाम' नाम से संबोधित किया जाता है।

उद्देश्य

- मानव मात्र को आजीवन स्वास्थ्य से सम्पन्न कराने के लिए आवश्यक विधियों की खोज करते हुए युगानुकूल जीवनशैली विकसित करना प्रतिष्ठान का गंतव्य है। मानव सामाजिक प्राणी है। वह स्वयं की योजना से न जन्म पाता है, न अपना जीवन निर्वाह

कर सकता है। माता-पिता, परिवार, आबादी तथा पर्यावरण उसके जीवन को प्रभावित किए रहते हैं। आजीवन स्वास्थ्य लाभ के लिए मानव जीवन की इस व्यापकता को आधार बनाकर ही गंतव्य तक पहुंचा जा सकता है।

- अनेक रोग वंश-परंपरागत माने जाते हैं। ऐसे रोगों की गति अबाधित बनी रही तो भविष्य में नई पीढ़ी के अधिकांश सदस्य जन्म से ही रोगग्रस्त होंगे। इस भयावह संभावना के निराकरण के लिए वंश परंपरागत रोगों की रोकथाम करने की विधियां खोजनी होंगी। आरोग्यधाम ने इस दिशा में कदम बढ़ाने का संकल्प लिया है।
- उपर्युक्त शोध-कार्य के अतिरिक्त चित्रकूट अंचल के निवासियों की आवश्यकता पूर्ति का ध्यान रखते हुए आरोग्यधाम ने बहिरंग रोगोपचार का भी प्रबंध किया है। रोगों का उपचार करना मात्र आरोग्यधाम का लक्ष्य नहीं है। रोगियों को स्वास्थ्य लाभ कराना भी उसकी आकांक्षा है। रोगों का मूल कारण जानकर ही उनका निर्मूलन संभव है, अतः रोगों के मूल कारण की जांच का प्रबंध निदान-सदन में किया गया है।

रोगों के मूल कारण जानने की दो विधियां हैं—

1. आयुर्वेदिक
2. एलोपैथिक

आयुर्वेदिक विधि—इस विधि के अनेक माध्यम हैं। वैद्यों के द्वारा अपने प्रशिक्षण, स्वाध्याय एवं अनुभवों के आधार पर नाड़ी, मुखमंडल, त्वचा, नाखून, आंख, जिह्वा, उदर आदि का स्पर्श एवं अवलोकन कर अचूक निदान किया जाता है। भारत की यह परंपरागत विधि रोगों के निदान में आज भी सर्वमान्य है। आयुर्वेदिक सदन में आयुर्वेद-उपचार एवं शोध-कार्यों की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था है।

एलोपैथिक पद्धति—इस पद्धति में रोगों की जांच विभिन्न उपकरणों द्वारा की जाती है। रोगों की जांच के नित नए महत्त्वपूर्ण उपकरण निदान-सदन में लाए जा रहे हैं। एक्स-रे, सोनोग्राफी, रक्त, थूक, मल, मूत्र आदि के परीक्षण के उपकरण पहुंच भी गए हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा—प्राकृतिक चिकित्सा का मूल है शरीर शुद्धि। आरोग्य धाम में पंचकर्म एवं प्राकृतिक चिकित्सा की शरीर शुद्धि की विधाएं एक साथ कर दी गई हैं, अतः रोगों के मूल कारणों की जांच के लिए दोनों विधियां निदान-सदन में काम में लाई जा रही हैं।

चित्रकूट रसशाला—जांच के बाद रोगियों के लिए आवश्यक दवाएं देने की व्यवस्था करना अनिवार्य है। आरोग्यधाम में दी जाने वाली दवाएं अधिकृत वैद्यों के मार्गदर्शन में आरोग्यधाम परिसर में स्थित चित्रकूट रसशाला में ही निर्मित की जाती हैं। आयुर्वेदिक दवाओं के अनेक निर्माता आयुर्वेदिक औषधि निर्माण पद्धति को नहीं अपनाते, अतः वे दवाएं परिणाम में कम प्रभावी होती हैं, इसलिए आरोग्यधाम ने अपनी ही रसशाला स्थापित की है। इस रसशाला में काम में आने वाली जड़ी-बूटियां चित्रकूट वनांचल से एकत्रित की हुई

या आरोग्यधाम के वनौषधि-उद्यान में उगाई हुई होती हैं। जो जड़ी-बूटियां जलवायु के कारण यहां नहीं उग सकतीं या दवाओं के काम में आनेवाले पदार्थ यहां उपलब्ध नहीं हो सकते, उन्हें देश के विभिन्न अंचलों से एकत्रित करने की व्यवस्था की गई है। इसी कारण चित्रकूट रसशाला में निर्मित दवाएं अधिक परिणामजनक सिद्ध हो रही हैं।

योग विज्ञान सदन—योगोपचार की विश्व में लोकप्रियता बढ़ रही है, किंतु केवल आसनों तक ही योगोपचार को सीमित समझना ठीक नहीं है। योगोपचार से आजीवन स्वास्थ्य लाभ के लिए आसन, प्राणायाम एवं ध्यान की त्रिविध साधना आवश्यक है। योग-विज्ञान सदन में इस एकात्म-विधि के अनुसार योगाभ्यास कराया जाता है। आरोग्यधाम देश के अनुभवी योग-साधकों को समय-समय पर आमंत्रित कर परिचर्चाएं आयोजित करते हुए युगानुकूल विधियों की खोज भी करता रहेगा।

मातृ सदन—स्वास्थ्य की दृष्टि से महिलाओं के लिए स्वतंत्र व्यवस्था करना अनिवार्य है। महिलाओं की शरीरिक मनोरचना विशेष प्रकार की होती है। मातृत्व का दायित्व निभाना महिलाओं की विशेषता है। इसी कारण आरोग्यधाम में महिलाओं के आजीवन स्वास्थ्य-संवर्धन एवं उपचार के लिए मातृ-सदन का निर्माण हो रहा है।

स्वास्थ्य सदन—वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति की होड़ में वृद्धिंगत प्रदूषण, अनियंत्रित उपभोग वृत्ति, आधुनिकता के नाम पर प्रचलित कृत्रिम जीवनशैली तथा आकर्षकता की दिखावटी मानसिकता के कारण पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति मिलना दुर्लभ हो गया है, किंतु स्वास्थ्य लाभ की आकांक्षा घटी नहीं है। आजीवन स्वास्थ्य लाभ की संभावना के लिए यहां एक अनुकूल पहलू उपलब्ध है।

आजीवन स्वास्थ्य लाभ एवं वंश परंपरागत रोगों का निराकरण—आरोग्यधाम के दो प्रमुख लक्ष्य हैं, अतः विशेष रोगों से पीड़ित चुने हुए रोगियों का उपचार एवं दिन-रात निरीक्षण तथा परीक्षण करते हुए उनका लेखा-जोखा रखने हेतु ऐसे सौ रोगियों के लिए अंतरंग शय्याओं की व्यवस्था की जा रही है। रोगी को रोगग्रस्त होने की मानसिकता से मुक्ति प्रदान करना आवश्यक है, अतः भरती किए जानेवाले रोगियों के कक्षों को रुग्णालय के स्थान पर स्वास्थ्य-सदन का रूप प्रदान किया गया है। साधारण अस्पतालों के समान पचास-साठ शय्याओं के विशाल वार्डों का प्रबंध आरोग्यधाम में नहीं है। उससे रुग्णालय का वातावरण बना रहता है। आरोग्यधाम में प्रतिकक्ष अधिकतम आठ और न्यूनतम चार शय्याओं की व्यवस्था रहेगी। फलस्वरूप प्रत्येक शय्याग्रस्त रोगी की सदैव सेवा संभव होगी तथा शोध-कार्य के लिए सूक्ष्म से सूक्ष्म निरीक्षण एवं परीक्षण अंकित करने में सुविधा रहेगी। इसी से आजीवन स्वास्थ्य की विधियों की खोज में सहायता संभव होती है। आरोग्यधाम में रोगी का सदैव बिस्तर पर पड़े रहना अपेक्षित नहीं है। क्षमता के अनुसार सदन में तथा सदन के आंगन में लगे हुए रंग-बिरंगे पौधों की देखभाल एवं सेवा करने का काम शय्यार्थियों के लिए मनोरंजन का माध्यम बन स्वास्थ्य संवर्धन में सहायक होगा।

आहार-विहार सदन—अंतरंग रोगियों को जलपान व भोजन आरोग्यधाम के आहार-विहार सदन में ही लेना होगा। आहार-विहार सदन में ही विभिन्न प्रकार के मनोरंजक खेलों का प्रबंध किया जा रहा है। प्राकृतिक एवं स्वास्थ्यवर्धक जानकारी कराने की दृष्टि से उपयुक्त विषयों की डॉक्यूमेंट्री टेलीविजन पर दिखाने की व्यवस्था है।

विंध्य कुंज—आजीवन स्वास्थ्य-विधियों की खोज दिन-रात चलनेवाली प्रक्रिया है। उनके लिए डॉक्टरों, परिचारिकाओं तथा स्वास्थ्यकर्मियों की सेवा चौबीसों घंटे उपलब्ध कराना आवश्यक है। इसलिए इनके आवास का प्रबंध परिसर में ही किया जा रहा है।

शोध छात्रावास—आजीवन स्वास्थ्य प्राप्ति की खोज के अनेक पहलू हैं। उनमें विशेषता प्राप्त वैद्यों की समाज को आवश्यकता है। ऐसे वैद्यों की शृंखला निर्माण करना आरोग्यधाम अपना कर्तव्य अनुभव करता है। उसकी पूर्ति हेतु आयुर्वेद एवं योग-विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि पाने के बाद शोध कार्यों का पाठ्यक्रम चलाना समय की आवश्यकता है। ऐसे शोधकर्ताओं के लिए सुविधाजनक छात्रावास का निर्माण आरोग्यधाम परिसर में ही किया जा रहा है।

स्वास्थ्य कुटीर—विंध्याचल की पहाड़ियों की प्राकृतिक गोद में मां मंदाकिनी के मनोरम तट पर स्थित स्वास्थ्यवर्धक आरोग्यधाम सबके आकर्षण का केंद्र बनता जा रहा है। देश-विदेश के अनेक परिवार स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए चित्रकूट के आरोग्यधाम परिसर में साल के कुछ दिन बिताने के अभिलाषी हैं। उनके लिए वैदेही सरोवर तथा मंदाकिनी के तट पर स्वास्थ्य कुटीरों का निर्माण किया जा रहा है। इन कुटीरों में एक छोटे से परिवार के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध होंगी। इन कुटीरों के दो कक्षों में से एक में वातानुकूलन का प्रबंध रहेगा। बरामदा तथा रंग-बिरंगे फूल-पत्तियों से सुशोभित हरा-भरा आंगन प्रत्येक कुटीर के सम्मुख उपलब्ध होगा। दूध आदि गरम करने के लिए छोटा सा रसोईघर भी उसमें होगा। इन स्वास्थ्य कुटीरों के मध्य में सर्वांगीण तथा सुखद व्यायाम के लिए स्वीमिंग पूल की व्यवस्था की जा रही है। जलपान तथा भोजन आहार-विहार सदन में ही करना अनिवार्य है।

गो-सदन—स्वास्थ्य-संवर्धन में गो-दुग्ध एवं उससे बने पदार्थों का सेवन विशेष महत्त्व रखता है। देशी गाय का दूध स्वास्थ्य-संवर्धन की दृष्टि से अद्वितीय है, अतः आरोग्यधाम ने देशी नस्ल की दस गायों का गो-सदन निर्माण किया है।

वैदेही सरोवर—आरोग्यधाम के मध्य भाग में विशाल 'वैदेही सरोवर' है। मछलियों एवं शुभ्र हंसों के साथ ही विभिन्न रंगों के कमल इस सरोवर की छटा में चार चांद लगा रहे हैं। स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए ही वैदेही सरोवर में नाव खेने की सुविधा उपलब्ध है।

प्रशिक्षण केंद्र—आयुर्वेद एवं योगोपचार विधियों के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण से संस्कारित परिचारकों एवं परिचारिकाओं का अभाव है। इस कमी की पूर्ति के लिए आरोग्यधाम ऐसे प्रशिक्षण की सर्वांगपूर्ण व्यवस्था करने जा रहा है।

ग्रंथालय—आरोग्यधाम एक शोध प्रतिष्ठान है, अतः आयुर्वेद, योग-विज्ञान एवं प्राकृतिक-चिकित्सा के संदर्भ-ग्रंथों का व्यापक स्तर पर संग्रह किया जा रहा है। स्वास्थ्य से संबंधित देश-विदेश में प्रकाशित ग्रंथों का संकलन किया जा रहा है। भारत में लोक-स्वास्थ्य परंपरा बहुत पुरानी है। उससे संबंधित लिखित साहित्य एवं अलिखित, किंतु ग्रामीण-अंचल में प्रचलित उपचार विधियों का संग्रह करना बहुत लाभदायी है। स्वास्थ्य विषयक पुरातन कहावतें आजीवन स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से सहायक हो सकती हैं। अभी तक ऐसे ज्ञान के संग्रह की ओर समुचित ध्यान नहीं गया है। आरोग्यधाम इस दिशा में प्रयत्नशील है। यह कार्य दुष्कर होते हुए भी आवश्यक है। यह आशंका भी निराधार नहीं कि काल के प्रवाह में यह ज्ञान कहीं लुप्त न हो जाए। देश-विदेशों की स्वास्थ्य पत्रिकाएं तथा शोध प्रतिष्ठानों द्वारा प्रकाशित साहित्य का भी संग्रह हो रहा है। विचार-गोष्ठियों के प्रतिवेदन भी संग्रह करने की व्यवस्था की गई है। रोगियों को पढ़ने के लिए वाचनालय एवं पठनीय साहित्य की भी व्यवस्था हो रही है।

शोध सहायक—ग्रंथालय में नियुक्त शोध सहायकों के सहयोग से ही उपलब्ध साहित्य में से उपयोगी सामग्री की खोज संभव है। ऐसी चुनी हुई अनुभव-सिद्ध सामग्री आजीवन स्वास्थ्य उपलब्धि हेतु किए जा रहे शोध-कार्य के लिए आवश्यक है।

प्रलेखन केंद्र—आरोग्यधाम में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का उपयोग किया जा रहा है। वर्तमानकालीन तकनीकी प्रगति के युग में भी आजीवन स्वास्थ्य लाभ के लिए उपयुक्त जीवनशैली विकसित करना तथा वंश-परंपरागत रोगों की गति अवरुद्ध करने के लिए आवश्यक प्रयोग करना आरोग्यधाम का लक्ष्य है, अतः बहुत बड़ी मात्रा में जानकारी एकत्रित करनी होगी।

इस प्रलेखन को सुव्यवस्थित ढंग से संगृहीत करना नितांत आवश्यक है। यह कार्य कंप्यूटर की सहायता से ही संभव है, अतः प्रलेखन कार्य के लिए डाटाबेस विधि का उपयोग किया जा रहा है। साथ ही इसे जिला, प्रांत, देश एवं विश्व से सतत आदान-प्रदान के लिए नेटवर्क को प्रतिष्ठित करने की दिशा में काम हो रहा है। इस संचित ज्ञान का उपयोग स्वास्थ्य विज्ञान में रुचि रखनेवाले देश-विदेश के अन्वेषक भी कर सकेंगे। आजीवन स्वास्थ्य प्राप्ति की दिशा में यह सर्वप्रिय क्रांति सिद्ध होगी। यह प्रसन्नता का विषय है कि देश-विदेश के स्वास्थ्य-चिंतक एवं अनुभवी चिकित्सक अप्राप्य एवं अमूल्य साहित्य की जानकारी आरोग्यधाम को उपलब्ध करा रहे हैं। आरोग्यधाम के ग्रंथालय में इस महत्त्वपूर्ण साहित्य की सुरक्षा एवं रख-रखाव की उचित व्यवस्था की जा रही है।

सभागृह—देश-विदेश के स्वास्थ्य-संवर्धक विषयों के विशेषज्ञों की विचार-गोष्ठियों का क्रम नियमित रूप से चलाया जाना इस अभिनव शोध-कार्य की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता है। उसके लिए वातानुकूलित सभागृह निर्माणाधीन है।

औषधि उद्यान—आरोग्यधाम में उद्यानों के चार विभाग हैं—(1) वनौषधि उद्यान, (2)

फलोद्यान, (3) साग-सब्जी उद्यान (4) पुष्पोद्यान।

आरोग्यधाम देश-विदेश में उपलब्ध औषधीय पौधों, वृक्षों एवं लताओं को यथासंभव अपने जड़ी-बूटी उद्यान में उगाने में संलग्न है। इसके लिए उपयुक्त वातावरण से युक्त तापानुकूलित वाटिका का निर्माण किया जा रहा है। आरोग्यधाम की वनौषधि, फल-फूल तथा साग-सब्जियां जैविक खाद की सहायता से ही उत्पादित की जा रही हैं। आजीवन स्वास्थ्य-संवर्धन के लिए इस बात का विशेष ध्यान रखना अनिवार्य है कि रासायनिक खाद का एक कण भी आरोग्यधाम में नहीं आएगा। आरोग्यधाम के लिए आवश्यक मात्रा में फल-फूल, साग-सब्जी एवं ज्यादातर वनौषधियां अपने परिसर के उद्यानों में ही उपजाने की व्यवस्था की जा रही है।

स्वास्थ्य परामर्श प्रकोष्ठ—आजीवन स्वास्थ्य लाभ नई अवधारणा नहीं है, किंतु काल के प्रवाह में यह इतनी विस्मृत हुई है कि आज इसकी कल्पना करना भी कठिन हो गया है। नई पीढ़ी के लोग किसी-न-किसी रोग से पीड़ित रहते हैं। इस क्रम को रोकना व्यक्तिगत एवं सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है। यह तभी संभव है, जब माता-पिता इस ज्ञान से संपन्न हों। इसी हेतु से आरोग्यधाम-परिसर में आजीवन स्वास्थ्य परामर्श प्रकोष्ठ प्रारंभ किया जा रहा है। इस प्रकोष्ठ में स्वास्थ्य-संवर्धन के विशेषज्ञों द्वारा नव दंपतियों को आजीवन स्वास्थ्य लाभ के लिए परामर्श दिया जाएगा। विवाह योग्य युवक-युवतियां भी इस परामर्श का लाभ ले सकती हैं। प्रौढ़ महिला-पुरुषों को भी स्वास्थ्य-लाभ के लिए परामर्श उपलब्ध होगा।

आरोग्यधाम का उपयोग—आजीवन स्वास्थ्य लाभ व्यक्तिगत विषय नहीं है। इसका उल्लेख किया जा चुका है। चित्रकूट स्थित आरोग्यधाम परिसर तक ही यह प्रयोगशाला सीमित रखने से इसकी व्यावहारिकता सिद्ध नहीं होगी। अतः इस प्रयोगशाला को व्यापक रूप दिया जा रहा है।

ग्रामीण-अंचल के निवासी देश भर में सभी दृष्टियों से उपेक्षित हैं। बड़े-बड़े उद्योगपति एवं धनी महानुभाव एक से एक आधुनिक और विशाल अस्पताल बड़े-बड़े शहरों में खड़े करने में ही संलग्न हैं। उनका लाभ समाज के अल्पसंख्य सुख-सुविधा-संपन्न लोगों तक ही सीमित है। फलस्वरूप अधिसंख्य ग्रामीण समाज इन सुविधाओं से वंचित रहता है। ये पूंजी-प्रधान अस्पताल भी आजीवन स्वास्थ्य लाभ कराना तो दूर रहा, देश में निरंतर बढ़ते हुए रोगियों एवं रोगों के उपचार के लिए दवाएं भी उपलब्ध कराने में असमर्थ साबित हो रहे हैं। गरीब लोग तो इन खर्चीले अस्पतालों की स्वास्थ्य सेवाओं से सर्वथा वंचित ही रहते हैं। 'आरोग्यधाम' इस गंभीर समस्या का स्थायी हल ढूंढ़ने के लिए कटिबद्ध है।

आरोग्यधाम ने चित्रकूट के चारों ओर फैले ग्रामीण-अंचल में सौ स्वास्थ्य-केंद्र (ग्राम समूह) प्रस्थापित करने की दिशा में कदम बढ़ाया है। हर एक स्वास्थ्य-केंद्र के अंतर्गत पांच-पांच आबादियां सम्मिलित हैं। इस प्रकार आरोग्यधाम की आजीवन स्वास्थ्य लाभ

प्रयोगशाला पांच सौ ग्रामीण-आबादियों को सेवा प्रदान करती है। इतने व्यापक स्तर पर प्राप्त सफलता संसार के किसी भी देश के लिए सहज में ही अनुकरणीय सिद्ध होगी।

दादी मां का बटुआ—आज ग्रामवासी आजीवन स्वास्थ्य लाभ की लंबी दौड़ में सम्मिलित होने की मनःस्थिति में नहीं हैं। वे छोटी-छोटी बीमारियों के उपचार के अभाव के कारण ही परेशान हैं। प्रारंभ में उनकी साधारण बीमारियों के निवारण का काम शुरू करना आवश्यक है, अतः आरोग्यधाम ने 'दादी मां का बटुआ' नाम से ग्रामीण-अंचल के लिए सरल रोगोपचार पद्धति अपनाई है। चित्रकूट रसशाला में निर्मित काष्ठौषधियों का एक लघु संग्रह तैयार किया गया है। सभी प्रकार के साधारण रोगों के निवारण में ये ओषधियां लाभकारी हैं। इनका गलती से हुआ प्रयोग भी किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुंचाता।

लोगों की साधारण बीमारियां दूर करने के लिए आबादी के समझदार एवं सेवाभावी प्रौढ़ व्यक्ति को दादी मां का बटुआ सौंपा जा रहा है। उन्हें इसका उपयोग सिखाया जाता है। इससे सभी सामान्य रोगों का निवारण हो रहा है। ग्रामीण महिला एवं पुरुष इस योजना से प्रभावित एवं प्रसन्न हैं। ग्रामीण अंचल में आजीवन स्वास्थ्य उपलब्धि की दिशा में आरोग्यधाम का यह प्रारंभिक कदम है।

प्रसूति विज्ञान प्रशिक्षण—देश के हर ग्राम में बच्चे जन्म लेते हैं। यह क्रम अनंत काल से अखंड रूप से चला आ रहा है। यह अबाधित रूप से चलता ही रहेगा। प्रसूति-विज्ञान के विकास का प्रवेश ग्रामीण-अंचल में न पहुंचा है, न पहुंचने की संभावना दिखाई देती है। परिणामस्वरूप सरकारी आंकड़ों के अनुसार ग्रामीण-अंचल में प्रतिवर्ष जन्म पानेवाले नवजात बच्चे एवं जन्म देनेवाली माताएं लाखों की संख्या में मृत्यु की शिकार हो रही हैं। आरोग्यधाम ने इस संकट से ग्रामीण अंचल को उबारने के लिए 'प्रसूति-विज्ञान प्रशिक्षण कार्य' प्रारंभ किया है। आजीवन स्वास्थ्य उपलब्धि के लिए इस दिशा में भी कदम बढ़ाना आवश्यक है।

आरोग्यधाम ने चित्रकूट के ग्रामीण-अंचल में सौ समाज-स्वास्थ्य केंद्र प्रस्थापित किए हैं। हर समाज स्वास्थ्य-केंद्र के अंतर्गत पांच-पांच आबादियां सम्मिलित हैं। ऐसे पांच-पांच समाज-स्वास्थ्य-केंद्रों को मिलाकर प्रति छह माह में एक बार प्रसूति-विज्ञान प्रशिक्षण-शिविर आयोजित किया जाएगा। इसमें पांचों स्वास्थ्य-केंद्रों की आबादियों में परंपरागत रूप से काम करनेवाली दाइयां सम्मिलित होंगी। प्रसूति-काल में दो कार्य अनिवार्य रूप से संपन्न करने होते हैं—एक नवजात शिशु की नाल काटने का तथा दूसरा प्रसूत मां की देखभाल करने का। इन दोनों कार्यों को करते समय स्वास्थ्य सम्मत उपायों की आवश्यक जानकारी इन दाइयों को नहीं होती। फलतः नवजात शिशु की जीवनलीला कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाती है। वही हाल जन्म देनेवाली माताओं का भी होता है। इस समस्या के निराकरण के लिए आरोग्यधाम ने ग्रामीण-अंचल में व्यापक स्तर पर प्रसूति-विज्ञान प्रशिक्षण कार्य प्रारंभ किया है।

समाज स्वास्थ्य-शिल्पी ग्राम प्रकृति की गोद में बसे हैं, किंतु वहां भी स्वस्थ पर्यावरण का अभाव है। सदियों से वे स्वास्थ्यवर्धक जानकारी से वंचित हैं। वहां शुद्ध पेयजल का भी अभाव है। ग्रामीण आबादियों में कुपोषण आम बात है। फलस्वरूप प्राकृतिक वातावरण की अनुकूलता के बावजूद ग्रामीणों के प्राथमिक स्वास्थ्य-केंद्र बेअसर सिद्ध हो रहे हैं, अतः आरोग्यधाम ने चुने हुए सौ ग्राम-समूहों के स्वास्थ्य-केंद्रों में एक-एक समाज स्वास्थ्य-शिल्पी दंपती नियुक्त करना प्रारंभ किया है।

समाज स्वास्थ्य-शिल्पी पति-पत्नी का जोड़ा होने के कारण ग्रामीण आबादी के सभी महिला-पुरुष स्वास्थ्य-संवर्धन की दिशा में सक्रिय होने लगे हैं। इससे अस्वास्थ्यकर समस्याओं का निराकरण संभव हो रहा है। यह कार्य स्वाध्याय एवं शोध आधारित होने के कारण स्वास्थ्य-शिल्पी पति और पत्नी अर्थात् दोनों का स्नातक होना अनिवार्य है। ग्रामीण-अंचल की असुविधाजनक हालत में संवेदनशीलता एवं लगन के बिना आधुनिक एवं शिक्षित युवक-युवतियां ग्रामीण-अंचल में रहना पसंद नहीं करते। लगनशील एवं समर्पित पति-पत्नी के जोड़े उत्साह एवं सेवाभाव से इस काम में संलग्न हो रहे हैं। यह विशेष खुशी की बात है कि सर्वव्यापी व्यक्तिगत स्वार्थ के माहौल में अपना समाज आदर्शवादी युवक-युवतियों की पूर्ति कर रहा है। इससे भारत के उज्ज्वल भविष्य के प्रति विश्वास बढ़ता है।

इतने व्यापक कार्य का शुभारंभ करना कठिन था, किंतु सबसे पहले बॉम्बे हाउस (टाटा हाउस) के उदारचेता चेयरमैन माननीय श्री रतन टाटा ने इस कार्य की महत्ता अनुभव कर आर्थिक सहायता करने के लिए हाथ बढ़ाया। उनकी इस कृपा से इस कार्य का श्रीगणेश संभव हुआ है। अब अन्य संवेदनशील धनीमानी लोग आर्थिक सहायता के लिए आगे आ रहे हैं। वस्तुतः आजीवन स्वास्थ्य लाभ की कल्पना स्वर्गीय श्री जे.आर.डी. टाटा के मन की बात थी। दीनदयाल शोध संस्थान के साथ हुई उनकी चर्चा में उन्हें विश्वास हुआ कि आजीवन स्वास्थ्य लाभ में आयुर्वेद एवं योग विज्ञान ही कारगर हो सकते हैं। मानवीय भावना से ओत-प्रोत होने के कारण इस कार्य में योगदान करने की उनकी इच्छा प्रबल हुई। दुर्भाग्य से आज वे इस अभिनव प्रयोग को देखने के लिए हमारे बीच में नहीं रहे। 'भारतरत्न' की उपाधि से विभूषित भारत के ऐसे महान् सपूत स्वर्गीय श्री जे.आर.डी. टाटा की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए आरोग्यधाम समर्पित है।

कौटुंबिक स्वास्थ्य

व्यक्तिगत एवं सामाजिक स्वास्थ्य का आधार है कौटुंबिक स्वास्थ्य। कुटुंब में सभी के स्वास्थ्य संवर्धन की आवश्यक व्यवस्था न रही तो न व्यक्ति स्वास्थ्य प्राप्त कर पाता है, न आबादी का ही स्वास्थ्य बना रह सकता है। अभी कौटुंबिक स्वास्थ्य संवर्धन का प्रबंध प्रचलित नहीं है। इसी कारण आरोग्यधाम ने इस दिशा में पहल की है। आरोग्यधाम में पंद्रह स्वास्थ्य कुटीरों का निर्माण किया जा रहा है। इनमें कम-से-कम पंद्रह दिन या एक माह कुटुंबों के

रहने का तथा उन्हें कौटुंबिक स्वास्थ्य लाभ के लिए आवश्यक अभ्यास कराने का प्रबंध किया है। स्वस्थ पर्यावरण एवं मनोरम परिसर इन स्वास्थ्य कुटीरों की विशेषता है।

अनेक संक्रामक रोगों का व्यापक स्तर पर नियंत्रण होने के कारण नागरिकों की औसत आयु बढ़ी है, किंतु तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाए तो स्वास्थ्य के स्तर में अपेक्षित सुधार नहीं हुआ है। औषधियों एवं उपचारों में वृद्धि हो रही है। कुपोषण की समस्या अधिकाधिक व्यापक बन रही है। सामाजिक जीवन में निरंतर वृद्धिंगत विषमता इसकी जड़ है। जनजीवन में परस्पर-पूरकता लाए बिना सभी नागरिकों का स्वास्थ्य संवर्धन संभव नहीं है। शैशवावस्था में स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा अनेक रोग निरोधक टीकों का प्रावधान किया गया है। उसका भी लाभ उठाना चाहिए।

□

कार्यकर्ताओं में आर्थिक स्वावलंबन की दृष्टि जाग्रत् करने और योजनापूर्वक कार्य संपादन करने से लेकर समाज के राजनीतिक और व्यवसायी वर्ग को ग्रामीण विकास की ओर प्रतिबद्ध होने का बोध कराते नानाजी के चुनींदा पत्र।

विराट् पुरुष

1

19 फरवरी, 1981

प्रिय सुरेश,

तुम, बंडू और लालजी शुक्ल मिलकर तालाब के कार्य को आवश्यक गति से पूर्ण करने में जुट गए होंगे, यह विश्वास है। आप लोगों को इस बात की कल्पना है कि 15 मार्च के बाद पर्याप्त संख्या में मजदूरों का मिलना बहुत कठिन हो जाएगा। अत: मजदूरों द्वारा किया जानेवाला काम 15 मार्च के पहले पूर्ण होना नितांत आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखकर ही आप लोग काम में लगे हुए होंगे।

मैं दिनांक 3 मार्च की प्रात:काल कलकत्ते से विमान द्वारा लखनऊ पहुंच रहा हूं। उसी दिन रात्रि की ट्रेन से मैं आगरा जाऊंगा। अत: 3 मार्च के प्रात:काल 8:00 बजे के पहले प्रिय लालजी शुक्ला को लखनऊ पहुंच जाना चाहिए। 3 मार्च तक तालाब का जितना काम हुआ होगा, उस काम का नाप सहित नक्शा बनाकर प्रिय लालजी लखनऊ ले आवें। तालाब में किए जानेवाले तीन काम हैं—

- मछलियों को हटाकर पानी निकालना और तालाब को सुखवाकर डेढ़ फीट गहरा करना।
- वाटर प्रूफिंग करने के लिए किनारों को पोलीथिन के इंजीनियर के द्वारा बनाए हुए नक्शे के अनुसार आवश्यक स्लोप देते हुए खुदवाना और पोलिथिन के पूर्व जितनी रेत की लेयर देना है, उतनी रेत को ला करके स्टोर करवाना। और
- तीसरा काम है तालाब के किनारे-किनारे जमीन से 9 इंच ऊंचाई तक सीमेंट और बालू की चुनाई के द्वारा ईंटों की दीवार खड़ी करना। 3 मार्च तक इन तीनों कामों की प्रगति का ठीक-ठीक विवरण प्रिय श्री लालजी शुक्ल के द्वारा मुझे मिलना चाहिए, यदि किसी प्रकार की आवश्यकता अनुभव होती हो तो आप या बंडू इनमें से कोई एक 3 मार्च को मुझसे मिलने के लिए आ सकता है।

2

2 फरवरी, 1983

प्रिय सुरेश,

यह जो पत्र लिख रहा हूं, वह तुम्हें दु:खी करने के लिए नहीं, तुम्हारा व्यक्तित्व सफलता की चरम सीमा पा सके, इसी एक कामना से। तुमने अपने विवाह के मंगल प्रसंग पर उपस्थित सगे-संबंधियों के सम्मुख नीलम का नाम लेते हुए खुलकर कहा था कि तुम एक सपना साकार

1 *प्रत्येक कार्य की अग्रिम योजना नानाजी की सफलता की कुंजी थी। सुरेश देशपांडे, मा. नानाजी के परिवार के सदस्य और डीआरआई के कार्यकर्ता।*
2 *अर्थशास्त्र का महत्वपूर्ण हिस्सा है अर्थानुशासन। यह रेखांकित करता एक पत्र।*

करने के लिए नीलम के साथ विवाहबद्ध हो रहे हो। अपनी उदात्त घोषणाओं को मूर्तरूप प्रदान करना ही मानव जीवन की सच्ची सफलता मानी जाती है। वास्तविक रूप में यह एक कठोर तपस्या ही हुआ करती है। इसी में मानव जीवन की सार्थकता एवं महानता है।

तुमने स्वयं मेरे साथ काम करने का संकल्प किया है। मैं नहीं जानता कि तुम्हारे इस संकल्प के मूल में क्या प्रेरणा रही, किंतु मेरे मानस में केवल एक ही भाव था कि मेरी अपनी बड़ी व मातृवत् बहन के बेटे का सुपुत्र अर्थात् मेरे अपने ही परिवार का एक युवक मेरी ध्येयसाधना में सहयोगी बन रहा है। साधारणतः बड़े-से-बड़े लोग त्याग व बलिदान के लिए अन्य तरुणों को तो प्रेरित करते हैं, किंतु अपने बच्चों के जीवन को सुरक्षित एवं सुखी बनाने में ही लगे रहते हैं। इस ढोंगी प्रथा का तुम्हारे कारण विकल्प प्रस्तुत कर सकूंगा, इस भावना से खुश होकर ही तुम्हारे संकल्प को मैंने माना था तथा नए व उपयुक्त आदर्श प्रस्तुत करने का मुझे समाधान प्राप्त हो सका था। इतिहास की घटनाएं, जैसे गुरु गोविंद सिंह ने अपने बच्चों को दीवार में चुने जाने से अभिमान माना, केवल अपने भाषण को अधिक आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए नहीं होतीं—उनका समयानुकूल व्यवहार करने के लिए ही होती हैं। मैं इसी भावना का उपासक हूं।

इसी चिंतन में से मैंने ऐसा उद्योग, जिसे सर्वसाधारण लोग निम्न प्रकार का मानते आए हैं, तुम्हारे लिए चुना—अर्थात् मुरगीपालन का। तुमने भी सहर्ष तत्परता प्रकट की और मैंने तुम्हें प्रशिक्षण के लिए हैदराबाद राकेश आहूजा के पास भेजा। उसी समय मेरे मन में सहज में स्मृति जाग उठी थी—वह थी स्व. आचार्य कृपलानी के जीवन की। वे अपनी प्रोफेसरी छोड़कर गांधीजी से प्रभावित हो उनके आश्रम में प्रविष्ट हुए। उन्हें गांधीजी ने सभी के शौचालय साफ करने का काम सौंपा। यह देख सभी आश्रमवासियों को अटपटा सा लगा। एक कुशाग्रबुद्धि, अनुभवी व सफल प्राध्यापक आश्रम में काम करने आया और उसे शौचालय की सफाई का काम दिया गया। उसी काम में से आगे आचार्य देश की महान् हस्ती बने। मुरगी पालन का कार्य वैसे ही स्तर का माना जाता रहा है। उसे तुमने सहर्ष स्वीकार किया, यह देख मेरा मन भर आया था। साधारणतः मैं अपने मन के ऐसे भाव प्रकट नहीं होने देता। इस कारण वे किसी के ध्यान में न आए हों।

राकेश ने अपनी पूंजी लगाकर किस सफलता के साथ वह धंधा चला रखा है, यह तुम जानते हो। वह यह कार्य अपने ही लाभ के लिए कर रहा है। उसके सम्मुख कोई उदात्त लक्ष्य नहीं है। तुम्हारा लक्ष्य महान् है। तुम्हें लोगों के लिए नमूना प्रस्तुत करना है कि इस धंधे से कितना अधिक धन कमाया जा सकता है। नौकरी से अधिक धन और स्वतंत्र जीवन, यह इस धंधे की विशेषता है। कम लागत में इतनी आय यह दूसरी विशेषता है इस धंधे की। यह लोगों को अनुभव कराकर जिले के अनेक युवकों को इसे अपनाने के लिए प्रेरित करने का तुम्हारा उदात्त भाव इस धंधे का प्रशिक्षण लेने के पीछे तुम्हारा रहा है। अतः राकेश से तुम्हारा मुरगीपालन अधिक प्रगतिशील एवं लाभकारी सिद्ध होगा, यही मेरी अपेक्षा रही है, किंतु तुम्हारे मुरगीपालन उद्योग की अवस्था देखकर मेरे मन में एक प्रश्न उपस्थित हो रहा है और उसी वेदनावश मैं यह पत्र लिख रहा हूं।

विराट् पुरुष

राकेश के मुरगीपालन में उसका अपना धन लगा है। तुम्हारे मुरगीपालन में समाज का धन लगा है। राकेश की लाभ–हानि उसकी अपनी निजी होगी। तुम्हारी लाभ–हानि धन की दृष्टि से तुम्हारी अपनी नहीं है। वह लाभ–हानि समाज की है। अपेक्षा यह थी कि समाज का धन होने के कारण तथा समाज में इस उद्योग के प्रति प्रेरणा जगाने का पावन–लक्ष्य सम्मुख होने के कारण तुम्हारा उद्योग राकेश से अधिक सफल होगा, किंतु क्या व्यक्तिगत लाभ की प्रेरणा के सम्मुख सामाजिक सेवा की प्रेरणा कमजोर सिद्ध होगी? क्या हम लोग व्यावहारिक जीवन में सामाजिक प्रेरणा को प्रभावी बनाने में सफलता अर्जित न कर सकेंगे?

तुम्हारे सामने लक्ष्य रखा था कि तुम 2000 मुरगियों के पालन का नमूना खड़ा करोगे। वहां तुम्हारे पास केवल दो सौ के ही लगभग मुरगियां बनी हुई हैं। इस हालत के लिए दोष दूसरों के मत्थे मढ़ा तो जा सकता है, किंतु इस काम का दायित्व तो तुम्हारा अपना रहा है। सब देखकर मैं कितना व्यथित हो रहा हूं, यह मैं किसे कहूं? भाषणों में, चर्चा में, बैठकों में राष्ट्रीय एवं सामाजिक भावनाओं का रूप खड़ा करना हो तो हम विफलता के भागी बनें। यह क्यों? इसका उपाय क्या है? हम इसका उपाय न खोज सकें तो अपने समाज का भविष्य उज्ज्वल बनाना कैसे संभव होगा? यही प्रश्न मुझे आजकल परेशान किए हुए है।

सुरेश, जरा आत्मनिरीक्षण करो। यह विफलता हमारी निराशा का कारण न बने—हम इस अनुभव से सब गलतियों पर काबू पाएं और एक साल में ही अपने निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त कर दिखाएं। तुम जरा सा ध्यान में लाओ कि लोग मुझ पर भरोसा रखकर कितने मुक्तहस्त से हमें आर्थिक योगदान दे रहे हैं। उनके विश्वासपात्र बने रहना अपना कर्तव्य है, उसमें चाहे सो त्याग हमें करना पड़े। चाहे सो कष्ट उठाना पड़े, चाहे जितना दिमाग लड़ाना पड़े। हमें इस युग में सिद्ध कर दिखाना है कि पारिवारिक दायित्व से सामाजिक दायित्व अधिक प्रेरक एवं अधिक फलदायी है। इसी पर अपने समाज का भविष्य निर्भर है। यह सिद्ध करने में ही तुम्हारे सहयोग की महत्ता है।

मुझे स्वामी एकनाथजी के गुरु के जीवन की घटना याद आ रही है। वे एक खजांची थे। एक दमड़ी का हिसाब मिलने में कठिनाई हो रही थी। वे रात भर सो न सके। जब हिसाब मिला तो प्रातः हो चुकी थी और वे दफ्तर में ही जमे हुए थे। सामाजिक दायित्व की यह एक घटना है हमारे पूर्वजों के जीवन की। क्या हम वैसे नहीं बन सकेंगे? किसी विषय को समझाने का काम तो अनेक लोग करते हैं, किंतु इस काम को नमूने के रूप में खड़ा करनेवाले कम हैं। वाचालता ही वर्तमान में पुरुषार्थ का स्थान पा बैठी है। हमें इसे ही तो बदलना है।

काम बहुत है, यह भाव मन में रखना अपनी क्षमता घटाने के लिए कारण बनेगा। एक–एक व्यक्ति सैकड़ों उद्योग चलाते हुए मैं देख रहा हूं। क्या हम एक या दो उद्योग भी चलाने लायक नहीं हैं? मन को एकाग्र करना होगा। सामाजिक आदर्श प्रस्थापित करनेवाले का जीवन सामान्य पारिवारिक लोगों के जीवन से भिन्न होता है। वह अपने सगे–संबंधियों के लिए अपने जीवन में नहीं के बराबर स्थान रखता है। वह अपने आदर्श के लिए पागल रहता है। मैंने 1937 में घर छोड़ा। उसके बाद 1945 में स्व. भाई साहब की पत्नी का देहांत हुआ तो वे मुझे खोजते–खोजते

काशी पहुंचे। मैं उस समय भी उनके साथ न जा सका। काशी में लगने वाले ओ.टी.सी. की व्यवस्था मेरे ऊपर थी। कुछ ही दिनों बाद उनके एकमेव पुत्र का देहांत हुआ। तार मिला। मैं उस समय 3 मई, 1945 की रात में 8 बजे घर पहुंचा व चार मई की प्रातः चार बजे ही घर से चल पड़ा। उसके बाद 1958 में भाई साहब बहुत बीमार पड़े, तब तीन दिन के लिए उनके पास रहा। 1962 के अगस्त में उनका देहावसान हुआ। मैं कानपुर में प्रादेशिक प्रशिक्षण शिविर में था। तार देखकर लता बहन ने कहा कि आप किराए पर पूरा हवाई जहाज लेकर जाएँ, मैं पैसा दूंगी। उस समय मैंने कहा, लता बहन! अब तो वे नहीं रहे, मेरे जाने न जाने से फर्क नहीं पड़ेगा। पांच दिन का वर्ग पूर्ण कर बाद में हिसाब-किताब पूरा कर घर गया। लोग क्या कहेंगे, इसकी परवाह नहीं की। इसका परिणाम है कि लोग अन्य किसी नाते-रिश्तेदार से मेरी कदर अधिक करने लगे हैं। तपस्या तपस्या होती है। यह किसी के कहने से साध्य नहीं होती। इसे स्वयं को अपनाना पड़ता है। स्वयं की प्रेरणा से, अन्यथा अपना व्यक्तित्व समाज के लिए लाभकारी नहीं बन सकता।

हमें एकाग्र होकर अपनी सभी शक्तियों के लिए काम में लगाना होगा। सफलता पाए बिना अन्य किसी बात के कारण विचलित न होकर रात-दिन काम में जुटना होगा। अन्यथा अपेक्षित सफलता पाना असंभव है।

तुम्हारे में क्षमता है। कुशलता भी है। अतः तुम मुरगीपालन के काम में आश्चर्यजनक सफलता अर्जित कर दिखाओ। जो काम हाथ में लिया, वह ही एकमेव धर्म मानो। सामाजिक भावना से काम करनेवाला अधिक फलदायी हो सकता है व्यक्तिगत लाभ कमानेवाले से, यह सिद्ध कर दिखाओ। यही इस युग की आवश्यकता है।

3

7 सितंबर, 1992

प्रिय श्री कांतिभाई,

दिनांक तीन सितंबर को भी आपने प्रिय राठी के घर आने का कष्ट किया। उस दिन मैंने आपको मेरे मस्तिष्क में जो विचार तैर रहे थे, उनका अधूरा नोट पढ़कर सुनाया था। प्रवास में उसे पूर्ण कर आज टाइप करा लिया है। वह इस पत्र के साथ संलग्न है। उसमें से आप जो उचित समझें, उतने का ही उपयोग करें।

आपको प्रोजेक्ट बनाने का अनुभव है। अतः आप इसे एक बहुत उत्तम प्रोजेक्ट के रूप में बनाएंगे ही। सरकारी तंत्र में संलग्न अधिकारी हर चीज अंग्रेजी में ही चाहते हैं। वही हाल मंत्रियों का भी है। उद्योगपति तो अंग्रेजी के ही अभ्यस्त हैं। कारण, उन्हें उस भाषा का उपयोग करना

3 *स्वावलंबन में उद्योगपतियों की भूमिका का चित्रांकन करता श्री कांतिभाई श्रॉफ को लिखा पत्र।*

अनिवार्यता होता है। अतः यह प्रोजेक्ट अंग्रेजी में ही लिखना होगा।

बहुत सी बातें मैंने अपने नोट में लिखी नहीं हैं। वस्तुतः संपूर्ण भारत का आर्थिक विकास तथा सर्वसाधारण नागरिकों की खुशहाली स्वतंत्र भारत की सरकारी प्रणाली द्वारा संभव नहीं है। यह गत 45 साल के अनुभव से सिद्ध हुआ है।

यदि देश के छोटे-बड़े उद्योगपति इस काम में लगाए जा सकेंगे, तभी उपर्युक्त लक्ष्य पूरा हो सकेगा, ऐसा मैं अनुभव करता हूं। इसी कारण यह प्रयास है।

मैं रेल या कार से प्रवास करता हूं तो दिखाई देता है कि लाखों हेक्टर जमीन बेकार पड़ी है। देश की संपत्ति बढ़ाने की दृष्टि से उसका आज तक कोई उपयोग नहीं हो पाया है। वेस्ट लैंड डेवलपमेंट बोर्ड कोई परिणामजनक काम नहीं कर सका है।

देश के वन विभाग की भी इससे भिन्न स्थिति नहीं है। हर जिले में विभिन्न प्रकार के जानवर हैं। देश की समृद्धि बढ़ाने की दृष्टि से इनकी नस्ल सुधार के देशी ढंग से उपाय अपनाकर आवश्यक एवं उपयुक्त काम नहीं हो रहा है।

हर जिले में जानवर मरते हैं। जानवर मरते ही दो घंटे के अंदर उनका चमड़ा निकालकर उसे नमक लगाकर नहीं रखा गया तो वह चमड़ा उत्तम चमड़ा सिद्ध नहीं होता। वस्तुतः हर जिले में छोटी-छोटी टेनरीज चलाई जाएं तो देश की समृद्धि बढ़ सकती है तथा बहुतों को लाभदायी रोजगार उपलब्ध हो सकता है।

ऐसी अनेक बातें हैं। प्रचंड मानव शक्ति का उपयोग राष्ट्र की समृद्धि बढ़ाने में नहीं किया जा रहा है। अपना देश समृद्धि के शिखर पर पहुंचाया जा सकता है, किंतु उसे भयानक कर्ज से लादा गया है। इससे मन को बहुत पीड़ा होती है।

इस कारण आपके द्वारा यह प्रोजेक्ट बनवाकर जहां उद्योगपतियों को प्रेरित करने का प्रयास है, वहां सत्तारूढ़ लोगों को भी इस दिशा में अनुकूल कदम बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने का मानस है।

प्रोजेक्ट की भाषा वस्तुस्थिति को अवश्य स्पष्ट करें, किंतु किसी के लिए ऑफडिंग भी न हो, इसका ध्यान आप रखेंगे ही।

4

24 मई, 1993

प्रिय डॉ. एस.पी. सिंहजी,

चित्रकूट और गोपालग्राम के वैज्ञानिकों को अपनी-अपनी जीप लेकर सुल्तानपुर के प्रशिक्षण-वर्ग में जाना उचित नहीं था। यह अपव्यय है, इसमें संदेह नहीं है। अतः दोनों जगहों की जीपों के आने-जाने पर जो भी व्यय हुआ होगा, वह मैं उन लोगों के वेतन से कटवाने के लिए सूचना भेज रहा हूं।

4 *अपव्यय पर खेद प्रकट करता पत्र। डा. सिंह डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

आप अनुभवी अधिकारी हैं। कार्य में त्रुटियां रह सकती हैं और गलतियां भी हो सकती हैं, इसका आपको अनेक बार अनुभव आया होगा। जो गलती हुई है, उसे मानने में किसी को संकोच होना नहीं चाहिए और हमें ऐसा संकोच न कभी रहा है, न कभी रहेगा। त्रुटियों को दूर करने की दृष्टि से भी हम पूरी तरह से प्रयत्नशील रहेंगे, किंतु आपसे मेरा एक ही सविनय अनुरोध है कि आप किसी की भावनाओं पर संदेह करने की कृपा न करें। किसी भी विकासात्मक या प्रशिक्षण-कार्य में परस्पर सद्भावना के साथ सहयोग की आवश्यकता होती है। जहां परस्पर संदेह का वातावरण निर्माण होता है, वहां सहयोग में कमी आती है। कृषि विज्ञान-केंद्रों के माध्यम से हम लोगों को मिलकर नव-निर्माण का महान् कार्य करना है। यह परस्पर सद्भावनाओं के बिना संभव नहीं होगा।

5

31 अगस्त, 1994

प्रिय बेटी हेमांगी,

अमेरिका से भेजा हुआ तुम्हारा पत्र मिला था, किंतु उसका उत्तर देने की मैंने आवश्यकता नहीं समझी। अमेरिका से वापस आने के बाद तुम्हारा यह विस्तृत पत्र पढ़कर बहुत खुशी हुई। तुम्हारा अमेरिका जाने का कार्यक्रम सार्थक हुआ। वहां किए हुए संभाव्य अध्ययन से तुम संतुष्ट हो, यह विशेष खुशी की बात है।

साधारणतः बहुत कम विषय होते हैं, जो सभी देशों में समान रूप से लागू हो सकते हैं। वस्तुतः अमेरिका बहुत नया देश है। पुराना अमेरिका खत्म हो चुका है। कारण, यूरोप के लोगों ने वहां जाकर स्थानीय लोगों का सफाया कर दिया है। अमरीका बहुत विशाल है। यूरोप से गए हुए लोग शहरों को बसाकर वहीं रह रहे हैं। अमेरिका की तीन और चार प्रतिशत के बीच की आबादी कृषि कार्य में संलग्न है। इस कारण वहां खेती बहुत विशाल पैमाने पर होती है। यूरोप के लोग जाने के पूर्व अमेरिका के मूल निवासी देहाती संस्कृति के थे और उनके खेत भी छोटे-छोटे होते थे। अमेरिका और भारत की भिन्नता का यह एक पहलू है। दूसरा पहलू हवामान का है, जिसमें कंपोस्ट खाद तैयार करना एक समस्या बन जाती है, किंतु अमरीका में कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहां यह सहज संभव है। उस ओर तुम्हें जाने का अवसर नहीं मिला। अमरीका का जो फ्लोरिडा क्षेत्र है, उस क्षेत्र में कंपोस्ट खाद बनाना लगभग बारहों माह संभव हो सकता है। इन क्षेत्रों में भी मैं पर्याप्त प्रवास कर चुका हूं।

वस्तुतः सभी बातें विश्वव्यापी बन नहीं सकतीं। यह बात मुझे बहुत व्यावहारिक लगती है— 'साइंस इज यूनिवर्सल बट टेक्नोलॉजी इज लोकल'। खाद तैयार करना, यह भी एक टेक्नोलॉजी है। वह सब जगहों में एक सी हो, यह संभव नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ठंडी जलवायु में सेंद्रीय खाद बन नहीं सकती। सेंद्रीय खाद के उत्पादन का तरीका जलवायु के अनुसार भिन्न-

5 *नानाजी विदेशी तकनीक के विरोधी नहीं थे। वह भारतीय तकनीक को दुनिया भर की तकनीक में सबसे उपयुक्त मानते थे। डीआरआई की कार्यकर्ता हेमांगी जांभेकर को लिखा पत्र।*

भिन्न हो सकता है।

वस्तुतः हम भारत के लोगों को अपने देश की परिस्थिति के अनुसार बहुत कुछ करना है। केंद्रीय या प्रादेशिक सरकारों से सहायता मिल सकती है तो उसे स्वीकार किया जा सकता है। किंतु विदेशों से आर्थिक सहायता लेकर हम अपने प्रयोग करें, यह उचित होगा क्या, यह प्रश्न मेरे सम्मुख है।

वस्तुतः मैंने जब रचनात्मक क्षेत्र में पदार्पण किया तो कुछ निश्चित धारणाओं को लेकर ही कार्य की दिशा निश्चित की थी और तदनुसार ही कार्य कर रहा हूं। गोंडा प्रकल्प में दो वर्ष में 27,500 नलकूप पांच एकड़ या पांच एकड़ से कम खेतीवाले किसानों के खेतों में लगवाए गए तो यह बात लोगों के लिए भरोसा करने लायक नहीं थी। भारत में यू.के. के जो हाई कमिश्नर थे, वे स्वयं अपनी गाड़ी लेकर गोंडा पहुंचे थे, लेकिन गोंडा में उनकी विशालकाय कार गांव-गांव नहीं जा सकती थी। अतः वे मोटर साइकिल से ही गांव घूमे। उन्हीं के कारण पश्चिम के अनेक देशों को गोंडा प्रकल्प का महत्त्व समझ में आया। जर्मनी ने पांच करोड़ तथा यू.एस.ए. ने 11 करोड़ सहायता के रूप में दान देने की बात कही थी, जिसे स्वीकार करना मैंने उपयुक्त नहीं समझा और मैंने नम्रभाव से उन्हें धन्यवाद देकर क्षमा मांग ली।

अतः मेरा तुमसे आग्रह है कि चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय को केंद्र बनाकर चाहे जितने बड़े पैमाने पर खाद बनाने का काम यदि तुम शुरू करना चाहो तो तुम जितना धन चाहोगी, मैं उसके लिए धन जुटा दूंगा। विश्व बैंक या अन्य किसी देश से पैसा लेकर काम करने के लिए मेरा मन तैयार नहीं है।

संभव है, प्रिय अभय ने तुम्हें यह बात कही भी होगी। एक बार हम लोग मिलें, इसकी आवश्यकता है। कब और कहां मिला जाए, यह प्रश्न हो सकता है, लेकिन मैं चित्रकूट में ही मिलना उपयोगी मानता हूं।

मैंनें प्रिय अभय से कहा था कि मैं हेमांगी को विजिटिंग प्रोफेसर के नाते चित्रकूट विश्वविद्यालय में काम करने का सुझाव देता हूं, जिससे वह इसी विषय को लेकर विद्यार्थियों को पढ़ाए और प्रयोग भी करे।

6

29 नवंबर, 1994

चि. प्रिय शिवेंद्रजी,

कृषि विज्ञान-केंद्र की योजना में विस्तार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। यह विशेषतः कृषि विकास से संबंधित है। राष्ट्र-जीवन में कृषि विकास का महत्त्व कम नहीं है।

किंतु हम सब की पृष्ठभूमि जीवन में एकात्मता को साकार करने की प्रेरणा देती है। अतः हमें जो भी दायित्व निभाने के लिए कार्यक्षेत्र प्राप्त होता है, उस दायित्व को निभाते समय हम अपनी पृष्ठभूमि को विस्मृत नहीं कर सकते, अपितु उस दायित्व की पृष्ठभूमि में

ही हम प्राप्त दायित्व को अधिक प्रभावकारी ढंग से निभा सकते हैं, यही हम स्वयंसेवकों से अपेक्षा है।

आपका केंद्र जयप्रभा ग्राम बनाया गया है। जयप्रभा ग्राम को केंद्र बनाकर आपको गोंडा जिले के आधे भाग को विस्तार क्षेत्र के रूप में सौंपा गया है। प्रारंभिक काल में हमने आपको चिन्मय ग्रामोदय विद्या मंदिर में जिन गांवों से छात्र-छात्राएं पढ़ने के लिए आते हैं, उन छियालीस गांवों में विस्तार का घनीभूत कार्य खड़ा करने का सुझाव दिया है।

अभी मैं जयप्रभा ग्राम आया था। उस समय इस विषय की चर्चा हुई थी। छियालीस गांवों में काम करने के लिए पर्याप्त संख्या में सहयोगियों की आवश्यकता है, किंतु इस समय आप अकेले हैं। ऐसी स्थिति में कैसे काम किया जाए? यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। इसी के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत करने के लिए मैं यह पत्र लिख रहा हूं।

जैसे परिवार समाज की आधारभूत इकाई है, वैसे ही ग्राम राष्ट्रोन्नति की आधारभूत इकाई है। यह ध्यान में रखकर हमें हर ग्राम का सर्वांगीण विकास करना होगा। उसमें कृषि कार्य भी बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है, किंतु वही एकमेव कार्य नहीं है। इसकी हमें अपने मन में स्पष्ट धारणा बनाकर ही कार्य में संलग्न होना पड़ेगा।

अपने ग्राम की उन्नति हो, यह ग्रामीणों की स्वाभाविक अभिलाषा होती है। इस बात का हम लाभ उठा सकते हैं, इसीलिए मैं हर गांव में क्या-क्या काम किए जा सकते हैं, इसकी निम्नांकित सूची दे रहा हूं—

■ **सामाजिक**	– विभिन्न परिवारों में जन्मदात्री महिलाओं के लिए आवश्यक व्यवस्था।
	– जन्म प्राप्त शिशुओं की देखभाल।
	– स्वच्छता—शरीर-परिधान-बिस्तर, आवास आदि।
	– जच्चा-बच्चा के लिए पोषक आहार।
	– गर्भावस्था में आवश्यक स्वास्थ्य परीक्षण के संबंध में परिवारशः स्थिति।
■ **शिशु-बालक-बालिकाएं**	– वृद्धिंगत आयु के बच्चों के अनुकूल खेलकूद एवं आमोद-प्रमोद कार्यक्रम।
	– बालोद्यान का निर्माण।
	– बुद्धि विकास कार्यक्रम।
	– आकलन क्षमता विकास कार्यक्रम।
	– उपयुक्त आहार प्रबंध।

6 *ग्राम विकास के विभिन्न पहलुओं की विस्तृत रूपरेखा। शिवेंद्र कश्यप डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

विराट् पुरुष

- **युवक एवं युवतियां**
  - इनके विकास के अलग-अलग कार्यक्रमों की व्यवस्था करना।
  - शारीरिक विकास खेलकूद-व्यायाम-आसन-प्रतिस्पर्धात्मक शारीरिक कार्यक्रम।
  - सुशिक्षा औपचारिक।
  - सुशिक्षा अनौपचारिक।
  - स्वरोजगार की दिशा में मानसिकता का विकास।
  - तदनुसार विभिन्न औद्योगिक प्रशिक्षण की व्यवस्था।
  - दायित्व बोध-गुण संवर्धन के लिए कार्यक्रम आयोजित करना।
  - ग्रामीण पुनर्रचना में सक्रियता बढ़ानेवाले कार्यक्रम बनाना।
  - सामूहिक जीवन का अभ्यास।

- **महिलाएं**
  - पारिवारिक जीवन का अभ्यास।
  - पारिवारिक प्रबंध—व्यवस्थितता।
  - परस्पर-पूरकता का अभ्यास।
  - संस्कारक्षम परिवार।
  - नूतन संतान के लिए सुसंस्कार।
  - नूतन संतान का समुचित एवं सर्वांगीण विकास।
  - साक्षरता—भगवान् का नाम लिखना—परिवार के सदस्यों के नाम लिखना, रोजमर्रा के कार्यों में काम आनेवाले वाक्यों को लिखना।
  - रामायण पाठ करना।
  - महिला मिलन-कथा कीर्तन।
  - सामूहिक गान।
  - सामूहिक उद्योग।
  - दु:खी, पीड़ित, असहाय एवं उपेक्षितों की सेवा उपकार भावना से नहीं अपितु आत्मीयता के साथ, अपना धर्म मानकर।

- **पुरुष**
  - मैं और मेरा परिवार सुखी, संपन्न और सानंद रहे—इसमें निरंतर प्रगति के दायित्व का निर्वाह।
  - मेरा और मेरे परिवार की प्रगति किसी अन्य के लिए

हानिकारक न हो, इसका सतत् ध्यान रखना धर्म कार्य है।

- मानव परिवार अकेला नहीं रहता, वह ग्राम बनाकर आबादी में रहता है। अतः अपनी प्रगति के साथ गांव के प्रगति में योगदान देना प्रत्येक का दायित्व।
- यह भावना उपदेश के द्वारा न निर्माण होती है, न व्यवहार में आती है। इसका अभ्यास ग्राम विकास के विभिन्न उपयोगी कार्यक्रमों द्वारा कराया जाना आवश्यक।
- सामूहिक कार्यक्रम कथा, कीर्तन, अभिनय, प्रदर्शनी, गायन, वादन, प्रतिस्पर्धाएं आदि। उसके लिए सुनियोजित व्यवस्था करना।
- उपर्युक्त कार्यक्रमों के माध्यम से सर्वसाधारण ग्रामवासियों का मनोरंजन होता है तथा सामूहिक सुसंस्कारक्षम वातावरण भी विकसित होता है। इसी से सामाजिक भावना पनपती है।

■ **ग्राम पुनर्रचना**

- आर्थिक विषमता के कारण अधिकांश ग्रामीण परिवारों के आवासों की स्थिति मानवीय जीवन के अनुकूल नहीं होती। ग्राम में हर परिवार का आवास मानवीय जीवन के उपयुक्त हो, इस दिशा में प्रयास करना आवश्यक है। वस्तुतः हरेक आवास स्वास्थ्यवर्धक, नितांत आवश्यकताओं को पूर्ण करनेवाला तथा शुद्ध प्राणवायु की विपुलता प्रदाता हो। आवास में स्वच्छता बनाए रखने की गुंजाइश हो। सभी ग्रामीण महिला-पुरुषों में यह भावना जाग्रत् करना। इसके लिए व्यावहारिक उपाय योजना करना।
- सभी ग्रामीणों के लिए शुद्ध पेयजल का समुचित प्रबंध नितांत आवश्यक है। इस कार्य को प्राथमिकता देनी होगी।
- ग्राम की गलियां तथा मार्ग सुव्यवस्थित, साफ-सुथरे एवं पेड़-पौधों के द्वारा आकर्षक बनाए जाएं।
- हर घर के अंदर आंगन में या बगल से वृक्षारोपण—सहजन, आंवला, नीम, पपीता लगवाना। जगह के अनुसार अन्य फलों के वृक्ष लगवाए जा सकें तो अधिक अच्छा।
- अपने द्वारा लगाए गए पौधों के फूलों से की गई पूजा अधिक फलदायी होती है।
- घरों से उपयोग में लाया गया गंदा बहता पानी नालियों द्वारा

आबादी के बाहर पहुंचाना। यह पानी में मच्छर या रोग अन्य कीटाणु पैदा कर रोग फैलने का कारण न बने।

- गांव में युवतियां पढ़ी-लिखी हैं क्या? कहां तक उनकी पढ़ाई हुई है?
- गांव में बेकारी की क्या स्थिति है? कितने पढ़े-लिखे बेकार हैं? इनकी अपने जीवन के बारे में क्या योजना है? बेपढ़े बेकार कितने हैं? वे क्या करना चाहते हैं?
- क्या इन्हें कमाई के कुछ साधन उपलब्ध करना संभव है? कौन-कौन से?
- अपने गांव में हरेक परिवार सुखी बन सके, इस दिशा में कौन से कदम उठाना संभव है?

■ **सामाजिक पुनर्रचना निधि**

- हर घर में रोज थोड़ा-बहुत धन या कम-से-कम मुट्ठी भर अनाज सामाजिक पुनर्रचना निधि के लिए अलग जमा करते जाना। इस निधि से अनेक सामाजिक उन्नति के काम किए जा सकेंगे। यह निधि संपूर्ण गांव की निधि है। इस निधि का उचित विनियोग करने के लिए समाज के सर्वमान्य लोगों की समिति गठित की जाए, वह एक राय से इसका संग्रह एवं विनियोग की व्यवस्था करेगी।

■ **स्वास्थ्य**

- गांव में शिशु बाल, प्रौढ़ एवं वृद्धों में साधारणतः कौन-कौन सी बीमारियां पाई जाती हैं? इन बीमारियों में उपचार की क्या व्यवस्था उन्हें उपलब्ध है?
- विवाह योग्य आयु की युवतियों एवं युवकों को माता-पिता बनने के उद्देश्यों से अवगत कराना। माता-पिता के नाते दायित्वों की कल्पना देना। तदनुसार सिद्धता की विधियों से उन्हें अवगत कराना। संस्कारों की विधियों एवं महत्ता समझाना। स्वस्थ, चुस्त एवं प्रसन्न माता-पिता की ही संतान स्वस्थ एवं योग्य हो सकती है।
- रहन-सहन, खान-पान एवं यथासंभव स्वाध्याय के लिए उनकी रुचि एवं सक्रियता बढ़ाना।

7

01 फरवरी, 1995

चि. प्रिय शिवेंद्र,

निश्चित कार्यक्रमों को संपन्न करने में अनेक बाधाएं उपस्थित होती हैं, किंतु उन बाधाओं के कारण निश्चित किए हुए काम में कमी न आने पावे, इसका ध्यान रखा गया तो निश्चित कार्य अपेक्षित गति से संपन्न किया जा सकता है। ऐसा मेरा अनुभव है। एक ही ध्यान रखना पड़ता है कि हम नई जिम्मेदारियां अपने ऊपर न लें।

बाधा के रूप में साधारणतः परिस्थितियां कारण बनती हैं। एक, जिस संगठन के अंतर्गत हम काम करते हैं, उसकी ओर से और दूसरा पारिवारिक दबाव के कारण। इन दोनों में से कैसे रास्ता निकालना, यही अपनी बुद्धिमत्ता और कुशलता पर निर्भर करता है।

गोंडा–बलरामपुर के डिग्री कॉलेजों तथा इंटर कॉलेजों में पढ़नेवाले युवकों से संपर्क बढ़ा रहे हो, यह जानकर खुशी हुई। इसके लिए भी कार्यक्रम ऐसे अपनाए जाने चाहिए, जिनमें से काम करने की वृत्ति बढ़े। तुम्हारे पत्र में इन कार्यक्रमों में कर्तृत्व कला का उल्लेख है। वस्तुतः कर्तृत्व कला विकसित होते ही व्यक्ति कर्तृत्व से मुंह मोड़ लेता है। देश में वही नेता बने हैं, जो कर्तृत्व कला में माहिर हैं और कर्तृत्व से पूर्णतः वंचित हैं। यही अपने देश के दुर्भाग्य का और प्रगतिविहीनता का कारण है। वस्तुतः कर्तृत्व कला के स्थान पर कर्तृत्व का युग प्रारंभ करने की आवश्यकता है। जिस ओर सभी लोग उपेक्षा कर रहे है। केंद्रीय सरकार तथा प्रादेशिक सरकारों में सैकड़ों मंत्री (मिनिस्टर्स) हैं, किंतु वे सभी कर्तृत्व से वंचित होने के कारण देश बरबाद होता चला जा रहा है।

इसी कारण दीनदयाल शोध संस्थान के किसी भी कार्यक्रम में कर्तृत्व कला के लिए प्रोत्साहन नहीं दिया जाता है, इसलिए कार्यक्रम ऐसा अपनाया जाए जिनमें व्यक्ति का कर्तृत्व विकसित हो। इसी की देश के लिए नितांत आवश्यकता है। अतः युवकों के आकर्षण के लिए हम ऐसा कार्यक्रम न अपनाएं, जिसमें कुछ न करने की नेतागिरी पनपे। वस्तुतः उपदेश देने की प्रवृत्ति सामाजिक जीवन के हर स्तर पर अनुभव करने को मिलती है, किंतु जिस बात का उपदेश देते हैं, उस बात को अपने जीवन में चरितार्थ करनेवाले उपदेशक विरले ही होते हैं।

7 *नानाजी की व्यक्ति–निर्माण की सोच एकदम भिन्न थी। वे कर्त्त्व कला वाले नहीं, कर्त्त्ववान व्यक्ति के हिमायती थे।*

विराट् पुरुष

8

20 अगस्त, 1996

माननीय उपाध्यक्ष महोदय, योजना आयोग,
प्रिय श्री दंडवतेजी,

आज मैंने नवीं-योजना के कार्यान्वयन के संबंध में आपके उपयुक्त विचार समाचार-पत्रों में पढ़े। आपकी भावी योजनाओं का अनुमान करने को मिला। आपका व्यावहारिक दृष्टिकोण पढ़कर खुशी हुई। 'सहकारी संघवाद' को व्यावहारिक धरातल पर साकार करने की आपकी अभिलाषा सराहनीय है।

आपने सोचा है कि नवीं-योजना के क्रियान्वयन में सभी राज्यों तथा पंचायतीराज संस्थाओं की भागीदारी बढ़ाने की आवश्यकता है। यह ठीक दिशा में आवश्यक कदम है। आप चाह रहे हैं कि विकास के कार्यान्वयन में समाज के कमजोर वर्गों तथा महिलाओं के हितों का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

इस नवीं-योजना को और अधिक परिणामजनक बनाने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं का भी सहयोग लेना उपयुक्त होगा। इसका उल्लेख पढ़ने को नहीं मिला।

हजार साल तक परायी हुकूमत में जकड़ी हुई जनता में शासन व प्रशासन पर निर्भर रहने की विवशता ने जड़ें जमाई थीं। भविष्य निर्माण का दायित्व केवल सरकार का है—उसमें सर्वसाधारण नागरिकों के सक्रिय योगदान की गुंजाइश ही नहीं है, यह जनभावना दृढ़मूल हुई थी। इस गलत मानसिकता को आजादी पाने के बाद भी बदला नहीं गया है।

वस्तुतः सर्वसाधारण नागरिक अपने विकास का दायित्व स्वयं निभाने की प्रवृत्ति से प्रेरित नहीं होंगे, तब तक केवल सरकार के भरोसे सर्वसाधारण नागरिकों के विकास की संभावना कठिन है। आठ पंचवार्षिक योजनाओं का यह अनुभव रहा है।

वस्तुतः हर ग्राम के स्तर पर स्वावलंबन का जीवन खड़ा करना आवश्यक है। उसके लिए हर ग्राम के स्तर पर विनियोग के लिए पूंजी का निर्माण संभव है। यह कार्य कानून और प्रशासन के आधार पर नहीं हो सकता। इसके लिए आबादी में अधिक-से-अधिक लोग उत्पादक बन सकें, इसका प्रयास करना होगा।

सर्वसाधारण नागरिकों में पूंजी विनियोग के लिए बचत की प्रेरणा सामाजिक स्तर पर ही निर्माण की जा सकती है। यह कार्य समाजसेवी संस्थाओं के आदर्शवादी लोग ही कर सकते हैं। इसी से विकास के प्रत्यक्ष कार्यों में लोकतांत्रिक प्रक्रिया प्रचलित हो सकती है।

यह कार्य स्वयंसेवी संस्थाओं के लिए ही संभव है, किंतु योजनाओं को बनाने में एवं उनके कार्यान्वयन में समाजसेवी संस्थाओं का आजादी के पचास साल बाद भी कोई स्थान नहीं है।

आप समान व्यक्ति, जिसका समाज से सीधा संबंध रहा है, जिसके जीवन में आदर्शवाद के व्यवहार को महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, धनार्जन जिसका लक्ष्य कभी नहीं रहा, ऐसा व्यक्ति ही मेरे सुझाव की महत्ता अनुभव कर सकता है। इसी अपेक्षा से यह पत्र योजना आयोग के उपाध्यक्ष के नाते आपके विचार के लिए प्रस्तुत कर रहा हूं। आशा है, आप इस पहलू पर भी विचार करेंगे।

9

05 सितंबर, 1996

मा. उपाध्यक्ष महोदय, योजना आयोग,
प्रिय श्री मधुजी,

जिस अपेक्षा से मैंने आपको पत्र लिखा था, उसका सकारात्मक उत्तर पाकर खुशी हुई। मैं आपके विचार के लिए कुछ निम्न बिंदु प्रस्तुत कर रहा हूं।

- देश और समाज की समृद्धि के लिए उत्पादन ही एकमेव माध्यम है। उत्पादन के साधन दो हैं, एक कृषि एवं दूसरा उद्योग।
- समाज में वृद्धिंगत विषमता समाज का स्वास्थ्य बिगाड़ रही है। उससे समाज में परस्पर अविश्वास और तनाव बढ़ रहा है। इस बढ़ रही विषमता के निराकरण को प्राथमिकता देनी होगी। अन्यथा विकास की योजनाएं सफल होना संभव नहीं होगा।
- इस दिशा में बढ़ने के लिए आवश्यक है कि अपने समाज के अधिकतम घटक (महिलाएं एवं पुरुष) उत्पादन कार्यों में संलग्न हों, ऐसी ही कृषि एवं औद्योगिक विकास की प्रक्रियाओं को अपनाना होगा।
- वेतन भोगी अर्थात् नॉन प्रोडक्टिव कार्यों में अधिकतम लोगों को लगाने के कारण केवल उपभोग करनेवालों की संख्या उत्पादन करनेवालों से बहुत अधिक होती जा रही है। यह पद्धति विषमता की जनक है। यह निष्कर्ष पूंजीवादी एवं साम्यवादी पद्धतियों के कारण प्रकट हुआ है। इसके दुष्परिणाम सर्वविदित हैं।
- अतः उत्पादन की पद्धतियों में आमूल-चूल परिवर्तन किए बिना समाज में समानता एवं सबके लिए समृद्धि का जीवन उपलब्ध कराना संभव नहीं हो सकता। वस्तुतः स्वतंत्र भारत के विकास की यह मानव मात्र के लिए सबसे बड़ी देन हो सकती थी।
- व्यक्ति स्वातंत्र्य और लोकतंत्र के विकास के लिए भी उपर्युक्त दिशा अपनाना आवश्यक है।
- यह कार्य एक झटके में संभव नहीं हो सकता। कृषि एवं उद्योगों का जो ढांचा प्रचलित हुआ है, उसमें अपने विशाल देश में एकाएक बदल लाना न संभव है, न व्यावहारिक, किंतु विकास की दिशा बदलना प्रारंभ करना होगा और यही योजना आयोग का दायित्व है।
- अपने नूतन आजादी के गत पचास सालों में सर्वसाधारण नागरिकों में एवं नेतृत्व में जो

9 *स्वावलंबन उत्पादन क्षमता बढ़ाने से आ सकता है, अनुत्पादक गतिविधियों से नहीं।*

मानसिकता पनपी है, वह खतरनाक सिद्ध हो रही है। सभी मानने लगे हैं कि समाज के सर्वांगीण विकास का दायित्व निभाना केवल सरकार का ही काम है। परिणामस्वरूप देश की हर एक आबादी सरकार से कुछ-न-कुछ पाने के लिए ही उतावली है। वह यह अनुभूति ही नहीं करती कि विकास के लिए आवश्यक कच्चे माल का भंडार देश की आबादियों के चारों ओर फैला हुआ है। उस कच्चे माल के भंडार को उत्पादन के कार्यों में स्थानीय आधार पर काम में लाना उपेक्षित हो रहा है। फलस्वरूप देश के करोड़ों नागरिकों की विशेषतः युवाओं की असीम शक्ति उत्पादन की दृष्टि से निरर्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विकास के लिए पराए विकसित देशों पर निर्भर रहने की वृत्ति बढ़ रही है। इस कारण देश की आजादी के लिए किया गया बलिदान जहां निरर्थक सिद्ध हो रहा है, वहां हम अपनी स्वाधीनता भी खोते जा रहे हैं। यह दिशा मानव मात्र के कल्याण में स्वतंत्र भारत के योगदान की नहीं हो सकती।

- अतः हमें योजना की ऐसी दिशा अपनानी होगी, जिससे देश में उपलब्ध कच्चे माल और लोकशक्ति के परस्पर-पूरकता का रूप उजागर हो सके। तभी देश के नागरिक केवल उपभोग के लिए ही नहीं जिएंगे, अपितु उपभोग के साथ उत्पादन के द्वारा समृद्धि बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होंगे।
- प्रचलित मानसिकता में सरकार द्वारा बड़ी-बड़ी योजनाओं पर अरबों रुपयों की लागत आ रही, उसके लिए दुनिया भर से कर्ज लेना पड़ रहा है, किंतु इस लागत का प्रतिफल अपेक्षा के अनुसार प्राप्त नहीं हो रहा है। इसके बावजूद योजना आयोग यदि प्रचलित दिशा में ही आगे बढ़ेगा तो उसे मृगमरीचिका के पीछे दौड़ना ही कहना पड़ेगा।
- अतः योजना आयोग को अपनी प्राथमिकताओं में पुनर्रचना करनी होगी। उपर्युक्त बातों को व्यावहारिक धरातल पर कैसे संभव किया जा सकता है, इस पर सामूहिक चिंतन की आवश्यकता है। योजना आयोग ऐसे सामूहिक चिंतन की प्रक्रिया अपनाएगा, ऐसी मेरी अपेक्षा है। कारण, प्रथम बार योजना आयोग के उपाध्यक्ष खुले दिलवाले उपलब्ध हुए हैं। मैं अपने दो प्रकल्प साथ में संलग्न कर रहा हूं। आशा है, वे विचार के लिए सहायक होंगे।

10

16 दिसंबर, 1996

प्रिय श्री हरीशंकरजी,

श्रीराम मेमोरियल लेक्चर के रूप में आप द्वारा दिए गए 'इकोनॉमिक इंटरनेशनेलिज्म—ए थ्रेट ऑर ब्लेसिंग' विषय पर भाषण की पुस्तिका प्राप्त हुई। इस कृपा के लिए मैं आपका आभारी हूं।

अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था को वरदान मानते हुए उसके व्यावहारिक धरातल पर संभव दोषों की

10 *स्वावलंबन प्राप्त किए बिना अंतरराष्ट्रीय व्यापार में हम टिक नहीं पाएंगे। (श्री हरिशंकर सिंघानिया)*

ओर आपने सटीक इशारा किया है। आपके सारगर्भित, संतुलित एवं सामयिक विचार जानकर खुशी हुई।

अपने भाषण में आपने कहा है कि उदात्त सदभावनाओं से कार्यान्वयन की समुचित विधियां अपनाना अधिक महत्त्व का है। इस तथ्य की ओर समय से ही ध्यान न रखा गया तो अंतरराष्ट्रीय आर्थिक विकास प्रक्रिया का टिका रहना कठिन होगा। वस्तुतः अंतरराष्ट्रीय व्यापार की बात भारत के लिए नई नहीं है। भारत सदियों पूर्व इस गतिविधि में संलग्न रहा है, किंतु अपनी समृद्धि के लिए अन्य देशों का शोषण करने की दुष्प्रवृत्ति भारत में नहीं रही, किंतु वर्तमान-काल की मानसिकता भिन्न है। विकसित देश 'वर्ल्ड ट्रेड ऑर्गनाइजेशन' बनाना अवश्य चाहते हैं, किंतु उनका हेतु वह नहीं है, जो भारत का था। इस बात को नजरअंदाज करना विकासशील देशों के लिए बहुत महंगा पड़ेगा।

विकासशील देशों की अधिसंख्य आबादी ग्रामों में रहती है। अंग्रेजी हुकूमत आने के पूर्व ये ग्रामीण आबादियां आर्थिक दृष्टि से कमजोर नहीं थी। आत्मनिर्भर एवं खुशहाल थी। उन्हें खुशहाल बनाए बिना अंतरराष्ट्रीय आर्थिक गतिविधियां मानवीय एवं न्यायपूर्ण सिद्ध हो पाएंगी क्या? यह विचारणीय विषय है। इसका अर्थ यह नहीं कि अंतरराष्ट्रीय आर्थिक गतिविधियां रोकनी चाहिए। उन्हें रोका नहीं जा सकता, किंतु विकासशील देशों को स्वयं के स्वातंत्र्यपूर्ण अस्तित्व के लिए देशीय आर्थिक जीवन की नवरचना की दिशा में भी सक्रिय होना चाहिए। देश का औद्योगीकरण एवं अंतरराष्ट्रीय व्यापार की रचना करते समय विकासशील देशों को अपनी संपूर्ण आबादी की आजीविका का भी ध्यान रखना होगा।

दीनदयाल शोध संस्थान ने ग्रामीण औद्योगीकरण का कार्यक्रम हाथ में ले लिया है। उसकी रूपरेखा इस पत्र के साथ संलग्न है। मैं चाहता हूं कि आप उसे पढ़कर अपने सुझाव देने की कृपा करें। कारण, इस विषय में आपका अध्ययन एवं अनुभव अधिक है।

इस प्रकल्प के लिए आवश्यक धन का प्रबंध प्रिय श्री केशवजी महेंद्रा (महेंद्रा ऐंड महेंद्रा) ने किया है तथा यह प्रकल्प प्रारंभ हो चुका है।

11

15 मई, 1998

माननीय उपाध्यक्ष महोदय, योजना आयोग,
प्रिय श्री जसवंत सिंहजी,

आज ही मैंने प्रिय श्री अटलजी को पत्र लिखा है। उसकी प्रतिलिपि साथ में संलग्न है।

भारत की संतानें देश और विदेशों में फैली हुई हैं। सबके मन में भारत के उज्ज्वल भविष्य की सहज में अपेक्षा है। उनका योजनाबद्ध रीति से सदुपयोग करने का अनुकूल प्रसंग उपस्थित हुआ है।

समृद्ध देशों द्वारा हड़बड़ाहट में भारत पर पाबंदी लगाई जा रही है। इसके बावजूद जनशक्ति

11 *परमाणु विस्फोट के पश्चात् प्रतिबंधों के आलोक में योजना को गैर-परंपरागत बनाना आवश्यक।*

के बलबूते पर हमें विकास-कार्य अधिक तेजी से कर दिखाने की आवश्यकता है। तभी विदेशों में प्रतिक्रिया के रूप में भड़का हुआ असंतोष अपने आप घटने लगेगा।

आप योजना आयोग के उपाध्यक्ष हैं। उपस्थित परिस्थिति में परंपरागत रूप में बनाई गई योजना बेअसर हो सकती है। अतः उत्पन्न परिस्थिति में योजना का रूप विशेष प्रकार का होना जरूरी है। यह मैं बताऊं, इसकी आवश्यकता नहीं है। आप स्वयं समयानुकूल योजना बनाने में समर्थ हैं।

12

27 अक्तूबर, 1998

माननीय श्री कृषि मंत्री महोदय,
प्रिय श्री भजनलालजी,

आपसे मिला था। आपने सहर्ष दीनदयाल शोध संस्थान के लिए गोंडा जिले के गोपाल ग्राम में कृषि केंद्र प्रदान करने के आदेश देने की कृपा की थी।

'इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' आवश्यक धन का अभाव होने के कारण इस सर्वोत्तम कार्य को गति के साथ कार्यान्वित नहीं कर पा रही थी। अतः आपने विशेष व्यवस्था कर इस कार्य के लिए पांच करोड़ रुपए प्रदान करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

किंतु आज तक 'इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' ने दीनदयाल शोध संस्थान को कृषि विज्ञान-केंद्र प्रदान करने का कदम नहीं उठाया है। 'इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' की जांच-पड़ताल से गोंडा जिले में दीनदयाल शोध संस्थान को कृषि विज्ञान-केंद्र सर्वप्रथम दिया जाए, यह निर्णय रिकॉर्ड में मौजूद है। इसके बावजूद आपके आदेश के बाद भी 'इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' हमें कृषि विज्ञान-केंद्र प्रदान करने में अनावश्यक विलंब कर रहा है।

मुझे ज्ञात हुआ है कि 'इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' ने 'प्रायॉरिटी' (वरीयता) न होते हुए भी अन्य स्थानों के लिए कृषि विज्ञान-केंद्र प्रदान किए हैं। अन्य जिलों में कृषि विज्ञान-केंद्र मिले हैं, इससे मुझे कोई शिकायत नहीं है, किंतु दीनदयाल शोध संस्थान को गोंडा जिले में कृषि विज्ञान-केंद्र चलाने के लिए 'इंडियन काउंसिल ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च' के द्वारा ही प्राथमिकता मिलने के बावजूद अभी तक कृषि विज्ञान-केंद्र दिया नहीं गया है।

मैं एक साधारण नागरिक हूं और ईमानदारी से ग्रामीण विकास-कार्य में संलग्न हुआ हूं। न मैं आंदोलन करता हूं, न ऊधम मचानेवाला हूं, न ही राजनीतिक नेता हूं। इसलिए मेरे पास आप समान न्यायपूर्ण ढंग से काम करनेवाले मंत्री से अनुरोध करने मात्र का ही सहारा है।

12 *सरकारी व्यवस्था पर चिंता जताता पत्र।*

मेरा विश्वास है कि आप कृपा कर दीनदयाल शोध संस्थान को गोंडा जिले के लिए कृषि विज्ञान-केंद्र दिलवाने की दिशा में अविलंब कदम उठाकर अनुगृहीत करेंगे।

13

8 मार्च, 2000

माननीय ग्राम-विकास एवं कृषि मंत्री महोदय,
प्रिय श्री सुंदरलालजी,

बहुत खुशी हुई कि कृषि मंत्रालय का दायित्व भी आपको सौंपा गया है। ग्राम विकास मंत्रालय का कार्य आप पहले से ही कर रहे थे। अब कृषि मंत्रालय भी जुड़ जाने से समग्र ग्राम विकास की दृष्टि से आप अधिक कारगर सिद्ध हो सकेंगे। लघु उद्योग मंत्रालय का सक्रिय सहयोग पाने में आपको कठिनाई नहीं होगी। कारण, प्रिय वसुंधराजी आपसे पूर्व परिचित एवं निकट संपर्क में रही हैं।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् कृषि मंत्रालय के अंतर्गत ही कार्य करती है। इसी परिषद् के द्वारा कृषि विज्ञान-केंद्रों का संचालन हो रहा है, जिसे समाधान कारक नहीं कहा जा सकता। कृषि विज्ञान-केंद्रों की योजना ग्रामीण विकास की दृष्टि से अति उत्तम सिद्ध हो सकती है। उस योजना का विवरण इस पत्र के साथ संलग्न कर रहा हूं। उससे आपको कृषि विज्ञान-केंद्रों की योजना सहज में ही समझना संभव होगा।

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् बहुत पुरानी और बड़ी संस्था है। उसमें 28 हजार से भी अधिक कृषि वैज्ञानिक कार्य कर रहे हैं। उन पर प्रतिमाह भारत सरकार कितनी विशाल धनराशि खर्च करती है, इसकी जानकारी आपको कृषि मंत्रालय से ही प्राप्त होगी, किंतु इस परिषद् के अनुसंधान कार्य से देश के गरीब किसानों का कितना लाभ हो रहा है, यह विचारणीय विषय है। अपने देश में 76 प्रतिशत से अधिक कृषि जोत अलाभकर हैं। प्रति वर्ष किसानों के घरों में बंटवारा होता है। कृषि भूमि बंटती जाती है और अलाभकर जोतों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। फलस्वरूप ग्रामीण अंचल की दुर्दशा की सीमा नहीं है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् में अलाभकर जोतों को लाभकर बनाने का कार्य कितना किया है, यह संभवतः कृषि मंत्रालय ने जानने की कोशिश नहीं की है। यदि की है तो इसकी जानकारी कृषि से संबंधित लोगों को नहीं है। मुझे विश्वास है, आप एक व्यावहारिक कार्यकर्ता होने के कारण इस प्रश्न की गहराई में अवश्य जाएंगे। कृषि विज्ञान-केंद्रों की योजना की

13 *केंद्रीय मंत्री को कर्तव्य-बोध कराता पत्र।*

अनेक लोगों ने प्रशंसा की है। वस्तुतः कृषि विज्ञान केंद्र देश के सभी जिलों में चलाए गए तो ग्रामीण अंचल भारत के आर्थिक विकास का सबल आधार बन सकता है। सभी प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों का खजाना ग्रामीण अंचल में ही भरा पड़ा है, किंतु इस खजाने को नजरअंदाज कर ग्रामीण युवक-युवतियां दुर्भाग्य से शहरों की गंदी बस्तियों की संख्या बढ़ाने में ही अपना भविष्य समझने लगे हैं। यदि ग्रामीण अंचल में पढ़ी-लिखी, अनुसंधानप्रिय तथा परिश्रमशील युवक-युवतियां शहरों में जाने से प्राकृतिक संसाधनों का खजाना देश की उन्नति की दृष्टि से बेकार सिद्ध हो रहा है। इसी एक व्यथा के कारण इस पत्र के द्वारा आपको कष्ट दे रहा हूं। विश्वास है, ग्राम विकास और कृषि मंत्री के नाते आप मेरी चिंताजनक बातों की ओर अवश्य ध्यान देंगे।

14

10 मार्च, 2000

सम्माननीय उपाध्यक्ष महोदय, योजना आयोग,
प्रिय श्री कृष्ण चंद्र पंतजी,

आवश्यकतावश पत्र द्वारा कष्ट दे रहा हूं। कृपया क्षमा करें।

देश की समुन्नति का ग्रामीण-अंचल आधार है। कारण, मानव जीवन की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति की सामग्री अर्थात् प्राकृतिक संसाधनों का एकमात्र स्रोत ग्रामीण-अंचल है। खाद्यान्न या औद्योगीकरण के लिए आवश्यक कच्चा माल हो, वह ग्रामीण-अंचल से ही उपलब्ध हो सकता है।

किंतु समृद्धि का यह अथाह खजाना छोड़कर ग्रामीण-अंचल की नई पीढ़ी शहरों की ओर दौड़ रही है। ग्रामीण-अंचल उजड़ रहा है। अनेक पंचवार्षिक योजनाओं ने सिद्ध किया है कि ग्रामीण-अंचल की उपर्युक्त उपेक्षा न देशव्यापी गरीबी मिटा पा रही है, न शिक्षित और अशिक्षित बेकारों की संख्या ही घटा रही है।

इन समस्याओं के निराकरण की दृष्टि से भारत सरकार द्वारा 1974 में प्रारंभ की गई कृषि विज्ञान-केंद्रों की योजना व्यावहारिक एवं कारगर हो सकती है, किंतु सरकार इस योजना का सदुपयोग करने के स्थान पर उसकी उपेक्षा कर रही है। इसी कारण मैं आपकी जानकारी के लिए कृषि विज्ञान-केंद्रों की योजना की जानकारी प्रस्तुत कर रहा हूं।

मुझे विश्वास है, आप कृषि विज्ञान-केंद्रों की उपयोगिता पर अवश्य ध्यान देंगे तथा उपयुक्त कदम उठाएंगे।

14 *कृषि विकास की दिशा में क्या कदम उठाए जाने चाहिए। सुझाव देता पत्र।*

15

29 जनवरी, 2002

माननीय श्री शेषाद्रिजी,

मध्य प्रदेश के 35 गांवों में इस 26 जनवरी को स्वावलंबन अभियान प्रारंभ हो गया है। दिनांक 26 जनवरी की प्रातः 9 बजे इन गांवों के सभी महिला-पुरुष एवं बच्चों ने मिलकर राष्ट्रीय ध्वज चढ़ाकर राष्ट्रगान के साथ पुस्तिका में अंकित संकल्प को सामूहिक रूप में दोहराया। सभी जगहों पर कार्यक्रम बहुत उत्साह से संपन्न हुए। सभी राजनैतिक दलों के लोग (अपवाद रहित) इस संकल्प में सम्मिलित हुए। गांव के हर परिवार के महिला-पुरुष और बच्चे इस कार्यक्रम में उत्साह से सम्मिलित थे। संपन्न एवं गरीब-से-गरीब तथा जातिगत भेदभाव मुक्त वातावरण का अनुभव करने को मिला। सामाजिक एकात्मता का बहुत ही सुखद दृश्य उपस्थित हुआ था।

हर ग्राम में प्रदेश के बाहर के दो-दो लोगों की इन कार्यक्रमों में उपस्थित रहने की योजना बनाई थी। इसमें पुणे से 38 महिला-पुरुषों ने भाग लिया था। कम संख्या में अन्य प्रदेशों के लोग भी आए थे। उन सबको सुखद आश्चर्य हुआ। उन्होंने आकर बताया कि गांव के हर एक व्यक्ति ने, चाहे वह महिला हो या पुरुष, शिक्षित हो या अशिक्षित, संपन्न हो या दरिद्र, सबको मिलकर अपने गांव तथा हर परिवार का भविष्य बनाने का संकल्प लेता हुआ दृश्य देखकर हम दंग रह गए।

इन कार्यक्रमों में प्रशासन में कार्यरत सरकारी अधिकारी एवं कर्मचारी भी सम्मिलित थे।

इनमें से एक खोडरी गांव है। यह अत्यंत पिछड़ा और इतना दूर-दराज में है कि वहां आज तक न कोई प्रशासकीय बड़ा अधिकारी पहुंचा था, न कोई राजनेता या समाजसेवी। तीन साल पहले इस गांव में पीने का जल भी उपलब्ध नहीं था। दस वर्ष पहले सरकार ने बांध बनाकर वर्षा का पानी संचित करने का विचार किया था, किंतु इसके लिए आठ-दस लाख रुपए खर्च आएंगे, यह मानकर इस योजना को ठप्प कर दिया था। इन गांवों में अति गरीब व बेपढ़े-बेलिखे वनवासियों की आबादी है। उनकी किसी के पास पहुंच नहीं है।

दीनदयाल शोध संस्थान ने उन ग्रामों के ग्रामवासियों को परिश्रम करने के लिए प्रेरित किया। शोध संस्थान के कार्यकर्ताओं ने जिलाधीश महोदय से अनुरोध किया कि 'राजीव गांधी जल प्रबंधन योजना' के मातहत हमें यह बांध बांधने के लिए आर्थिक सहायता करें। जिलाधिकारी महोदय ने इसमें आठ-दस लाख रुपए लगेंगे, यह कहकर हमारा अनुरोध कार्यान्वित करने में अड़चन प्रकट की, किंतु हमारे कार्यकर्ताओं ने जिलाधीश से कहा कि आप हमें केवल डेढ़ लाख

15 *स्थानीय आबादी की सहभागिता अद्भुत परिणाम ला सकती है। संघ के वरिष्ठ अधिकारी मा. हो. वि. शेषाद्रि को लिखा पत्र।*

रुपयों की व्यवस्था कर दें। उन्हें यह संभव नहीं लगा, किंतु हमारे कार्यकर्ताओं ने कहा कि हम यह कार्य पूरा न कर पाए तो पूरी रकम चंदा करके वापस करेंगे। जिलाधीश को यह अनुरोध मान्य हुआ और गांव के सब लोगों ने मिलकर रात–दिन जुटकर एक लाख अड़तीस हजार रुपए में ही यह कार्य पूर्ण कर शेष बारह हजार रुपए वापस कर दिए।

यह विंध्याचल का पहाड़ी क्षेत्र है। वर्षा की कृपा पर ही इस इलाके में केवल खरीफ की फसल हो पाती है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण वह फसल भी ठीक से नहीं होती। इस कारण यह संपूर्ण इलाका दरिद्रता का शिकार बना हुआ है, किंतु इस बांध के कारण जहां पेयजल का भी अभाव था, वहां हजारों एकड़ जमीन की स्थानीय लोगों के द्वारा ही सिंचाई की व्यवस्था हुई है। इतिहास में प्रथम बार रबी की फसल (गेहूं, चना, सरसों आदि) बड़ी शान से लहलहा रही है। यह बेपढ़े, बेलिखे, पिछड़े वनवासियों के सामूहिक परिश्रम का फल है। यह देखकर आईसीएआर के महानिदेशक डॉ. पंजाब सिंह गद्गद हुए। उन्होंने कहा, यहां आकर इस पिछड़े इलाके में मुझे बहुत सीखने को मिला है। हम पढ़े–लिखे लोगों की धारणा थी कि आम लोगों की विकास के कामों में सक्रियता हो नहीं पाती, लेकिन यहां आकर देख रहा हूं कि आम लोग स्वयं होकर अपना विकास जितनी कुशलता से करते हैं, उतना विकास शिक्षित लोगों के द्वारा भी नहीं हो रहा है। मैं तो अब जहां जाऊंगा, वहां प्रत्यक्ष देखा हुआ खोड़री का अनुभव लोगों को बताऊंगा। इस प्रकार अनेक जगहों पर ग्रामीण बंधुओं ने विकास के कार्य कर दिखाए हैं।

इसी अनुभव के आधार पर दीनदयाल शोध संस्थान ने 2009 तक 500 गांवों को पूर्ण स्वावलंबी बनाने का अभियान प्रारंभ किया है। प्रथम तीन साल में हम 80 गांवों को अर्थात् 26 जनवरी, 2005 तक सब दृष्टियों से स्वावलंबी बनाकर दिखाएंगे। इसका विश्वास 26 जनवरी के 35 गांवों के कार्यक्रम के कारण दृढ़मूल हुआ है।

दीनदयाल शोध संस्थान का चित्रकूट प्रकल्प अपनी योजना के अनुसार अपेक्षित सफलता प्राप्त कर रहा है।

16

13 मार्च, 2002

प्रिय श्री जेठाजी नाग,

आप 'श्रद्धा' पत्रिका के विशेष अंक के रूप में 'झारखंड की समृद्ध धरोहर' नाम से प्रकाशित करने जा रहे हैं, यह जानकर खुशी हुई। प्रकृति ने झारखंड को प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से विशेष समृद्धशाली बनाया है। झारखंड में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के सहारे झारखंड से

16 *स्थानीय लोगों की सहभागिता अनिवार्य। जेठाजी नाग वनवासी कल्याण केन्द्र झारखंड से संबद्ध रहे।*

मूलतः दूर रहनेवाले लोग समृद्धि के शिखरों पर विराजमान होते आ रहे हैं, किंतु झारखंड के निवासियों की स्थिति आज भी वही है, जो सौ साल पूर्व थी।

इस इलाके के निवासियों को उन्नत बनाने की बातें बनाकर अनेक विकसित देशों के मिशनरीज युवक-युवतियों ने इनका धर्मांतरण करने का काम तो किया, किंतु इन लोगों को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने की दिशा में एक भी कदम नहीं बढ़ाया।

झारखंड के प्राकृतिक संसाधनों का लाभ उठाकर मालामाल होनेवालों ने स्थानीय लोगों को अकुशल कहकर अपने कारखानों को चलाने के लिए बाहर से हजारों लोगों को लाकर झारखंड में बसाया, किंतु स्थानीय निवासियों को प्रशिक्षित कर उनकी समृद्धि का ध्यान नहीं रखा।

श्रद्धा पत्रिका का प्रकाशित होने जा रहा 'झारखंड की समृद्ध धरोहर' इस क्षेत्र में काम करने वालों को स्थानीय लोगों को प्रशिक्षित कर उन्हें स्वावलंबी एवं समृद्ध बनाने की प्रेरणा प्रदान करेगा।

17

22 अप्रैल, 2002

माननीय उपाध्यक्ष महोदय, योजना आयोग,
प्रिय श्री कृष्णचंद्रजी,

आपने 20 अप्रैल को देश भर से स्वैच्छिक संस्थाओं के प्रतिनिधियों का दिल्ली में एकत्रीकरण करवाया। इसके लिए मैं आपका हार्दिक अभिनंदन करता हूं। यह अति आवश्यक कार्य बहुत विलंब से अवश्य हुआ, किंतु विकास की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य का शुभारंभ होने से मन को संतोष हो रहा है।

इस क्षेत्र में स्वैच्छिक संस्था 'दीनदयाल शोध संस्थान' के माध्यम से गत कई सालों से मैं काम कर रहा हूं। अपने अनुभवों के आधार पर कुछ उपयोगी बातें आपके विचार के लिए प्रस्तुत कर रहा हूं।

अपना देश सदियों तक परायी हुकूमत में रहा। परिणामतः आम लोगों में अपने उत्कर्ष के लिए सरकार पर निर्भर रहने की आदत पड़ी। स्वयं अपनी तरक्की करने का स्वभाव लुप्त हुआ था। स्वतंत्र होने के बाद इस गुलामी की वृत्ति बदलने की जरूरत थी। यह आवश्यक काम दृष्टि से ओझल हुआ है।

स्वतंत्र भारत ने संसदीय लोकतंत्र अपनाया है। बालिग मताधिकार को स्वीकारा है। सत्ता मोह के फलस्वरूप अनेक राजनीतिक दल बने व बनते-बिगड़ते जा रहे हैं। मतदाताओं को लुभाने के

17 *स्वैच्छिक संस्थाओं की समाज-निर्माण व विकास में भूमिका तथा महत्त्व को समझते हुए। नानाजी उन्हें प्रोत्साहित करने के पक्षधर थे।*

लिए सभी दल मतदाताओं को समझाते आ रहे हैं कि उनकी सरकार बनने पर वे सभी समस्याओं का निराकरण करेंगे और लोगों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करेंगे। लोगों को केवल मतदान भर करना है। यह प्रचार 1952 से लगातार होता आ रहा है। परिणामस्वरूप, स्वतंत्र भारत के नागरिकों की धारणा बनी है कि उन्हें अब देश के लिए कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं रही।

इस कारण, समाज की, विशेषत: देश के युवक-युवतियों की असीम शक्ति नवस्वतंत्र भारत की नवरचना के काम नहीं आ रही है। उनमें से सक्षम लोग अपने व्यक्तिगत जीवन के उत्कर्ष में लगे हैं। गुलामी के काल में जो लोग पिछड़ गए थे, वे स्वतंत्र भारत में भी दयनीय दशा भोगने के लिए विवश हैं। वे इस अपेक्षा में हैं कि सरकार उन्हें खुशहाल बनाएगी, किंतु अब वह आशा भी धूमिल हुई है।

ऐसे अभावग्रस्तों की पीड़ा से द्रवित होकर स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकर्ता उनके बीच पहुंचते ही वे लोग पूछने लगते हैं कि ''आप हमारे लिए क्या लाए हैं?'' स्वतंत्र भारत के नागरिकों में फैली यह याचना-वृत्ति क्या विकास के लिए अनुकूल है? इस गुलामी की वृत्ति को निर्मूलन कर अपने परिश्रम के आधार पर खुशहाल होने की आकांक्षाएं इन लोगों में अंकुरित किए बिना योजना आयोग द्वारा आयोजित उत्कर्ष के कार्य कैसे साकार होंगे?

यह अनिवार्य कार्य प्रशासक अर्थात् नौकरशाही नहीं कर सकती। उनका यह काम भी नहीं है। उनका दायित्व देश में शांति एवं व्यवस्था कायम रखना है। उसी में उन्हें एकाग्र होकर काम करना चाहिए। उन पर विकास का काम सौंपने से विकास तो नहीं होता, किंतु प्रशासन की निपुणता अवश्य घटती है।

लोगों को आत्मनिर्भरता के लिए प्रेरित करने का काम समाजसेवी वृत्ति के लोगों द्वारा ही हो सकता है, जो सेवा के बदले में कुछ भी पाना नहीं चाहते। ऐसे लोग स्वैच्छिक संस्थाओं में ही मिलेंगे। उन्हें इस तथ्य की जानकारी देना व प्रोत्साहित करना जरूरी है। योजना आयोग द्वारा आयोजित इस समारोह में किसी ने भी इस मूलभूत पहलू की ओर संकेत तक नहीं किया। यह देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है।

उपर्युक्त वास्तविकता को ध्यान में रखकर काम किया गया तो निम्न लाभ होते हैं—

- समाज की, विशेषत: युवक-युवतियों की असीम शक्ति का विकास कार्यों को संपन्न करने में सदुपयोग होता है।
- सभी नागरिक छोटी-बड़ी आबादियों में रहते हैं। उनमें परस्पर-पूरक बनकर काम करने की भावना नहीं रही। राजनीतिक दलों में लोग बंटे हैं। आपसी सहयोग का वातावरण ही नहीं बचा। स्वैच्छिक संस्थाएं दलगत व चुनाव राजनीति से सर्वथा मुक्त रहीं तो वे सब लोगों में सहयोग का वातावरण निर्माण कर विकास कार्यों को संपन्न करा सकती हैं। इसके अनेक नमूने चित्रकूट क्षेत्र में देखने को मिलेंगे।
- स्वैच्छिक संस्था सरकारी अधिकारियों व कर्मचारियों का भी विकास कार्यों में आवश्यक सहयोग प्राप्त कर उन्हें भी विकास के कामों के श्रेय का भागीदार बना पाती हैं। परिणामस्वरूप

कुछ मात्रा में भ्रष्टाचार निवारण का काम अपने आप होता है।

- सबके सहयोग के वातावरण के कारण जहां निर्माण कार्यों की गुणवत्ता बढ़ती है, वहीं निर्माण कार्यों पर होने वाले व्यय में पर्याप्त बचत होती है। इसके अनेक उदाहरण चित्रकूट क्षेत्र में देखे जा सकते हैं।
- अपने देश में तीन-चौथाई से भी अधिक कृषि जोत अलाभकर पड़े हैं। इन अलाभकर जोतों को लाभकर बनाने का काम स्वतंत्र भारत में भी नहीं हुआ है। इससे देश को बहुत बड़ा आर्थिक नुकसान हो रहा है। ऐसी स्थिति में देश का विकास कैसे संभव है?

सतना जिले के मझगवां क्षेत्र में दीनदयाल शोध संस्थान ने कृषि विज्ञान-केंद्र के माध्यम से गरीब व अलाभकर जोतवाले किसानों के खेतों में सफल प्रयोग किए हैं। दो या ढाई एकड़ आकार के खेत अलाभकर होते हैं। उनमें किसान सुनियोजित ढंग से खेती करें तो वे अपने परिवार का साल भर का खर्च पूरा कर प्रतिवर्ष पांच-छह हजार रुपए की बचत कर सकते हैं। इस काम में सरकार का एक पैसा भी खर्च नहीं होता। स्वयं अपनी तरक्की की भावना का यह प्रतिफल है। इस दृष्टि से अपने खेतों में सफलता प्राप्त करनेवाले किसानों से आई.सी.ए.आर. के भूतपूर्व जनरल डॉ. परोदाजी ने मिलकर सुखद आश्चर्य व्यक्त किया था। इन प्रयोगों से सिद्ध होता है कि लोगों ने स्वप्रेरणा से काम किया तो छोटे-छोटे किसान भी देश के 'कैपिटल फॉरमेशन' में योगदान कर सकते हैं।

- मानव जीवन के आधारभूत प्राकृतिक संसाधनों का अथाह भंडार केवल ग्रामीण अंचल में ही उपलब्ध है। कृषिजन्य, वनजन्य, पशुजन्य पदार्थ तथा खनिज-द्रव्य आदि ग्रामीण अंचल में ही भरे पड़े हैं, किंतु ग्रामवासी यह अपरिमित खजाना छोड़कर शहरों की गंदी बस्तियों का नर्कतुल्य जीवन जीना पसंद करने लगे हैं। प्राकृतिक संसाधनों की पूर्ति करने वाले गांव उजड़ रहे हैं और दूसरी ओर शहरों की आवश्यकताओं की पूर्ति का अभाव मिटाना संभव नहीं हो रहा है। इसका दुष्परिणाम बेकारी बढ़ाने में भी हो रहा है। चित्रकूट अंचल में यह घातक दिशा बदलकर ठीक दिशा अपनाने का नमूना प्रस्तुत हुआ, यह देखा जा सकता है।
- देश जल के अभाव के संकट का शिकार बन रहा है। भूगर्भ जलस्तर तेजी से घट रहा है। प्रतिवर्ष वर्षा के जल के भूगर्भ-जल से मिलन के स्रोत अवरुद्ध हुए हैं और भूगर्भ-जल का दोहन बेहद बढ़ गया है। उसी का उपर्युक्त दुष्परिणाम है। दिसंबर से जुलाई के प्रारंभ तक गांव-गांव के कुएं पूर्णतः सूखे पड़े रहते हैं। ग्रामवासियों को पीने का पानी लाने के लिए रोज कई किलोमीटर दूर जाना पड़ता है।

दीनदयाल शोध संस्थान ने मझगवां में जल के अभाव से ग्रस्त ऐसे उन्नीस गांवों का चयन किया। इन गांवों के निवासियों की बैठकें लीं। वर्षा के जल को रोकने का संकल्प लिया। जगह-जगह गांवों के ही लोगों ने चेकडैम बनाए, बनाए गए तालाबों में वर्षा का जल संगृहीत होने लगा। भूगर्भ जलस्तर बढ़ गया। गरमी के दिनों में भी गांवों के कुओं में 10 से 15 फीट जल उपलब्ध होने लगा। इतना ही नहीं, हजारों एकड़ कृषिभूमि की सिंचाई भी होने लगी। जिन गांवों ने अपने खेतों में रबी की फसल

का सपना भी नहीं देखा था, उन खेतों में रबी (गेहूं, चना, मटर, टमाटर) की लहलहाती फसल आई.सी.ए.आर. के वर्तमान डायरेक्टर जनरल डॉ. पंजाब सिंह स्वयं देख आए हैं।

स्वपराक्रम पर आधारित विकास के ऐसे अनेक कार्य ग्रामवासी कर रहे हैं। उन सबका उल्लेख कर मैं यह पत्र और अधिक लंबा करना नहीं चाहता। मैं केवल इतना ही बताना चाहता हूं कि अपने देश एवं समाज की नवरचना के काम में स्थानीय लोगों को प्रोत्साहित कर सक्रिय किया गया तो देश का द्रुतगति से विकास हो सकता है। विषमता घट सकती है। गरीबी मिट सकती है। स्वरोजगार के द्वारा बेकारी पर काबू पाया जा सकता है। गैर-राजनीतिक तथा विकास कार्यों को अपनी आजीविका का साधन न बनाने वाली स्वैच्छिक संस्थाओं का महत्त्व समझकर उनका जाल व्यापक स्तर पर फैलाना समय की आवश्यकता है। क्या योजना आयोग इस दिशा में कदम बढ़ाएगा?

18

14 मई, 2002

चिरंजीव प्रिय बंडू,

अब बीड़ का काम बिना किसी बाधा के करने की तुम्हारे लिए आवश्यक व्यवस्था हो गई है। अत: बीड़ जिला ग्रामीण विकास की दृष्टि से दक्षिण के लिए अनुकरणीय सिद्ध होना चाहिए। यह मेरी अपेक्षा है। मुझे खुशी इस बात की है कि तुम प्रगति का विश्वास अनुभव कर रहे हो। काम की सफलता का वही मूल आधार है।

बीड़ जिले में बीड़ तथा अंबाजोगाई समर्थ शिक्षा केंद्र हैं। हजारों युवक-युवतियों का उन दोनों केंद्रों में जमावड़ा है। इस युवा शक्ति के खजाने का उपयोग करने का तुम्हें व चि. सौ. प्रिय मृदुल को सुअवसर प्राप्त है। इस दिशा में गोंडा, चित्रकूट या नागपुर में मैं कुछ भी नहीं कर पाया। यह मुझे मन-ही-मन कचोटता रहता है। उस दिशा में तुम व मृदुल पूरा काम करें, यह मेरी अपेक्षा है।

पुणे, मुंबई तथा नागपुर तुम्हारे लिए आर्थिक व्यवस्था करने जा रहे हैं, यह खुशी की बात है। वे लोग समर्थ हैं। वे व्यवस्था अवश्य करेंगे।

किंतु मेरा तुम दोनों को आर्थिक स्वावलंबन का एक सुझाव है। तुम दोनों दीनदयाल शोध संस्थान का 'स्वावलंबन निधि' प्रस्थापित कर सकते हो। यह खर्च न कर 'फिक्स डिपॉजिट' किसी बैंक में जमा कर उससे प्राप्त ब्याज का ही उपयोग करना। यह निधि पांच, दस, पच्चीस या पचास रुपया लेकर (रसीद देकर) जमा करते रहना। जो मिला, उससे यह छोटा सा फंड जमा कर सकते हो। तिलकजी के नाम से ऐसा ही पैसा (फंड) जमा हुआ था। वाशीम के बालाजी मंदिर में धनी-मानी लोग भोज करवाते थे। भोज में सम्मिलित लोगों को यजमान एक-एक

18 *बूंद-बूंद से कैसे भर सकता है सागर। संस्थान के कार्यकर्ता श्री गणेश पाठक को सभी प्यार से बंडू भैया पुकारते हैं।*

पैसा दक्षिणा दिया करते थे। मैं और अंबा तिलक फंड के लिए वह दक्षिणा एकत्रित किया करते थे। प्रतिपंगत हमारे द्वारा सत्तर-पचहत्तर रुपया जमा होता था।

आप लोगों ने साथियों के सहयोग से इस दिशा में काम किया तो बीड़ जिले के लिए काफी बड़ी मात्रा में 'स्वावलंबन निधि' एकत्रित हो सकती है। इसके ब्याज से नियमित खर्चों का प्रबंध हो सकता है।

तुमने अंबाजोगाई के इलाके में 60 गांवों का तथा सोनदरा क्षेत्र में 10 गांवों का स्वावलंबन अभियान के लिए चयन किया है। प्रारंभ में तीन वर्षों के लिए यह कार्यक्रम पर्याप्त है। ध्यान इतना ही रखना चाहिए कि यह लक्ष्य शत-प्रतिशत सफल हो। इस कार्य से तुम्हारे कार्यकर्ताओं की जगह-जगह नई व अच्छी टोलियां खड़ी होंगी।

इन गांवों के युवक एवं युवतियां कॉलेजों में पढ़ रहे होंगे। ग्राम स्वावलंबन के विकास में उनकी सहभागिता अर्जित की गई तो आप कॉलेजों में पढ़ रहे अन्य युवा वर्गों के सहज में ही संपर्क में आ सकोगे।

मेरा विश्वास है, तुम उपर्युक्त दिशा में अपनी कार्य योजना बनाओगे।

19

20 मई, 2002

प्रिय डॉ. दीनानाथजी,

कल आप आकर मिले। खुशी हुई। आपसे बांस के नए उपकरण बनाने की जानकारी मिली। उसका हमें बहुत लाभ होगा। आपसे यह जानकर भी संतोष हुआ कि देश में आर्थिक विकास के अनेक कार्य स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा पर्याप्त संख्या में हो रहे हैं।

आप योजना आयोग के सदस्य हैं। अतः एक बात आपके ध्यान में ला देने का मन कर रहा है। उसी कारण यह पत्र लिख रहा हूं।

स्व. श्री जे.सी. कुमारप्पा, धीरेंद्र भाई मजूमदार तथा अण्णासाहेब सहस्रबुद्धे गांधीजी के विशेष कृपा प्राप्त एवं निष्ठावान रचनात्मक कार्यकर्ता रहे हैं। उन्होंने देश के विभिन्न भागों में अनेक विकास कार्य किए थे, किंतु उन कार्यों के प्रतिफल टिकाऊ सिद्ध नहीं हुए। संत विनोबाजी का भूदान अभियान भी कृषिभूमि की समस्याओं का निराकरण नहीं कर पाया। मैं स्वयं उत्तर प्रदेश के गाजीपुर एवं जौनपुर जिले में उनके साथ तेरह दिन पैदल प्रवास करता रहा हूं। इस प्रकार के कार्यों का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने का मेरा स्वभाव इस आयु में भी बना हुआ है।

इन कामों को अपेक्षित सफलता क्यों नहीं मिली? उपर्युक्त महापुरुष आध्यात्मिक थे। विनोबाजी तो अध्यात्मिकता के शिरोमणि थे, किंतु उन्होंने आर्थिक विकास के कामों को

19 *लोगों में परस्पर-पूरकता का भाव लाए बिना आर्थिक विकास अधूरा है। डा. दीनानाथ तिवारी डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

आर्थिकता तक ही सीमित रखा था। आबादियों के निवासियों में परस्पर स्नेह एवं पूरकता की वृत्ति विकसित करने के कार्य की ओर ध्यान ही नहीं दिया।

इस कारण आर्थिक विकास के साथ लोगों में मानवीयता का भाव अंकुरित नहीं हो पाया। ऐसी स्थिति में आबादियों में (समाज में) विषमता घटकर सुख–समाधान का वातावरण कैसे पनपता? कुछ ही लोग आर्थिक संपन्नता अर्जित कर लेते हैं और सामान्य जनों की अवस्था में सुधार नहीं होता। यह ऐतिहासिक तथ्य है। आप समान उच्च पदाधिकारी इस मर्म को ध्यान में रख सकेंगे तो समाज का भला होगा।

20

29 जुलाई, 2002

माननीय उपाध्यक्ष महोदय, योजना आयोग,
प्रिय श्री कृष्ण चंद्रजी,

मैं आपको फिर से कष्ट देने जा रहा हूं। कृपया क्षमा करें।

मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत 'जन शिक्षण संस्थान' योजना कार्यान्वित हो रही है। इस योजना का गत एक साल का मुझे अनुभव करने को मिला है। संभवतः आपको जानकारी होगी कि राजनीति से अलिप्त होकर 1978 में मैंने ग्रामीण विकास का कार्य उत्तर प्रदेश के गोंडा जिले से ही प्रारंभ किया था।

इस जिले के लिए 'जन शिक्षण संस्थान' का कार्य मिले मुझे केवल डेढ़ साल हुआ है। इस योजना को इसी काल में कार्यान्वित किया है, जिसके सुपरिणाम संलग्न लेख में आपको पढ़ने को मिलेंगे।

इसी प्रकार के प्रकल्प कुछ कृषि मंत्रालय के अंतर्गत, कुछ ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत, कुछ मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत तथा कुछ 'कपार्ट' के अंतर्गत भी चलते हैं। इन सब प्रकल्पों का कोई एकात्म रूप न होने के कारण पैसा अधिक खर्च होता है और काम प्रभावी रूप में सामने नहीं आता।

मैं नहीं जानता कि इन कामों को एकात्म करने का अधिकार योजना आयोग के अंतर्गत आता है या नहीं, किंतु मैं अनुभव करता हूं कि यदि इन सब प्रकल्पों का एकात्म रूप में संचालन किया गया तो ग्रामीण विकास बहुत द्रुतगति से एवं विशाल स्तर पर संभव हो सकता है।

ग्रामीण अंचल में कई सालों से काम करने के कारण एक बात विशेष रूप से अनुभव हो रही है कि लघु उद्योगों के नाम से जो प्रयास हो रहे हैं, वे बड़े उद्योगों के छोटे रूप हैं। वे वस्तुतः ग्रामीण अंचल के विकास के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। ग्रामीण अंचल में इतने विविध प्रकार के प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध हैं, जिन्हें मानव जीवन के लिए उपयोगी बनाने की दृष्टि से ग्रामीण

तकनीकी का स्वतंत्र रूप से विकास करना जरूरी है। इसके लिए 'ग्रामीण तकनीकी अनुसंधान केंद्र' का निर्माण करना होगा।

मेरी आपसे साग्रह प्रार्थना है कि आप समय निकालकर कम-से-कम दो दिन के लिए चित्रकूट आने की कृपा करें। वहां आपको कई काम इस दिशा में होते हुए देखने को मिलेंगे।

मैं अनुभव कर रहा हूं कि देश में जो समस्याएं बेकाबू हो रही हैं, उनका निराकरण करना अधिक कठिन नहीं है, किंतु दुर्भाग्य है कि बड़े लोग छोटी बातों को देखने के लिए समय ही नहीं निकालते। इस कारण, बड़े प्रयासों के चलते समस्याएं भी विशाल रूप ग्रहण करती जा रही है। मेरा विश्वास है, मैं जो आपका समय लेने का इच्छुक हूं, वह आपके लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

21

14 फरवरी, 2003

प्रिय कार्यकर्ता बंधुओ एवं बहनो,

सोनदरा गुरुकुल का कार्य तथा अंबाजोगाई में कृषि विज्ञान-केंद्र द्वारा आयोजित स्व. दीनदयालजी के बलिदान-दिवस के अवसर पर 'स्वावलंबन-अभियान' का समारोह बहुत सफल रहा। अतः आप सभी का हृदय से अभिनंदन। आप सभी के परिश्रम का शानदार प्रतिफल देखकर मुझे बहुत खुशी हुई।

आप लोग गांव-गांव जाकर 'स्वावलंबन-अभियान' में सहकार्य के लिए लोगों से अनुरोध करते रहे। उसके परिणामस्वरूप काफी बड़ी संख्या में लोग 11 फरवरी को समारोह में उत्साह के साथ पहुंचे तथा बड़ी रुचि के साथ सब लोगों ने सहयोग दिया।

इससे अनुमान होता है कि लोगों को 'स्वावलंबन-अभियान' का कार्य पसंद है। अन्यथा वे लोग अपने घर से इतनी दूर तक आकर कार्यक्रमों में सम्मिलित न होते।

केवल इतना बड़ा समारोह करना वस्तुतः अपना लक्ष्य नहीं था। अपने समाज में उत्साह से समारोह करने की परंपरा है, किंतु वह परंपरा उत्सवों तक ही सीमित रहती है। हम अपने समारोह को कार्य का शुभारंभ मानते हैं।

11 फरवरी के समारोह के फलस्वरूप सम्मिलित हुए ग्रामीणों के मन-मस्तिष्क में भविष्य निर्माण की कल्पना आकार ले रही है। अतः हमें उन गांवों में अविलंब पहुंचकर उन कल्पनाओं को व्यावहारिक धरातल पर उतारने की दृष्टि से गांव-गांव में उपयुक्त कार्यक्रमों की रचना करनी होगी। यदि इस कार्य में विलंब हुआ तो इन ग्रामवासियों में निर्माण हुई अनुकूलता टिक नहीं पाएगी। उसे पुनर्जाग्रत् करना कठिन हो जाएगा। यह आप सब भी सोच ही रहे होंगे। सहज में ही यह बात ध्यान में आई, इसलिए लिखा है।

21 *समारोह सिर्फ उत्साह पैदा कर सकते हैं, लक्ष्य नहीं बन सकते।*

22

16 अक्तूबर, 2003

महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय,
मान्यवर श्री भैरोंसिंहजी,

11 अक्तूबर को जयप्रकाश नगर में (बलिया जिला) दिए गए आपके भाषण के अंश समाचार पत्रों में पढ़ने को मिले। अंत्योदय पूर्ति की आपकी व्यग्रता प्रकट हुई। जे.पी. जन्मशताब्दी समारोह वर्ष में तदनुरूप ही व्यावहारिक धरातल पर चित्रकूट में कार्य किया जा रहा है। उसे मैं फिर से इस पत्र के साथ संलग्न कर रहा हूं।

जे.पी. जन्मशताब्दी समारोह के आप अध्यक्ष हैं। उसके लिए आपने दो करोड़ रुपए प्रदान करने की कृपा की है। यह कार्य जे.पी. के हृदय की पुकार रही है। इस दिशा में स्वयं जे.पी. ने बिहार में कार्य प्रारंभ किया था, किंतु वह अधूरा ही रह गया है। उन्होंने गांवों में रहकर जो परिश्रम किया था, उसका मैं प्रत्यक्षदर्शी हूं। इसी कारण मैंने यह प्रकल्प हाथ में लिया है। प्रभु कृपा से इस दिशा में सफलता के चिह्न दिखने लगे हैं।

अभी हमने चित्रकूट में 18 गांव के बांस के कारीगरों का सम्मेलन दिनांक 09 अक्तूबर, 2003 को 'कारीगर पंचायत' नाम से आयोजित किया था। पांच सौ से अधिक कारीगर महिला-पुरुष सम्मिलित हुए थे।

बांस 'रिन्युएबल' प्राकृतिक संसाधन है। जन-जीवन ऊंचा उठाने में उसका बहुत उपयोग हो सकता है। किंतु बांस के इन परंपरागत कारीगरों को बांस उपलब्ध न होने के कारण ये बेकारी के शिकार बने हुए हैं।

गोंडा जिले में हमने 5 एकड़ से कम जमीनवाले किसानों के खेतों में नलकूपों के द्वारा सिंचाई का इंतजाम किया था। 2 वर्ष में ही 27516 नलकूप लगाए थे। उनमें 18000 नलकूप किसानों की गरीबी के कारण सस्ते नलकूप लगाने का प्रयास किया था। उसमें 150 गहरे लोहे के पाईप की जगह बांस के टुकड़े जोड़कर बांस के पाइपों का उपयोग किया गया था। वे नलकूप 20 साल के बाद भी यथावत् सिंचाई कर रहे हैं।

बांस का कई प्रकार से उपयोग हो सकता है। जंगलों में बांस लगाना तथा बांस के नए-नए उपयोगी उपकरण बनाने का अनुसंधान केंद्र प्रारंभ किया है। इसी प्रकार अनेक प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर अनुसंधान किए बिना अंत्योदय की आकांक्षा स्थायी रूप से साकार नहीं हो सकती।

22 *नानाजी का आर्थिक सहयोग लेने का भी अपना अलग तरीका था। वह आभार की बजाय जिम्मेदारी का आभास कराया करते थे। (श्री भैरोंसिंह शेखावत)*

यह अनुभव कर ग्रामीण औद्योगिक तकनीकी अनुसंधान जे.पी. की स्मृति में प्रारंभ किया गया है।

किंतु इसके लिए आपके द्वारा प्रदत्त 2 करोड़ रुपए बहुत ही अपर्याप्त हैं। आप ऐसे भाग्यशाली एवं कर्तृत्ववान पुरुष हैं, जो साधारण परिवार में जन्म पाकर भी भारत जैसे महान् राष्ट्र के उपराष्ट्रपति पद पर विराजमान हुए हैं। देश के प्रधानमंत्री, उप प्रधानमंत्री तथा वित्तमंत्री आपके मित्रो में से हैं। आप चाहें तो जे.पी. ग्रामीण तकनीकी अनुसंधान प्रतिष्ठान–चित्रकूट के लिए 15 करोड़ रुपए सहज में ही उपलब्ध करा सकते हैं।

मेरी प्रबल इच्छा है कि मैं जे.पी. की स्मृति में अंत्योदय कार्य को साकार करके दिखा दूं। आप स्वयं अंत्योदय की आकांक्षा रखते है। इसी कारण आपसे अनुरोध कर रहा हूं। विश्वास के साथ।

23

20 नवंबर, 2003

चि. प्रिय अरविंद सिंह,

दीनदयाल शोध संस्थान चित्रकूट में जो भी प्रकल्प साकार कर रहा है, उनकी अपनी अलग ही विशेषता है। देश के भविष्य–निर्माण की दृष्टि से वे प्रकल्प अपना वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान रखते हैं। 'ग्रामोदय दर्शन' भी ऐसा ही एक महत्त्वपूर्ण प्रकल्प है। उसकी मैं कुछ कल्पना इस पत्र में लिखने का प्रयास कर रहा हूं।

भारतीय जीवन रचना का मूल आधार ग्रामीण सभ्यता एवं संस्कृति रही है। हमारे गांव मानवीय उत्कर्ष के शिरोमणि थे। वेद–वेदांतों के चिरस्थायी ज्ञान के वे ही स्रोत थे। वैभावशाली जीवन की वे थाती कहलाए जाते थे, किंतु आज भारत के पिछड़ेपन एवं दयनीय जीवन के वे प्रतीक बने हुए हैं। ग्रामों में रहकर उज्ज्वल भविष्य के सपने संजोना असंभव माना जा रहा है। यह भ्रामक धारणा सबके सिर पर सवार है।

प्रकृति ने ग्रामीण अंचलों को ही निसर्गदत्त संसाधनों से परिपूर्ण बनाया है। उसी पर मानव मात्र का जीवन निर्भर है। मानव के जीवन एवं उत्कर्ष के लिए अनिवार्य कृषिजन्य पदार्थ, वनजन्य पदार्थ, भूगर्भजन्य पदार्थ तथा पशुजन्य पदार्थ ग्रामीण अंचलों से ही उपलब्ध होते हैं, किंतु प्रचलित मानसिकता आधुनिकता के भ्रमपूर्ण जाल में फंसकर ग्रामीण अंचल की समृद्धि से मुंह मोड़ रही है। यह मन:स्थिति मानव समाज के भविष्य के लिए खतरनाक है।

देश के विभाजन के बावजूद लगभग छह लाख ग्रामों में भारत की सत्तर प्रतिशत से अधिक आबादी रह रही है। आजादी के काल में इनकी हालत अधिक बिगड़ी है। अत: ग्रामोदय के कार्यों

23 *ग्रामोदय की वृहद परिकल्पना। अरविंद सिंह डीआरआई के कार्यकर्ता रहे।*

को विशेष महत्त्व दिए बिना देश का भविष्य बनाना असंभव है। यह वस्तुस्थिति है।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा मणिपुर से कच्छ तक देश की भूमि एक सी नहीं है। संसार की उच्चतम पर्वतमालाएं एवं समुद्र के समतल की भूमि के विभिन्न प्रकारों से अपना देश संपन्न है। देश के जिस अंचल में जिस प्रकार की भूमि के विभिन्न प्रकारों से अपना देश संपन्न है। देश के जिस अंचल में जिस प्रकार की भूमि एवं जलवायु उपलब्ध है, तदनुसार ही उस क्षेत्र का जनजीवन विकसित हुआ है। फलस्वरूप, अपने देश में ग्रामीण गतिविधियों के क्षेत्रों के अनुसार अनेक प्रकार दिखाई देते हैं। केवल रहन-रहन में ही हर क्षेत्र अपनी विशेषता नहीं रखता अपितु कृषि कार्य, औद्योगिक उत्पादन तथा उनके उपकरणों में भी विविधताएं पाई जाती हैं। ग्रामीण जीवन के विकास का स्तर भी सभी क्षेत्र में एक सा नहीं है। प्राकृतिक संसाधनों में भी भिन्नताएं हैं। इसके बावजूद यातायात के साधनों में भिन्नता होते हुए भी देश भर में गाड़ियों के दो पहियों के बीच का अंतर सब अंचलों में एक हैं। यह एक आश्चर्यजनक साम्य इस बात का द्योतक है कि पूरे देश में एक-दूसरे से प्रारंभ से ही संबंध रहा है। पुरातन काल में देश भर में पक्के रास्तों का रिवाज नहीं था। रास्ते कच्चे थे। परिणामस्वरूप, किसी भी अंचल की गाड़ी अन्य अंचलों में बिना अवरोध आ-जा सके, इसलिए एक सी लीक उपयोगी सिद्ध होने की दृष्टि से गाड़ी के पहियों में समान अंतर प्रचलित था।

अभी तक अपने देश में किसी भी स्थान पर भारत के विभिन्न अंचलों में प्रचलित ग्रामीण गतिविधियों का दर्शन प्राप्त होनेवाला स्थान उपलब्ध नहीं है, जिससे ग्राम विकास कार्य में एक-दूसरे से लाभ उठाने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

चित्रकूट साधारणतः देश के मध्य में बसा हुआ है। प्रभु राम की यह तपोभूमि होने के कारण चित्रकूट ऐसा तीर्थस्थान है, जहां देश भर से यात्रियों का आवागमन लगा रहता है। इसी कारण, दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट में 'ग्रामोदय दर्शन' के प्रकल्प की रचना का सुविचारित कार्य प्रारंभ किया है। 'ग्रामोदय दर्शन' के द्वारा एक सीमित स्थान पर देश में फैले विविध ग्राम्य जीवन एवं ग्रामीण तकनीकी का दर्शन देश भर के यात्रियों के लिए उपलब्ध होने जा रहा है।

केंद्रीय सरकार में ग्राम विकास मंत्रालय कार्यरत है। अतः ग्राम विकास मंत्रालय के सहयोग से 'ग्रामोदय दर्शन' के लिए सहज में ही देश के सभी अंचलों के ग्राम्य जीवन के सजीव चित्रों को प्राप्त करना संभव है। अतः हम देश के प्रत्येक ग्रामीण अंचल की निम्न गतिविधियों के चित्र प्राप्त करने की व्यवस्था करें—

- विभिन्न अंचलों के ग्रामीण आवासों के विशेषतापूर्ण चित्र।
- ग्रामीण परिवारों के चित्र, जिसमें सभी आयु के महिला-पुरुष, युवक-युवतियां, बालक-बालिकाएं एवं शिशुओं के सम्मिलित चित्र।
- कृषि-कार्यों के चित्र, कृषि-उपकरणों सहित।
- उस क्षेत्र में कुटीर एवं ग्रामीण उद्योगों के चित्र (कारीगर काम करते हुए)।

- उस क्षेत्र में परिवारों द्वारा उपयोग किए जानेवाले पारिवारिक उपकरणों के चित्र।
- उस क्षेत्र में उगनेवाली फसलों सहित खेती के चित्र।
- फलदार वृक्षों के फलों एवं फूलों सहित चित्र।
- जंगलों के चित्र, इमारती लकड़ी के वृक्षों सहित।
- उस क्षेत्र के उपयोगी पशुओं के चित्र।
- उस क्षेत्र में आवागमन के साधनों के चित्र।
- उस क्षेत्र की अन्य विशेषताओं के चित्र।
- चित्रकूट 'ग्रामोदय दर्शन' में भारत के ग्रामीण जीवन के चित्रमय प्रदर्शनी की झांकी के लिए उपयुक्त स्थान का निर्माण करना।

संभव है, ग्राम विकास मंत्रालय के पास इन चित्रों का संग्रह अभी उपलब्ध न हो, किंतु माननीय ग्रामीण विकास मंत्री महोदय से अनुरोध कर इन चित्रों को उपलब्ध करा लेना (निगेटिव्ज सहित) सहज संभव हो सकता है। यदि ग्राम विकास मंत्रालय अनुमति दे तो हम लोग यह झांकी केंद्रीय ग्राम विकास मंत्रालय की ओर से 'ग्रामोदय दर्शन' प्रकल्प में लगा सकते हैं। इन चित्रों के निगेटीव्ज प्राप्त करने से यह सुविधा हो सकती है कि हम अपनी योजना के अनुसार चित्रों का आकार-प्रकार निर्धारित कर सकते हैं तथा उन चित्रों का हिंदी और अंग्रेजी में परिचयात्मक विवरण जोड़ सकते हैं।

विभिन्न अंचलों में परंपरागत आवासों की रचनाएं भिन्न-भिन्न हैं। उनके चित्र प्राप्त हुए तो उनके छोटे-छोटे 'मॉडल्स' बनवाकर आवासीय कक्ष में उनकी प्रदर्शनी लगाई जा सकती है। उन आवासों के अच्छे पहलू दूसरों के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

किसी-किसी अंचल में पुरातन काल से चली आ रही सिंचाई की व्यवस्था अभी भी प्रचलित है। उसके भी चित्र इस झांकी में प्रस्तुत करना मार्गदर्शक होगा।

रासायनिक खादों के दुष्परिणामों के कारण जैविक कृषि की ओर पूरे विश्व का आकर्षण बढ़ रहा है। अतः जैविक खाद उत्पादन की दृष्टि से जितने भी प्रकार के प्रयोग जहां कहीं चल रहे होंगे, उनके अनुकरणीय नमूने हमें 'ग्रामोदय दर्शन' के अंतर्गत चित्रकूट परिसर में उपलब्ध कराना आवश्यक है।

कृषि उपकरणों में विकास की प्रक्रिया चलाए रखना आवश्यक है। इस कार्य में अनुसंधान करते हुए प्रदूषण से बचना तथा रोजगार की उपलब्धि में कटौती न होने देने का ध्यान रखने की आवश्यकता है। तदनुसार देश-विदेश में उपलब्ध कृषि उपकरणों का उपयोगात्मक प्रदर्शन ग्रामोदय दर्शन में आवश्यक है।

कृषि उत्पादों के रखरखाव के, उनकी उपयोगात्मक गुणवत्ता बढ़ाने के तथा भंडारण के नए-नए उपकरणों का प्रदर्शन भी ग्रामोदय दर्शन में आवश्यक है।

पशुपालन स्वयं में एक अतिविशाल क्षेत्र है। ग्रामीण जीवन में इसका विशेष महत्त्व है। वस्तुतः कृषि कार्य का यह आधारभूत अंग है। आधुनिक कृषि शास्त्र ने इसकी उपेक्षा की है। परिणामस्वरूप, जैविक कृषि की उपेक्षा ने कृषि भूमि की उपजाऊ शक्ति पर कुठाराघात किया

है, जिसकी अनुभूति अब होने लगी है। यातायात की दृष्टि से भी पशुधन का महत्त्व आधुनिक काल में भी अपना स्थान बनाए हुए है। दूध की दृष्टि से पशुधन की महत्ता कभी भी न घटनेवाली है। अत: 'ग्रामोदय दर्शन' में विभिन्न प्रकार के पशुओं को स्थान देना उपयोगी होगा। दूध के विभिन्न उत्पादों के उपकरणों का भी प्रदर्शन 'ग्रामोदय दर्शन' में आवश्यक है।

हिमालय के पहाड़ी क्षेत्र में अभी भी जलस्रोतों का उपयोग कर आटे की चक्कियां काम में आ रही हैं। उनके चित्र भी प्राप्त करने का ध्यान रखा जाना चाहिए।

विभिन्न ग्रामीण अंचलों में हस्तकला का वैशिष्ट्यपूर्ण कार्य अभी भी प्रचलित है। दिल्ली में लगभग सभी प्रदेशों के 'एंपोरियम्स' हैं। उनमें ये चीजें बेची जाती हैं। विभिन्न राज्यों के 'एंपोरियम्स' का अध्ययन करने से यह सहज में ही ध्यान में आ सकता कि उनमें से हस्तकला की कौन-कौन सी वस्तुएं ग्रामीण क्षेत्र में हस्तकला को प्रोत्साहित करने में सहायक हो सकती हैं। उन वस्तुओं को हस्तकला प्रदर्शनी का कक्ष बनाकर ग्रामोदय दर्शन में प्रदर्शित करना उपयोगी होगा। दिल्ली में प्रत्येक राज्य का 'सूचना केंद्र' कार्यरत है। यदि उन्हें प्रवृत्त किया तो 'ग्रामोदय दर्शन' के लिए सहायता भी मिल सकती है।

ग्रामीण अंचल में यातायात के तथा माल ढोने के विभिन्न उपकरणों के प्रदर्शन का समावेश 'ग्रामोदय दर्शन' में किया जाना अपेक्षित है।

इस पत्र में अंकित बातें सूचक हैं। आप स्वयं इस दिशा में चिंतन करोगे तो आप द्वारा संचालित 'ग्रामोदय दर्शन' सर्वांगपूर्ण बनेगा, इसका मुझे विश्वास है।

दीनदयाल शोध संस्थान पारिवारिक जीवन पर आधारित सामाजिक उत्थान का अभिलाषी है। तदनुसार ही अपने प्रयास हो रहे हैं। आपके वैवाहिक जीवन से भी वही अपेक्षा है।

24

21 नवंबर, 2003

प्रिय बेटी स्मिता,

'अभिजात' के हर अंक का विषय नाविन्यपूर्ण होता है। इस समय जल की बूंद को केंद्र बनाकर अभिजात अवतरित हुआ है। भयावह संभावना के निराकरण की दिशा में यह अभिनंदनीय एवं सामयिक प्रयास है।

प्रभु ने कहो या निसर्ग ने सृष्टि की रचना की है। मानव की उन्नति के या आवश्यकता-पूर्ति के प्रयास निसर्ग के नियमों के अनुकूल ही होने चाहिए। अन्यथा परिणाम अपेक्षा के प्रतिकूल होते हैं।

सिंचाई के साधनों द्वारा संपन्नता वृद्धि के लिए प्रयास किए गए। गंगा-यमुना आदि

24 *जल-संकट हमारी अपनी ही देन है। इससे निपटना भी हमें ही होगा। श्रीमती स्मिता पटवर्धन दीर्घकाल से डीआरआई की कार्यकर्ता हैं।*

नदियों से विशाल नहरों का सृजन किया गया। हजारों एकड़ भूमि से कई गुना कृषि उत्पादन होने लगा। यह कार्य कई दशकों के पूर्व किया गया था। इन नहरों के कारण गंगा-यमुना का भूतपूर्व प्रवाह घटता गया। अप्रैल से जून तक कानपुर में पैदल ही गंगा-पार करना संभव हुआ। कारण, वहां जल की गहराई कमर तक से अधिक न रही। प्रति वर्ष वर्षा में बाढ़ का प्रकोप अधिकाधिक बढ़ता गया। नदी के पाट बाढ़ के जल को अपने में समाने में असमर्थ हुए। बाढ़ का पानी नदी के दोनों ओर बसे लाखों गांवों को अपनी चपेट में प्रतिवर्ष लेता है।

उपजाऊ खेतों में कहीं दो फीट तो कहीं चार फीट तक बाढ़ के फलस्वरूप रेत जमा होकर उपजाऊ जमीन बेकार होती जा रही है। पंजाब की उपजाऊ जमीन 'वाटर लॉगिंग' के कारण कई हजार एकड़ बरबाद हो गई है। प्रतिवर्ष सरकार को इन उद्ध्वस्त होनेवाले गांव को राहत पहुंचाने के लिए अरबों रुपए राहत के रूप में देने पड़ रहे हैं। नहरों के द्वारा होनेवाली सिंचाई से जितना लाभ बढ़ा, उससे अधिक धन प्रतिवर्ष सरकारी खजाने से राहत के रूप में बांटना पड़ रहा है। निसर्ग के नियमों के प्रतिकूल विकास विनाश का कारण बनता है। यह बात बड़ों को समझ में नहीं आती। इससे चिंता बढ़ रही है।

जब कभी और जहां कहीं आबादी (लोकबस्ती) कायम होती है तो सर्वप्रथम जल की उपलब्धि का ध्यान रखा जाता है। जहां जल उपलब्ध नहीं होता, वहां आबादी संभव ही नहीं होती, किंतु जलाभाव की पूर्ति का विचार करनेवाले लोगों को क्या यह सोचना नहीं चाहिए कि अब इन आबादियों में से जल कहां गायब हुआ और क्यों गायब हुआ। देश के विभाजन के बाद भी अपने देश में छह लाख ग्रामों की संख्या है। उनमें से डेढ़ लाख से अधिक गांव जल के अभाव से त्रस्त हैं। इसका कारण ढूंढ़े बिना ही जलपूर्ति की योजनाएं बना रहे हैं, जिनमें नैसर्गिक रचना का विचार तक नहीं किया जाता। उसके कितने भयानक परिणाम होंगे, यह सोचने के लिए जल प्रबंधन करनेवाला नेतृत्व मूड में नहीं दिखता। अभी अभिजात के कुछ लेख पढ़ना बाकी है।

यह विषय ऐसा है, जिसे लेकर चित्रकूट में दीनदयाल शोध संस्थान काम कर रहा है। चित्रकूट क्षेत्र में ऐसे अनेक ग्राम हैं, जिन ग्रामों में जो पुराने कुएं हैं, उनमें जनवरी से लेकर जून तक पानी की एक बूंद भी उपलब्ध नहीं होती थी। इन गांवों की महिलाएं पीने के लिए चार-चार, पांच-पांच किलोमीटर दूर से और कहीं-कहीं इससे भी अधिक दूर जाकर दिनभर पीने के लिए एक घड़ा पानी पहाड़ों के झरनों से भरकर लाती थीं। मैंने खुद देखा है, ये महिलाएं कटोरी से झरने का पानी घड़े में भरकर लाती थीं। इन दिनों में इन महिला-पुरुषों को स्नान करना संभव नहीं होता था। गरमी के पसीने से जो कुछ स्नान होता था, उसी से उन्हें समाधान मानना पड़ता था। जब मैं इन लोगों के बीच जाकर रहता था तो जो दुर्गंध मुझे सहनी पड़ती थी, वह शुरू-शुरू में सहन करना कठिन होता था, किंतु पिछले

पांच-छह सालों में बिना गंगा-यमुना का पानी लाए, इन क्षेत्रों में केवल पुराने कुओं में पंद्रह-सोलह फीट पानी 28 मई को भी उपलब्ध होने लगा तथा 18 गांवों में स्थानीय निरक्षर लोगों के पराक्रम के कारण 30 हजार एकड़ कृषिभूमि में सिंचाई होकर उनके जीवन में खुशहाली के दिन आए हैं। 27-28 मार्च, 2003 को जब अटलजी ने स्वयं इन कामों को देखा तो वे दंग रह गए। ये क्यों हुआ और ये कैसे हुआ, यह देखने की आवश्यकता है, किंतु बड़े लोगों को बड़ी-बड़ी बातें सूझती हैं, क्योंकि उन्हें दुनिया भर से मनमाना कर्ज मिल जाता है।

□□□